भोजप्रबन्ध

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास
प्रकाशन
कल्याण - बम्बई.

॥ श्रीः ॥

बल्लालपण्डित विरचित

भोजप्रबन्ध

बांसबरेली निवासी, कान्यकुब्ज कुलभूषण,

अनेक ग्रन्थों के टीकाकार और रचयिता,

सनातन धर्म के महोपदेशक,

पण्डित– श्यामसुन्दरलाल त्रिपाठी कृत

हिन्दी टीका सहित

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन, बम्बई–४०० ००४

संस्करण : फरवरी २०१३ सम्वत् २०६९

मूल्य :- ८० रुपये मात्र।

© सर्वाधिकार : प्रकाशक द्वारा सुरक्षित

मुद्रक एवं प्रकाशक :
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग, बम्बई- ४०० ००४.

Printers & Publishers
KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS
Prop: Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg,
7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.khe-shri.com
E-mail : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj for M/s Khemraj Shrikrishnadass
Prop. Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400004.
at their Shri Venkateshwar Press,
66 Hadapsar Industrial Estate. Pune -411 013.

–: समर्पण :–

स्वस्ति श्रीयुत नृपतिमणिमुकुट, कविकुलकमलदिवाकर,
गोब्राह्मणप्रतिपालक, दुष्टजनघालक, प्रजावत्सल,
भगवद्भक्तिरसिक, धर्मधुरन्धर, गुणग्राही,
प्रमरवंशावतंस, छत्रपुरनरेश H.H.
श्री १०८ श्रीमहाराजासाहिब

श्रीविश्वनाथसिंह जू देव

महोदयकरकमलेषु

राजन्!

आपका राज्यशासन करते हुए भी अधिक समय कविमण्डल के साथ भगवद्भक्ति और धर्म पुस्तकों के अवलोकन में ही व्यतीत होता है। हिन्दी साहित्य पर आपका बड़ा अनुराग है, इस कारण आज श्रीमान् के करकमलों में धर्म और नीति के उपदेशों से पूर्ण, बल्लाल पण्डित के "**भोजप्रबन्ध**" को भाषा टीका से भूषित कर समर्पित करता हूँ। आशा है कि प्राचीन कवियों के वाक्य विनोद युक्त होने से इस भेंट को आप अङ्गीकार करेंगे।

आपका शुभाकांक्षी–
श्यामसुन्दरलाल त्रिपाठी

भोज राजा का वह श्लोक बद्ध सन्देश
जिससे राजा मुंज का जीवन दर्शन बदल गया।

मान्धाता च महीपतिः कृतयुगालङ्कारभूतो गतः।
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः।।
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो याता दिवं भूपते।
नैकेनापि समं गता वसुमती मन्ये त्वया यास्यति।।

सतयुग के भूषण स्वरूप राजा मान्धाता चले गये, समुद्र पर सेतु बांध कर दशानन रावण को मारने वाले रामचन्द्रजी कहां है? हे राजन्! और भी युधिष्ठिर आदि राजा स्वर्ग को सिधार गये, परन्तु यह पृथ्वी किसी के भी साथ नहीं गई, अब जान पड़ता है कि आप इस पृथ्वी को अपने साथ ले जायेंगे।

-: भूमिका :-

राजा भोज मालवे के परमार वंश में उत्पन्न हुए थे और विद्वानों से वन्दित होकर धारानगरी के प्रसिद्ध राजा हुए। कीर्तिकौमुदी, सुकृतसंकीर्तन, मेरुतुङ्ग के प्रबन्धचिन्तामणि और बल्लाल पण्डित के भोजप्रबन्ध में विद्योत्साही भोजराज का परिचय पाया जाता है।

भोजप्रबन्ध में लिखा है कि;- धारानगरी में सिन्धुल नामक राजा रहता था और उसकी रानी का नाम सावित्री था। राजा की वृद्धावस्था में भोज नाम वाला पुत्र उत्पन्न हुआ। जब भोज ने पाँचवें वर्ष में प्रवेश किया, तब वृद्ध राजा ने अपना मृत्यु समय निकट जानकर प्रधान मन्त्री बुद्धिसागर से कहा- अब मेरा अन्त समय है, इस राज्य को किसे दूं? यदि पाँच वर्ष के बालक भोज को राज्य दूंगा, तो छोटा भाई मुञ्ज राज्य के लोभ से यदि पुत्र को मार डालेगा, तो वंश नष्ट हो जायगा। इससे मेरी समझ में यही आता है कि छोटे भाई मुञ्ज को ही राज्य दूं और बालक भोज को उसकी गोद में पालन करने के लिये बैठा दूं। बुद्धिसागर बोला- ''महाराज! यही ठीक है।'' तब राजा ने शुभसुमुहूर्त में अपने छोटे भाई को राज्य दिया और उसकी गोद में अपने कुमार भोज को बिठा दिया। फिर कुछ दिनों के बाद राजा परलोकवासी हुए।

उक्त भोजप्रबन्ध में धाराधीश, राजा सिन्धुल का छोटा भाई लिखा है। परन्तु पद्मगुप्त के ''नवसाहसाङ्कचरित'' में लिखा है कि;- मुञ्ज वाक्पति राजा सिन्धुल का बड़ा भाई था, मुञ्ज की मृत्यु के पश्चात् सिन्धुल राजा ने राज्य पाया* इन दोनों राजाओं की सभा में पद्मगुप्त ने राजकवि के नाम से शोभा पाई थी, इस कारण पद्मगुप्त की ही बात ठीक जान पड़ती है।

उदयपुरप्रशस्ति, नागपुरप्रशस्ति, भोज के ताम्रशासन और नवसाहसाङ्कचरित में सिन्धुराज नाम रहते हुए भोजप्रबन्ध, प्रबन्धचिन्तामणि आदि ग्रन्थो में ''सिन्धुल'' नाम ही मिलता है। पद्मगुप्त के नवसाहसाङ्कचरित पढ़ने से जाना जाता है कि;- इनके नवसाहसाङ्क और कुमारनारायण यह दो विरुद थे।

मेरुतुङ्ग ने प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है कि सिन्धुल बड़ा अबाध्य था, इसी से उसका बड़ा भाई वाक्पति मुञ्ज सदा उस पर शासन करता था। एक समय मुञ्ज ने छोटे भाई के बुरे व्यवहारों से दुःखी होकर उसे निकाल दिया, तब वह गुजरात में आ कर काशहद[1] के समीप रहने लगा। कुछ दिनों के पीछे फिर मालवे में लौट आया, तो वाक्पति राजा मुञ्ज ने भाई के लौट आने पर बड़े आदर के साथ उसे अपने यहाँ रख लिया। किन्तु **'नीम न मीठी होय, सींच गुड़ घी से'** इस कहावत के अनुसार मनुष्य का स्वभाव नहीं पलटता। इतने दिनों के बाद आने पर भी उसकी बुरी इच्छायें नहीं दूर हुई। तब उसके नेत्र निकाल कर काठ के पींजरे में बन्द कर दिया। इसी बन्दीदशा में भोज का जन्म हुआ। एक दिन ज्योतिषी ने कहा था कि भोज बड़ा होकर राजा होगा। इस को सुन कर मुञ्ज बड़ा दुःखी हुआ और शीघ्र ही भोज को मार डालने की आज्ञा दी। उस समय भोज कुछ बड़ा हो गया था और लिखना-पढ़ना भी

---

* दिवं यियासुर्मम वाचि मुद्रामदत्त यां वाक्पतिराजदेवः।
तस्यानुजन्मा कविबान्धवस्य भिनत्ति तां सम्प्रति सिन्धुराजः।। (नवसाहसाङ्कचरित-१।७)

१) इसे आज कल कासिन्द्रपालड़ी कहते हैं और यह अहमदाबाद के समीप है।

सीख गया था। राजा की आज्ञा पालन करने के पहले ही भोज ने राजा मुञ्ज के पास एक श्लोक लिख कर भेजा। श्लोक को पढ़ते ही मुञ्ज की बुद्धि पलट गई और भोज को युवराज के पद पर सुशोभित किया।

भोजप्रबन्ध में यह बात अन्य प्रकार से लिखी है कि;-

मुञ्ज ने राज्यसिंहासन पर बैठते ही पुराने मन्त्री और कर्मचारियों को हटा कर उनके स्थान पर नये मन्त्री और कर्मचारी नियत किये और सुख से राज्य भोगने लगा। एक दिन एक ज्योतिषी आया और बोला कि हे महाराज! मुझे सर्वज्ञ कहते हैं, अतएव आप भी कुछ पूछिये। तब राजा ने कहा;- अच्छा, जन्म से आज तक मैंने जो-जो काम किये हैं उन्हें कहो। तब ज्योतिषी ने राजा के गुप्त से भी गुप्त किये कार्यों को कह सुनाया। राजा ने ज्योतिषी का बड़ा सम्मान किया। उस समय मन्त्री बुद्धिसागर ने राजा से कहा- महाराज! भोज की जन्मपत्री ज्योतिषीजी को दिखाइये। राजा ने भोज की जन्मपत्री ज्योतिषी को दे कर कहा- इसका फल सुनाइये। ज्योतिषी ने जन्मपत्री देखकर भोज को भी देखना चाहा। राजा ने तुरन्त भोज को बुलाकर दिखा दिया। ज्योतिषी ने भोज की सूरत देखकर भोज को विदा करके कहा- हे राजन्! भोज के भाग्य का वर्णन ब्रह्माजी भी नहीं कर सकते हैं, तो मैं उदर भरने वाला क्या वर्णन करूं? लेकिन आपकी आज्ञा से बुद्धि के अनुसार कुछ कहता हूँ।

''पञ्चाशत्पञ्च वर्षाणि सप्तमासदिनत्रयम्।
भोजराजेन भोक्तव्यः सगौडो दक्षिणापथः ।।६।।

हे धाराधीश! पचपन वर्ष, सात महीने और तीन दिन तक बंगाल और दक्षिण देश पर भोज राज्य करेगा।

यह सुनते ही मुञ्ज का मुख मलीन हो गया। उस ने ज्योतिषी को दक्षिणा दे कर बिदा किया। फिर रात्रि में शय्या पर जा कर लेटा, तो नीन्द न आई। उसने सोचा कि जो राज्यलक्ष्मी भोज को प्राप्त हो जायगी, तो मैं जीवित होते हुए भी मृतक के समान रहूंगा। इस कारण भोज को मार ही डालना चाहिये। प्रातः उठते ही मन्त्री वत्सराज को बुलाकर कहा कि- तुम आज सन्ध्या समय पाठशाला से भोज को ले जाकर भुवनेश्वरी देवी के समीप मार डालो और उसका मस्तक मेरे पास ले आओ। वत्सराज ने सायंकाल के समय पाठशाला से भोज को ले जाकर राजा की आज्ञा सुनाई। भोज ने सुनकर वटवृक्ष के दो पत्ते उठाये, एक का दोना बनाया और अपनी जङ्घा में से छुरी के द्वारा रुधिर निकाल कर दोना भरा और दूसरे पत्ते पर उस दोने के रक्त से तिनके से एक श्लोक लिखा। फिर वत्सराज के हाथ में दे कर कहा कि- इसे राजा को दे देना। अब आप अपने राजा की आज्ञा का पालन करें। उस समय राजकुमार भोज के मुखचन्द्र को देखकर वत्सराज के छोटे भाई ने कहा,- हे ज्येष्ठ सहोदर! मरने के उपरान्त माता, पिता, भाई, बन्धु, कुटुम्ब-कबीला, इष्टमित्र, स्वामी और सेवक कोई भी सहायक नहीं होता, उस समय केवल धर्म ही मनुष्य के साथ जाता है। मृत्यु जाति, आयु, रूप और रंग सभी को हरण करती है, यह जानकर भी आपके हृदय में दया नहीं आती? जो वज्र के समान हृदय करके इस सुकुमार बालक का शिर काटने के लिये तैयार हो। यह

सुनते ही वत्सराज के हृदय में वैराग्य उत्पन्न हो गया। फिर उन्होंने भोज को नहीं मारा। अधिक रात्रि के हो जाने पर भोज को अपने घर ले आये और तहखाने में छिपा रखा। फिर चित्रकारों को बुलाकर मोम द्वारा भोज का मस्तक बनवा कर राजा के पास पहुँचाया। राजा ने पुत्र का मस्तक देखकर पूछा कि- मरते समय पुत्र ने क्या कुछ कहा था? वत्सराज ने भोज ने लिखा हुआ पत्र दे दिया। राजा ने दीपक के प्रकाश में पत्र को पढ़ा-

मान्धातेति महीपतिः कृतयुगेऽलङ्कारभूतो गतः।
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः।।
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो याता दिवं भूपते।
नैकेनापि समं गता वसुमती मन्ये त्वया यास्यति[१]।

पत्र का मर्म समझते ही राजा मूर्छित हो गया और जब चैतन्यता हुई तब भोज के लिये विलाप करने लगा। फिर सिन्धुल राजा का आदेश स्मरण आते ही व्याकुल हो गया और प्राण त्यागने का सङ्कल्प कर लिया। उसी समय एक योगी आया उसने राजा से कहा- मैं आपके भतीजे को जीवित कर दूंगा, आप चिन्ता न करें। हवन की सामग्री श्मशान में शीघ्र भेज दीजिये, मैं श्मशान में जाता हूँ। योगी की आज्ञानुसार हवन की सामग्री भेजी गई, फिर थोड़ी देर पश्चात् भोज को साथ योगी ने आकर राजा से कहा- हे राजन्। अपने भ्रातृपुत्र को ग्रहण कीजिये।[२] पुत्र को सम्मुख देखते ही राजा की आँखों से आंसुओं की धारा बहने लगी। फिर राजा मुञ्ज ने भोज को राज्यसिंहासन पर बिठाया और स्वयम् रानी को साथ लेकर प्रायश्चित्त रूपी तप करने के लिये वन को चला गया। (भोजप्रबन्ध)

बहुत से प्रबन्धों में राजा मुञ्ज के पश्चात् भ्रातृपुत्र भोज के राज्य पाने की बात रहने पर भी ठीक नहीं जान पड़ती। कारण पद्मगुप्त ने नवसाहसाङ्कचरित में अपने नेत्रों से प्रत्यक्ष देखकर समस्त घटनाओं को लिखा है और यह बात हम पहले ही कह आये हैं कि पद्मगुप्त ने वाक्पति राजा मुञ्ज की और उनके छोटे भाई सिन्धुराज की सभा को भूषित करके राजकवि की उपाधि पाई थी। अतएव पद्मगुप्त की बात को ही सत्य कहा जा सकता है। पद्मगुप्त ने लिखा है कि- राजा मुञ्ज अपना राज्य छोटे भाई सिन्धुराज को सौंप कर अम्बिकापुर में चले गये थे।(११।९८) सिन्धुराज ने कौशलेश, वागड़, लाट और मुरलों को जीता था।(१०।१४।२०) इनके सिवाय सिन्धुराज ने नर्मदा के एक सौ दश कोश पर विराजमान रत्नवती नामक स्थान में वज्रांकुश को मार कर स्वर्णपद्म के साथ नागराज की कन्या शशिप्रभा को प्राप्त किया था। उदयपुर प्रशस्ति में भी लिखा है कि- सिन्धुराज ने हूणराज को जीता था।

---

१) हे राजन्! सतयुग का आभूषण राजा मान्धाता चला गया, सागर पर सेतु बांध कर रावण को मारने वाले भगवान् रामचन्द्रजी कहां हैं? और युधिष्ठिर आदि धर्ममूर्ति राजागण स्वर्ग को सिधार गये, परन्तु यह पृथ्वी किसी के भी साथ नहीं गई, अब जान पड़ता है आप इस पृथ्वी को अपने साथ ले जाओगे।

२) यह सब मन्त्री बुद्धिसागर की चतुराई थी।

सिन्धुराज के बड़े भाई मुञ्ज की मृत्यु कैसे हुई और किस समय सिन्धुराज ने राजसिंहासन पाया, यह बात पद्मगुप्त ने नहीं लिखी और न किसी प्रशस्ति में लिखी है। मेरुतुङ्ग ने प्रबन्धचिन्तामणि में लिखा है कि; प्रधान मन्त्री रुद्रादित्य की सलाह से वाक्पति राजा मुञ्ज ने तैलप राज्य को जीतने के लिये चढ़ाई की, गोदावरी के पार जा कर तैलप की राज्यसीमा में पहुँच कर तैलप के द्वारा हार कर बन्दी हो गये। चिरकाल तक कारागृह में रहने के पश्चात् वे कारागृह से निकल भागे, तब फिर पकड़े जाकर जान से मारे गये। चालुक्यराज दूसरे तैलप के शिलालेख में भी वाक्पति मुञ्ज के हारने की बात लिखी है। अमित गति के सुभाषित रत्नसन्दोह ग्रन्थ के उपसंहार में लिखा है कि विक्रमीय सम्वत् १०५० (९९३-९४ ईसवी) में मुञ्ज के राज्य करते समय उक्त ग्रन्थ लिखा गया है। इधर चालुक्य वंशावली से जाना जाता है कि दूसरे तैलप की शकाब्द ९१९(९९७-९९८ ईसवी) में मृत्यु हुई। इस प्रकार से९९५ से ९९७ ईसवी के बीच में वाक्पति मुञ्ज की मृत्यु और सिन्धुराज के राज्य पाने का समय निश्चित हो सकता है।

सिन्धुराज के बाहुबल का और अनेक स्थानों को जीतने का विवरण पढ़ने से अन्त में यही जाना जाता है कि उन्होंने ७-८ वर्ष तक राज्य किया।

कविवर पद्मगुप्त ने सिन्धुराज के पराक्रम और राज्यसमृद्धि का तो विशेष वर्णन किया है, परन्तु उनके पुत्र भोजराज का नाम तक नहीं लिखा। इसका कारण यही जान पड़ता है कि या तो उस समय भोज का जन्म ही नहीं हुआ था या भोज उस समय छोटा बालक था। इस ध्यान से भोज के नाम को लिखना कवि ने नहीं सोचा।

उदयपुर प्रशस्ति में भोज के शूर, वीर, प्रतापी और विद्वान् होने का परिचय मिलता है। इस प्रशस्ति में लिखा है कि- "कविराज श्रीभोज की और अधिक क्या प्रशंसा करूं? उन्होंने जो साधन किया है, जो विधान किया है, जो लिखा-पढ़ा है, जो जाना है वह दूसरे मनुष्यों की शक्ति के बाहर है। चेदिराज इन्द्ररथ, तोग्गल और भीमप्रमुख कर्नाट, लाट, गुर्जरपति और तुरुष्कगण जिनके सेवक से पराजित हुए थे, जिनको मौल सूरगणा अपना-अपना बाहुबल विचारते और दूसरे योद्धाओं की वीरता को कभी मन में भी नहीं लाते थे। केदार, रामेश्वर, सोमनाथ, सुण्डीर, काल, अनल और रुद्रादि के देवालय स्थापित करके उन्होंने संसार में 'जगती' नाम से अक्षय कीर्ति प्राप्त की।"*

भोजराज ने जो कर्नाट पर आक्रमण किया था वह कल्याण के तीसरे चालुक्यराज जयसिंह के ९४१ शक(१०१९-२० ईसवी) में उत्कीर्ण शिलालिपि से भी जाना जाता है।

---

* "साधितं विहितं दत्तं ज्ञातं तद्यन्न केनचित्।
किमन्यत्कविराजस्य श्रीभोजस्य प्रशस्यते ।।१८।।
चेदीश्वरेन्द्ररथतोग्गलभीममुख्यान्कर्णाटलटपतिगुर्जरराट्तुरुष्कान्।
यद्भृत्यमात्रविजितानवलोक्य मौला दोष्णां बलानि कलयन्ति न योद्धृलोकान् ।।१९।।
केदाररामेश्वरसोमनाथसुण्डीरकालानलरुद्रसंज्ञकैः।
सुराश्रयैर्व्याप्य च वः समन्ताद्यथार्थसंज्ञां जगतीं चकार ।।२०।।" (उदयपुर प्रशस्ति-१८ से २०)

किन्तु इस शिलालिपि में भोजराज की पराजय लिखी है। १०११ ईसवी में यह घोर युद्ध हुआ था। गुर्जरपति चौलुक्य भीम के साथ (१०२१-१०६३ ईसवी में) भोज के युद्ध की बात प्रबन्धचिन्तामणि में भी लिखी है। मेरुतुङ्ग लिखता है कि ''जिस समय भीम, सिन्धु के जीतने में लीन थे उस समय भोजराज ने कुलचन्द्र नामक एक दिगम्बर (जैन) को सेना लेकर अनहिलवाडे में भेजा था। राजधानी शत्रुओं से जीत कर कुलचन्द्र जयपत्र मालवे में लौट आया।'' महाकवि बिह्लण ने 'विक्रमाङ्कदेवचरित' नामक ऐतिहासिक काव्य में लिखा है कि विक्रमाङ्क के पिता दूसरे सोमेश्वर ने (१०४३ से १०६८-६९ ईसवी तक) अपने प्रचण्ड प्रताप से धारानगरी पर अधिकार किया, उस समय भोजराज धारानगरी को छोड़ कर भाग गये थे।(१।९१-९४)

यह बात प्रसिद्ध है कि भोज की पुत्री भानुमती के साथ विक्रमार्क का विवाह हुआ था। अनेक ऐतिहासिक तत्ववेत्ता यह कहते हैं कि- जब भोज विक्रमार्क के पिता से हार गया था, उस समय भोज की पुत्री भानुमती से विक्रमार्क का विवाह हुआ।

सुलतान मुहम्मद का सोमनाथजी के मन्दिर पर आक्रमण करना भारत के इतिहास में प्रसिद्ध है। परम शैव भोजराज ने उस देवमन्दिर की रक्षा के लिये सुलतान मुहम्मद से घोर युद्ध किया था। प्रशस्ति में उसी को तुरुष्क समर के नाम से लिखा है।

भोजराज केवल देवभक्त और पराक्रमी राजा ही नहीं थे, वरन् वे अपने पिता और ताऊ से बढ़कर महाकवि, महापण्डित और पण्डित मण्डली के प्रतिपालक भी थे। भोजप्रबन्ध में देखा जाता है कि सैकड़ों कवियों ने भोज की सभा को सुशोभित किया और भोजराज ने कविता सुनकर प्रत्येक अक्षर पर एक-एक लाख रुपये प्रसन्न होकर विद्वानों को दिये। उनकी सभा के कविमण्डल में सब से ऊँचा आसन महाकवि कालिदासजी का था। महाकवि कालिदास के सिवाय और भी भवभूति, दण्डी, वररुचि, बाण, मयूर आदि कवियों से उनकी सभा शोभित रहती थी। इन कवियों के अतिरिक्त साक्षात् सरस्वती की मूर्ति विदुषी और कवि स्त्रियों से भी भोजराज की सभा अलंकृत थी। स्त्री कवि समाज में सीता का आसन सब में ऊँचा था। भोजराज की प्रधान रानी लीलादेवी भी परम विदुषी और कवयित्री थी। यादवसिंह के समय की शिलालिपि को पढ़ने से जाना जाता है कि प्रसिद्ध ज्योतिर्विद् भास्कराचार्य के वृद्ध पितामह मास्करभट्ट ने भोजराज से 'विद्यापति' की उपाधि पाई थी।

धर्मशास्त्र, दर्शनशास्त्र, काव्य, अलङ्कार और ज्योतिष शास्त्रादि सभी की भोज की सभा में आलोचना होती थी। देशदेशान्तरों के वृद्ध पूर्वपरिपाटी के पण्डितों का कथन है कि- भोज की सभा में ही सभी शास्त्रों पर भाष्य और निबन्ध बने थे, उन में 'कामधेनु' ग्रन्थ को ही प्रधान था। आज कल महाराजाधिराज भोजराज के बनाये सरस्वतीकण्ठाभरण, राजमार्तण्ड नाम से योगसूत्र का भाष्य, राजमार्तण्ड, राजमृगाङ्ककरण और विद्वज्जनवल्लभ नामक ज्योतिषशास्त्र के ग्रन्थ समराङ्गण नामक वास्तुशास्त्र और शृङ्गारमञ्जरी कथा नामक खण्डकाव्य पाये जाते हैं।

इनके सिवाय भोजराज के नाम से निम्नलिखित ग्रन्थ प्रचलित हैं :-

आदित्यप्रतापसिद्धान्त (ज्योतिष), आयुर्वेदसर्वस्व (वैद्यक), चम्पूरामायण, चारुचर्या (धर्मशास्त्र), तत्त्वप्रकाश (शैव), विद्वज्जनवल्लभ प्रश्नचिन्तामणि, विश्रान्त-विद्याविनोद (वैद्यक) व्यवहारसमुच्चय (धर्मशास्त्र), शब्दानुशासन, शालिहोत्र, शिवदत्त-रत्नकलिका, समराङ्गणसूत्रधार, सिद्धान्तसंग्रह (शैव) और सुभाषितप्रबन्ध।

अनेक विद्वान् उपरोक्त ग्रन्थों को भोजराज की सभा के पण्डितों के बनाये मानते हैं।

केवल उपरोक्त ग्रन्थों के द्वारा ही भोजराज का नाम संसार में प्रसिद्ध हुआ। यही नहीं वरन् अनेक शास्त्रकार अपने-अपने ग्रन्थों में भोज का मत वा श्लोक उद्धृत करके उनके नाम को सदा के लिये स्मरणीय कर गये हैं। उनमें शूलपाणि, दशबल, अल्लाडनाथ और स्मार्त्त रघुनन्दन भट्टाचार्य ने भोजराज का नाम निबन्धक के रूप में चिरस्मरणीय किया है। भावप्रकाश और माधव ने राग के निदान में वैद्य ग्रन्थकार के रूप में, केशवार्क ने ज्योतिषशास्त्रकार के रूप में, क्षीरस्वामी, सायण और महीप ने आभिधानिक एवम् वैय्याकरण के रूप में, चित्तप, देवेश्वर, विनायक और कवियों ने कवि के रूप में भोजराज के नाम को उद्धृत करके सदा के लिये स्मरणीय किया है। प्रसिद्ध दार्शनिक वाचस्पति मिश्र ने अपनी तत्त्वकौमुदी नामक ग्रन्थ में 'भोजराजवार्तिक' उद्धृत किया है। बल्लाल पण्डित के सिवाय मेरुतुङ्ग आचार्य राजवल्लभ, वत्सराज, वल्लभ, सुन्दर मुनि के शिष्य शुभशील प्रभृति पण्डितों ने 'भोजप्रबन्ध' लिखकर भोजराज के चरित्र का बखान किया है। इन सब प्रबन्धों में भोजराज की कीर्ति का विकास और माहात्म्य विशेष रूप से वर्णित हुआ है।

उदयपुरप्रशस्ति, नागपुरप्रशस्ति, वडनगरप्रशस्ति, कीर्तिकौमुदी, सुकृतसंकीर्तन और प्रबन्धचिन्तामणि की आलोचना करने से जाना जाता है कि चेदिराज, कर्ण और गुर्जरपति चौलुक्य भीम के साथ युद्धभूमि में भोजराज की मृत्यु हुई और धारानगरी शत्रुओं के हाथ में गई। उदयपुरप्रशस्ति में लिखा है कि भोजराज के सुयोग्य पुत्र उदयादित्य ने नष्ट हुए गौरव का उद्धार किया था। प्रायः १०१० ईसवी से १०४२ ईसवी तक भोजराज ने धारानगरी और मालवे में राज्य किया था। इन्हीं भोजराज को 'भोजविद्या' प्रवर्तक कहते हैं।

अन्त में हम **खेमराज श्रीकृष्णदासजी** को कोटिशः धन्यवाद देते हैं कि जिन्होंने हिन्दी साहित्य का जीर्णोद्धार करके आप लोगों के सम्मुख लगभग ३५०० ग्रन्थ सभी शास्त्रों के छाप कर प्रस्तुत किये हैं और बड़े यत्न के साथ विद्वानों के द्वारा ग्रन्थ सदा तैयार कराते रहते हैं।

आप लोगों का चिरपरिचित-

हिन्दी साहित्य सेवी

श्यामसुन्दरलाल त्रिपाठी

गुलाबनगर-बाँसबरेली

।। श्रीः ।।

अथ भोजप्रबन्धः

हिन्दी टीका सहितः

श्रीगणेशाय नमः। स्वस्ति श्रीमहाराजाधिराजस्य भोजराजस्य प्रबन्ध कथ्यते। आदौ धाराराज्ये सिन्धुलसंज्ञो राजा चिरं प्रजाः पर्यपालयत्। तस्य वृद्धत्वे भोज इति पुत्रः समजनि। स यदा पञ्च–वार्षिकस्तदा पिता ह्यात्मनो जरां ज्ञात्वा मुख्यामात्यानाहूय अनुजं मुञ्जं महाबलमालोक्य पुत्रं च बालं वीक्ष्य विचारयामास। यदाहं राजलक्ष्मीभारधारणसमर्थं सोदरमपहाय राज्यं पुत्राय प्रयच्छामि तदा लोकापवादः। अथवा बालं मे पुत्रं मुञ्जो राज्यलोभाद्विषादिना मारयिष्यति। तदा दत्तमपि राज्यं वृथा। पुत्रहानिर्वंशोच्छेदश्च।

स्वस्ति श्रीमहाराजाधिराज राजा भोज के प्रबन्ध को कहते हैं। प्रथम धारा नाम की राजधानी में सिन्धुल नामक राजा चिरकाल तक प्रजा का पालन करता था। उसे वृद्धावस्था में 'भोज' नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। जब भोज की पाँच वर्ष की अवस्था हुई, तब राजा ने अपनी शिथिल अवस्था जान कर मुख्य मन्त्री को बुलाकर महाबली छोटे भाई मुञ्ज को देखकर और अपने पुत्र बालक को देखकर विचार किया। यदि मैं राज्यलक्ष्मी का भार धारण करने योग्य भाई को त्याग कर पुत्र को राज्य दूं, तो संसार में मेरी निन्दा होगी अथवा मेरे बालक पुत्र को भाई मुञ्ज राज्य के लोभ से विष आदि के द्वारा मार डालेगा, तो पुत्र को दिया राज्य भी वृथा होगा एवम् पुत्र की हानि होगी और वंश नष्ट हो जायगा।

लोभः प्रतिष्ठा पापस्य प्रसूतिर्लोभ एव च।
द्वेषक्रोधादिजनको लोभः पापस्य कारणम् ।।१।।

लोभ पाप की जड़ है, लोभ से पाप उत्पन्न होता है और लोभ से ही द्वेष, क्रोधादि उत्पन्न होते हैं; अतएव लोभ ही पाप का कारण है ।।१।।

लोभात्क्रोधः प्रभवति क्रोधाद् द्रोहः प्रवर्तते।
द्रोहेण नरकं याति शास्त्रज्ञोऽपि विचक्षणः ।।२।।

लोभ से क्रोध और क्रोध से द्रोह उत्पन्न होता है, द्रोह करने से शास्त्र के मर्म को जानने वाला विद्वान् भी नरक में जाता है ।।२।।

मातरं पितरं पुत्रं भ्रातरं वा सुहृत्तमम् ।
लोभाविष्टो नरो हन्ति स्वामिनं वा सहोदरम् ।।३।।

लोभी मनुष्य माता, पिता, पुत्र, भ्राता, मित्र, स्वामी और सहोदर भाई को भी मार डालता है ।।३।।

इति विचार्य राज्यं मुञ्जाय दत्त्वा तदुत्सङ्गे भोजमात्मजं मुमोच । ततः क्रमाद्राजनि दिवं गते सम्प्राप्तराज्यसम्पत्तिर्मुञ्जो मुख्यामात्यं बुद्धिसागरनामानं व्यापारमुद्रया दूरीकृत्य तत्पदे अन्यं स्थापयामास । ततो गुरुभ्यः क्षितिपालपुत्रं वाचयति । ततः क्रमेण सभायां ज्योतिशास्त्रपारङ्गतः सकलविद्याचातुर्यवान् ब्राह्मणः समागमत् । राज्ञे स्वस्तीत्युक्त्वा उपविष्टः । स चाह– देव ! लोकोऽयं मां सर्वज्ञं वक्ति तत्किमपि पृच्छ ।।

यह विचार कर राज्य मुञ्ज को दें। मुञ्ज की गोद में अपने पुत्र भोज को उसने बिठा दिया। अनन्तर कुछ दिनों के पीछे राजा स्वर्ग को सिधारे। तब राज्यसम्पत्ति को पाकर मुञ्ज ने अपने बुद्धिसागर नामक प्रधान मन्त्री को मन्त्री के पद से हटा कर अन्य पुरुष को मन्त्री बनाया। फिर गुरुजनों के द्वारा 'राजा' कहाने लगा। इसके उपरान्त सभा में समस्त विद्याओं में चतुर एक ब्राह्मण ज्योतिषी आया और राजा से 'कल्याण हो' ऐसा कहकर बैठ गया। फिर उस ब्राह्मण ने राजा से कहा– हे देव ! जगत् में मुझे सर्वज्ञ कहते हैं, अतएव आप कुछ पूछिये।

कण्ठस्था या भवेद्विद्या सा प्रकाश्या सदा बुधैः ।
या गुरौ पुस्तके विद्या तया मूढः प्रवार्यते ।।४।।

कण्ठ में स्थित विद्या को सदा प्रकाश करते हैं, गुरुदेव में और पुस्तक में स्थित विद्या से मूर्खों को निवारण किया जाता है ।।४।।

इति राजानं प्राह ।

यह राजा से कहा।

ततो राजापि विप्रस्याहंभावमुद्रया चमत्कृतां तद्वार्तां श्रुत्वा अस्माकं जन्मत आरभ्यैतत्क्षणपर्यन्तं यद्यन्मयाचरितं यद्यत्कृतं तत्सर्वं वदसि यदि भवान्सर्वज्ञ एवेत्युवाच । ततो ब्राह्मणोऽपि राज्ञा यद्यत्कृतं तत्सर्वमाचख्यौ गूढव्यापारमपि । ततो राजापि सर्वाण्यभिज्ञानानि

ज्ञात्वा तुतोष। पुनश्च पञ्चषट्पदानि गत्वा पादयोः पतित्वा इन्द्रनीलपुष्परागमरकतवैडूर्यखचितसिंहासन उपवेश्य राजा प्राह–

तो राजा भी ब्राह्मण के अहङ्कार युक्त चमत्कारी वचनों को सुनकर बोला कि जन्म से लेकर आज तक मैंने जो आचरण किया है और कार्य किया है, उसको यदि आप कह दें, तो निश्चित ही आप सर्वज्ञ हो। राजा के ऐसे वचन सुनकर ब्राह्मण ने उसी समय राजा के किये हुए समस्त गुप्त से भी गुप्त कर्मों को कह दिया। फिर राजा ब्राह्मण को सर्वज्ञ जानकर प्रसन्न हुआ और पांच-छः पग चलकर राजा ने उस ब्राह्मण के चरणों में गिरकर इन्द्रनील मणि, पुष्पराग, मरकत मणि और वैदूर्य मणियों से जड़े हुए राजसिंहासन पर उस ब्राह्मण को बिठा कर कहा–

मातेव रक्षति पितेव हिते नियुङ्क्ते कान्तेव चाभिरमयत्यपनीय खेदम्। कीर्तिं च दिक्षु विमलां वितनोति लक्ष्मीं, किं किं न साधयति कल्पलतेव विद्या।।५।।

विद्या माता के समान रक्षा करती है, पिता के समान हित करने में लगी रहती है, स्त्री के समान खिन्न मन को प्रसन्न करती है, दिशाओं में निर्मल कीर्ति को फैलाती है और धन को बढ़ाती है, कल्पलता के समान विद्या मनुष्य का क्या-क्या साधन नहीं करती है? अर्थात् सभी मनोरथों को सिद्ध करती है।।५।।

ततो विप्रवराय दशाश्वानाजानेयान् ददौ। ततः सभाया-मासीनो बुद्धिसागरः प्राह राजानम्। देव भोजस्य जन्मपत्रिकां ब्राह्मणं पृच्छेति। ततो मुञ्जः प्राह। भोजस्य जन्मपत्रिकां विधेहीति। ततोऽसौ ब्राह्मण उवाच। अध्ययनशालाया भोज आनेतव्य इति। मुञ्जोऽपि ततः कौतुकादध्ययनशालामलङ्कुर्वाणं भोजं भटैराना-ययामास। ततः साक्षात्पितरमिव राजानमानम्य सविनयं तस्थौ। ततस्तद्रूपलावण्यमोहिते राजाकुमारमण्डले प्रभूतसौभाग्यं मही-मण्डलमागतं महेन्द्रमिव साकारं मन्मथमिव मूर्तिमत् सौभाग्यमिव भोजं निरूप्य राजानं प्राह दैवज्ञः। राजन्! भोजस्य भाग्योदयं वक्तुं विरिञ्चिरपि नालं कोऽहमुदरंभरिर्ब्राह्मणः। किञ्चित् तथापि वदामि स्वमत्यनुसारेण। भोजमितोऽध्ययनशालायां प्रेषय। ततो राजाज्ञया भोजे ह्यध्ययनशालां गते विप्रः प्राह–

फिर ब्राह्मण के लिये राजा ने दश उत्तम घोड़े दिये। सभा में बैठे हुए बुद्धिसागर नामक मन्त्री ने राजा से कहा– हे देव! भोज की जन्मपत्री दिखाकर ब्राह्मण से पूछिये।

फिर राजा ने ब्राह्मण से कहा- भोज की जन्मपत्री को विचारिये। ब्राह्मण ने कहा- भोज को पाठशाला से बुलाइये। तब महाराज मुञ्ज ने पाठशाला को भूषित करते हुए भोज को शूरवीर के द्वारा आनन्द से बुलाया। तब भोज ने आकर अपने चचा को पिता के समान प्रणाम किया और विनय के साथ खड़ा हो गया। भोज के रूप की लावण्यता से और राजकुमार के मुखमण्डल की कान्ति से सभी मोहित हो गये। सौभाग्यशाली इन्द्र पृथ्वी पर आ गये अथवा कामदेव मूर्ति धारण करके सभा में आ गये, इस भाँति भोज को देखकर उस ज्योतिषी ब्राह्मण ने राजा से कहा- हे राजन्! भोज के भाग्य का वर्णन ब्रह्माजी भी नहीं कर सकते, फिर उदर पूर्ण करने वाला मैं ब्राह्मण क्या कहूँ? तो भी अपनी बुद्धिबल के अनुसार कहता हूँ। भोज को पाठशाला में भेज दीजिये। तब राजा की आज्ञा से भोज पाठशाला को चला गया। तब ब्राह्मण ने कहा-

पञ्चाशत्पञ्च वर्षाणि सप्तमासदिनत्रयम्।
भोजराजेन भोक्तव्यः सगौडो दक्षिणापथः ।।६।।

पचपन वर्ष, सात महीने और तीन दिन तक गौड़ देश के साथ दक्षिणापथ पर (बंगाल के साथ दक्षिण पर) भोज राज्य करेगा।।६।।

इति तत्तदाकर्ण्य राजा चातुर्यादपहसन्निव सुमुखोऽपि विच्छायवदनोऽभूत्। ततो राजा ब्राह्मणं प्रेषयित्वा निशीथे स्वशयनमासाद्य एकाकी सन्ध्यचिन्तयत्। यदि राजलक्ष्मीर्भोजकुमारं गमिष्यति तदाहं जीवन्नपि मृतः।।

इन बातों को सुनकर चतुराई से हँसते हुए के समान प्रसन्नमुख रहने पर भी मुञ्ज की कान्ति जाती रही। फिर ब्राह्मण को विदा करके आधी रात के समय शय्या पर विराजमान होकर चिन्ता करने लगा। जो राजलक्ष्मी कुमार भोज को प्राप्त हो जायगी, तो मैं जीवन्मृत के समान रहूँगा।

तानीन्द्रियाण्यविकलानि तदेव नाम सा बुद्धिरप्रतिहता वचनं तदेव।। अर्थोष्मणा विरहितः पुरुषः क्षणेन सोऽप्यन्य एव भवतीति विचित्रमेतत्।।७।।

बड़े आश्चर्य की बात है कि जब मनुष्य धनहीन हो जाता है, तब वे ही स्वस्थ इन्द्रियां, वही नाम, वही अप्रतिहत बुद्धि और वही वचन रहने पर भी मनुष्य दूसरा-सा प्रतीत होने लगता है।।७।।

किञ्च-शरीरनिरपेक्षस्य दक्षस्य व्यवसायिनः।
बुद्धिप्रारब्धकार्यस्य नास्ति किञ्चन दुष्करम्।।८।।

शरीर की अपेक्षा न करने वाले, चतुर, व्यवसायी और बुद्धि से कार्य करने

वाले मनुष्य को कुछ भी दुष्कर नहीं है ।।८।।

असूयया हतेनैव पूर्वोपायोद्यमैरपि ।
कर्तॄणां गृह्यते सम्यक् सुहृऽद्भिर्मन्त्रिभिस्तथा ।।९।।

असूया के साथ हत होने से और पहले उपाय के उद्यमों से कार्य करने वाले राजादिकों की आज्ञा को मित्र और मन्त्री मानते हैं ।।९।।

ततोऽद्य मे किं दुःसाध्यम् ।।

तो उद्यम करने से मुझे क्या दुःसाध्य है ।।९।।

अतिदाक्षिण्ययुक्तानां शङ्कितानां पदे पदे ।
परापवादभीरूणां दूरतो यान्ति सम्पदः ।।१०।।

परम चतुर, पग-पग पर शङ्का करने वाले और दूसरों की निन्दा से काँपने वाले पुरुषों को दूर से ही सम्पत्ति प्राप्त होती है ।।१०।।

किञ्च- आदानस्य प्रदानस्य कर्तव्यस्य च कर्मणः ।
क्षिप्रमक्रियमाणस्य कालः पिबति सम्पदः ।।११।।

लेने के और करने के योग्य कार्य को मनुष्य शीघ्र न करने से उसकी सम्पत्ति को काल नष्ट कर देता है ।।११।।

अवमानं पुरस्कृत्य मानं कृत्वा च पृष्ठतः ।
स्वार्थं समुद्धरेत्प्राज्ञः स्वार्थभ्रंशो हि मूर्खता ।।१२।।

अपमान को सम्मुख और मान को पीछे कर विद्वान् अपने कार्य सम्पन्न करें, कार्य का बिगाड़ना ही मूर्खता है ।।१२।।

न स्वल्पस्य कृते भूरि नाशयेन्मतिमान्नरः ।
एतदेवातिपाण्डित्यं यत्स्वल्पाद्भूरिसाधनम् ।।१३।।

बुद्धिमान् पुरुष अल्प कार्य के लिये बहुत धनादि को नष्ट न करें, बुद्धिमानी इसी में है कि थोड़े कार्य से बड़े कार्य को सिद्ध कर लें ।।१३।।

जातमात्रं न यः शत्रुं व्याधिं वा प्रशमं नयेत् ।
अतिपुष्टाङ्गयुक्तोऽपि स पश्चात्तेन हन्यते ।।१४।।

जो उत्पन्न होते ही शत्रु और व्याधि को नष्ट नहीं करते, वह अत्यन्त पुष्ट शरीर वाले होने पर भी शत्रु और व्याधि के द्वारा मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं ।।१४।।

प्रज्ञागुप्तशरीरस्य किं करिष्यन्ति संहताः ।
हस्तन्यस्तातपत्रस्य वारिधारा इवारयः ।।१५।।

जिस प्रकार जल की धारा छतरी लगाये मनुष्य को कुछ नहीं करती, उसी

प्रकार बुद्धि से रक्षा करने वाले का शत्रु कुछ नहीं कर सकते हैं ।।१५।।

अफलानि दुरन्तानि समव्ययफलानि च ।
अशक्यानि च वस्तूनि नारभेत विचक्षण: ।।१६।।

जिन से कुछ फल न हो, जो कठिनता से सिद्ध हो, जिन में लाभ और हानि समान हो, जो सिद्ध न हो सके ऐसे कार्य विद्वानों को नहीं करने चाहिये ।।१६ ।।

ततश्चैवं विश्चितयन्नभुक्त एव दिनस्य तृतीये यामे एक एव मन्त्रयित्वा बङ्गदेशीयाधीश्वरस्य महाबलस्य वत्सराजस्य आकारणाय स्वमङ्गरक्षकं प्राहिणोत् । स चाङ्गरक्षको वत्सराजमुपेत्य प्राह । राजा त्वामाकारयतीति । तत: स्वरथमारुह्य परिवारेण परिवृत: समागतो रथादवतीर्य राजानमवलोक्य प्रणिपत्योपविष्ट: । राजा च सौधं निर्जनं विधाय वत्सराजं प्राह–

फिर इस भाँति से चिन्ता करके राजा मुञ्ज ने दिन के तीसरे पहर स्वयं ही निश्चय किया, अङ्गदेशाधिपति महाबली वत्सराज को बुलाने के लिये अपने शरीर की रक्षा करने वाले निज दूत को भेजा। उस अङ्गरक्षक ने वत्सराज के पास जाकर कहा कि– 'आपको राजा बुलाते हैं।' तब वत्सराज अपने रथ में बैठ कर परिवार के साथ आया। रथ से उतर कर राजा को देख प्रणाम करके बैठ गया। तब राजा ने सब मनुष्यों को हटाकर वत्सराज से कहा–

राजा तुष्टोऽपि भृत्यानां मानमात्रं प्रयच्छति ।
ते तु सम्मानितास्तस्य प्राणैरप्युपकुर्वते ।।१७।।

राजा प्रसन्न होकर सेवकों को मानपत्र देते हैं, उससे सम्मान को प्राप्त होकर सेवक तो अपने प्राणों की बाजी लगाकर स्वामी का उपकार करते हैं ।।१७।।

ततस्त्वया भोजोभुवनेश्वरीविपिने हन्तव्य: प्रथमयामे निशाया:। शिरश्चान्तपुरमानेतव्यमिति । स चोत्थाय नृपं नत्वाह–

अतएव तुम रात्रि के पहले पहर में भोज को भुवनेश्वरी के वन में मार डालो। उसके शिर को महल में ले आवो। तब वत्सराज खड़ा होकर राजा को प्रणाम करके बोला–

देवादेशा: प्रमाणम् । तथापि भवल्लालनात्किमपि वक्तुकामोऽस्मि । तत: सापराधमिति मे वच: क्षंतव्यम् ।।

हे देव! मैं आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करता हूँ, तो भी आपके लाड लडाने से कुछ कहना चाहता हूँ। इससे अपराध युक्त मेरे वचनों को क्षमा करियेगा।

भोजे द्रव्यं न सेना वा परिवारो बलान्वित: ।
परं पोत इवास्तेऽद्य स हन्तव्यः कथं प्रभो ।।१८।।

हे प्रभो! जब भोज के पास द्रव्य, सेना और परिवार का बल नहीं है, तो ऐसे दीन भोज को मारना कैसे उचित है? ।।१८।।

पारंपर्य इवासक्तस्त्वत्पादउदरम्भरिः ।
तद्वधे कारणं नैव पश्यामि नृपपुङ्गव ।।१९।।

हे नृपपुङ्गव! जो आप ही के चरणों में स्थित होकर अपना उदर-भरण करता है, उस भोज को मारने का कोई कारण नहीं देखता हूँ ।।१९।।

ततो राजा सर्वं प्रातः सभायां प्रवृत्तं वृत्तमकथयत्। स च श्रुत्वा हसन्नाह–

तब राजा ने वत्सराज से प्रातःकाल की सभा का समस्त वृत्तान्त कहा। उसे सुनकर वत्सराज ने हँसकर कहा–

त्रैलोक्यनाथो रामोऽस्ति वसिष्ठो ब्रह्मपुत्रकः ।
तेन राजाभिषेके तु मुहूर्तः कथितोऽभवत् ।।२०।।

ब्रह्माजी के पुत्र वसिष्ठजी ने त्रिलोकीनाथ रामचन्द्रजी के राज्याभिषेक का मुहूर्त बताया था ।।२०।।

तन्मुहूर्तेन रामोऽपि वनं नीतोऽवनीं विना ।
सीतापहारोऽप्यभवद्विरिंचिवचनं वृथा ।।२१।।

उस मुहूर्त ने रामचन्द्रजी को पृथ्वी का राजा न बनाकर वन में भेज दिया, वन में जाकर सीताहरण हुआ, इस तरह ब्रह्माजी का भी वचन वृथा हो गया ।।२१।।

जातः कोऽयं नृपश्रेष्ठ किञ्चिज्ज्ञ उदरंभरिः ।
यदुक्त्या मन्मथाकारं कुमारं हन्तुमिच्छसि ।।२२।।

हे नृपश्रेष्ठ! उदर को भरने वाले के कुछ जानने पर भी क्यों हो सकता है, जो आप उसके वचन पर श्रद्धा करके कामदेव के समान कुमार को मारने की अभिलाषा करते हो ।।२२।।

किञ्च– किन्नु मे स्यादिदं कृत्वा किन्नु मे स्यादकुर्वतः ।
इति संचिन्त्य मनसा प्राज्ञः कुर्वीत वा न वा ।।२३।।

ऐसा करने से मेरा क्या होगा और न करने से मेरा क्या होगा, इस भाँति मन में विचार कर बुद्धिमान् मनुष्य कार्य करते हैं और नहीं भी करते हैं, अर्थात् बुद्धिमान् पुरुष प्रथम कार्य के फल को विचार कर ही काम करते हैं ।।२३।।

उचितमनुचितं वा कुर्वता कार्यजातं, परिणतिरवधार्या यत्नतः पण्डितेन। अतिरभसकृतानां कर्मणामाविपत्तेर्भवति हृदयदाही शल्यतुल्यो विपाकः ।।२४।।

उचित हो या अनुचित हो, जिस कार्य को करो, प्रथम उसका परिणाम सोच लो, विना परिणाम जाने जल्दी से जो काम किया जाता है, विपत्ति से हृदय को जलाने वाले शल्य की समान उसका दुःखद फल होता है।।२४।।

किञ्च–येन सहासितमशितं हसितं कथितं च रहसि विस्रब्धम्।
तं प्रति कथमसतामपि निवर्त्तते चित्तमामरणात् ।।२५।।

जिसके साथ में बैठा, खाया, हँसा, बोला और अकेले में विश्वास किया जाता है, उससे दुष्ट मनुष्यों का भी चित्त मृत्युकाल तक कैसे हटता है? ।।२५।।

किञ्च–अस्मिन्हते वृद्धस्य राज्ञः सिन्धुलस्य परमप्रीति-पात्राणि महावीरास्तवैवानुमते स्थिताः त्वन्नगरमुल्लोलकल्लोलाः पयोधरा इव प्लांयप्यन्ति चिराद्बद्धमूलेऽपि त्वयि प्रायः पौरा भोजं भुवो भर्तारं भावयन्ति ।।

इसे मार डालने से सिन्धुल राजा के जो बड़े प्यारे शूरवीर तुम्हारी आज्ञा में स्थित हैं, वे ही तुम्हारी राजधानी को इस प्रकार नष्ट कर देंगे, जिस प्रकार घोर मेघ अति वर्षा करके नगर को डुबोकर नष्ट कर डालते हैं। यद्यपि चिरकाल से तुम्हारी जड़ दृढ़ हो रही है, तो भी नगरवासी भोज को ही पृथ्वी का स्वामी मानते हैं।

किञ्च–सत्यपि सुकृतकर्मणि दुर्नीतिश्चेच्छ्रियं हरत्येव।
तैलैः सदोपयुक्तां दीपशिखां विदलयति हि वातालिः ।।२६।।

श्रेष्ठ कर्म से यदि दुर्नीति का व्यवहार हो तो लक्ष्मी की शोभा जाती रहती है, जैसे तेल से पूर्ण दीप की शिखा को प्रबल वायु नष्ट कर देता है।।२६।।

देव! पुत्रवधः क्वापि न हिताय इत्युक्तं वत्सराजवचन-माकर्ण्य राजा कुपितः प्राह त्वमेव राज्याधिपतिः न तु सेवकः ।।

हे देव! पुत्र का वध किसी को भी हितकारी नहीं है, इस भाँति वत्सराज के वचनों को सुनकर राजा ने क्रोध के साथ कहा– तुम राज्य के अधिपति हो, सेवक नहीं हो।।

स्वाम्युक्ते यो न यतते स भृत्यो भृत्यपाशकः ।।
तज्जीवनमपि व्यर्थमजागलकुचाविव ।।२७।। इति।

स्वामी के वचन का जो पालन नहीं करता, वह सेवक सब सेवकों में नीच है और उसका जीवन भी बकरी के गले में लटकते हुए मांस के समान वृथा है।।२७।।

ततो वत्सराजः कालोचितमालोचनीयमिति मत्वा तूष्णीं बभूव। अथ लम्बमाने दिवाकरे उत्तुङ्गसौधोत्सङ्गादवतरन्तं कुपितमिव कृतान्तं वत्सराजं वीक्ष्य समेता अपि विविधेन मिषेण स्वभवनानि प्रापुर्भीताः सभासदः। ततः स्वसेवकान्स्वागार-परित्राणार्थं प्रेषयित्वा रथं भुवनेश्वरीभवनाभिमुखं विधाय भोजकुमारोपाध्यायाकारणाय प्राहिणोदेकं वत्सराजः। स चाह पण्डितम्। तात! त्वामाकारयति वत्सराज इति सोऽपि तदाकर्ण्य वज्राहत इव भूताविष्ट इव ग्रहग्रस्त इव तेन सेवकेन करेण धृत्वानीतः पण्डितः। तं च बुद्धिमान् वत्सराजः सप्रणाममित्याह। पण्डित तात! उपविश, राजकुमारं जयन्तमध्ययनशालाया आनयेति। आयान्तं जयन्तं कुमारं किमप्यधीतं पृष्ट्वा नैषीत्। पुनः प्राह पण्डितं विप्र! भोजकुमारमानयेति। ततो विदितवृत्तान्तो भोजः कुपितो ज्वलन्निव शोणितेक्षणः समेत्याह। आः पाप! राज्ञो मुख्यकुमारं एकाकिनं मां राजभवनाद् बहिरानेतुं तव का नाम शक्तिरिति वामचरणपादुका-मादाय भोजेन तालुदेशे हतो वत्सराजः। ततो वत्सराजः प्राह-भोज! वयं राजादेशकारिण इति बालं रथे निवेश्य खड्गमपकोशं कृत्वा जगामाशु महामायाभवनम्। ततो गृहीते भोजे लोकः कोलाहलं चक्रुः। हुंभावश्च प्रवृत्तः किं किमिति ब्रुवाणा भटा विक्रोशन्त आगत्य सहसा भोजं वधाय नीतं ज्ञात्वा हस्तिशाला-मुष्ट्रशालां वाजिशालां रथशालां प्रविश्य सर्वान् जघ्नुः। ततः प्रतोलीषु राजभवनप्राकारवेदिकासु बहिर्द्वारविटङ्केषु पुरसमीपेषु भेरीपटहमुरजमड्डुकडिंडिमनिनदाडम्बरेणाम्बरं विडम्बितमभूत्। के-चिद्भिसलासिना केचिद्विषेण केचित्कुन्तेन केचित् पाशेन केचिद्वह्निना केचित्परशुना केचिद्भल्लेन केचित्तोमरेण केचित्प्रासेन केचिदम्भसा केचिद्धारायां ब्राह्मणयोषितो राजपुत्रा राजसेवका राजानः पौराश्च प्राणपरित्यागं दधुः। तत सावित्रीसंज्ञा भोजस्य जननी विश्वजननीव स्थिता दासीमुखात् स्वपुत्रस्थितिमाकर्ण्य कराभ्यां नेत्रे पिधाय रुदती प्राह। पुत्र! पितृव्येन कां दशां गमितोऽसि। ये मया नियमा

उपवासाश्च त्वत्कृते कृताः तेऽद्य मे विफला जाताः दशापि दिशामुखानि शून्यानि। पुत्र! देवेन सर्वज्ञेन सर्वशक्तिना मृष्टाः श्रियः। पुत्र! एनं दासीवर्गं सहसा विच्छिन्नशिरसं पश्येत्युक्त्वा भूमावपतत्। ततः प्रदीप्ते वैश्वानरे समुद्धूतधूमस्तोमेनेव मलीमसे नभसि पापत्रासादिव पश्चिमपयोनिधौ मग्ने मार्तण्डमण्डले महामायाभवन-मासाद्य प्राह भोजं वत्सराजः। कुमार! भृत्यानां दैवत! ज्योतिः-शास्त्रविशारदेन केनचिद्ब्राह्मणेन तव राज्यप्राप्तावुदीरितायां राज्ञा भवद्वधो व्यादिष्ट इति। भोज प्राह-

अनन्तर वत्सराज समयानुसार कार्य करना चाहिये, यह विचार के चुप हो गये। जब सूर्य छिपने लगा तो ऊँचे महल से उतरते हुए क्रोधित यमराज के समान वत्सराज को देखकर सभी सभासद भयभीत होकर अनेक बहानों से अपने-अपने घरों को जाने लगे। फिर वत्सराज ने अपने घर की रक्षा के लिये नौकरों को भेज भुवनेश्वरी देवी के मन्दिर के सामने रथ को खड़ा करके भोज को पढ़ाने वाले पण्डित को बुलाने के निगित्त दूत भेजा। दूत ने जाकर पण्डित से कहा- हे महाराज! आपको वत्सराज बुलाते हैं। इस बात को सुनकर वज्र से हत हुए के समान, भूत चढ़े के समान और ग्रहों से ग्रसे हुए के समान उस दूत के द्वारा हाथ पकड़े हुए पण्डित आया। उस पण्डित को प्रणाम करके बुद्धिमान् वत्सराज ने कहा- हे पण्डितजी महाराज! बिराजिये; राजकुमार जयन्त को पाठशाला से बुलाइये। राजकुमार जयन्त के आने पर कुछ पढ़े हुए पाठ को पूछ कर वापस भेज दिया। फिर पण्डित से कहा- महाराज! अब भोज को बुलाइये, तब सब समाचार को जानने वाला भोज क्रोध से जलते हुए लाल नेत्र किये आकर बोला। हे पापी! राजा के मुख्य कुमार को अकेले राजभवन से बाहर ले जाने की तुझ में क्या सामर्थ्य है? ऐसा कहकर बायें चरण की खडांऊ को निकाल कर भोज ने वत्सराज के शिर पर मारी। तब वत्सराज ने कहा, हे भोज! मैं राजा का आज्ञाकारी हूँ, यह कह बालक भोज को रथ में बिठाकर म्यान से खड्ग निकाल कर देवी के मन्दिर पर पहुँचा। तब भोज पकड़ा गया, ऐसा कहते हुए लोग कोलाहल मचाने लगे, हुँ क्या है? क्या है? क्या हुआ? इस भाँति से ऊँचे शब्दों में पुकारते हुए शूरवीर योद्धा शीघ्र आये। भोज को मारने के लिये पकड़ा है, यह जान कर हस्तिशाला, उष्ट्रशाला और अश्वशाला में घुस कर सब को मारने लगे। फिर गलियों में, राजमहल की खाई, किले के पास, शहर के दरवाजों के सम्मुख, नगर के निकट- भेरी, ढोल, मृदङ्ग, डमरू, मड्डु और तम्बूरे आदि के शब्दों से आकाश गूंज उठा। तब मनुष्य तीक्ष्ण तलवार से, विष से, भाले से, फाँसी से, आग में जलकर, फरसे से, बरछी से, तोमर

से, खाँड़े से, जल में डूबकर और पृथ्वी पर गिरकर ही- ब्राह्मण स्त्री, राजपूत, राजसेवक आदि नगरवासी जब अपने-अपने प्राणों को खोने लगे। फिर सावित्री नाम वाली भोज की माता विश्वजननी के समान स्थित होकर दासी के मुख से अपने पुत्र की दशा को सुनकर हाथों से नेत्रों को मलती और रोती हुई बोली- हे पुत्र! चाचा ने तुम्हारी क्या दशा की? जो मैंने तुम्हारे लिये नियम के साथ व्रत किये थे, वे सब निष्फल हो गये। दशों दिशाओं के मुख शून्य हो गये। हे पुत्र! सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् देव ने समस्त ऐश्वर्य नष्ट कर दिये। हे पुत्र! इन सब दासियों को कटे हुए शिर की समान एक बार देखो। यह कहकर वह पृथ्वी पर गिर पड़ी। प्रज्ज्वलित अग्नि से निकले हुए धुएँ जैसे अँधेरा हो जाता है, उसी प्रकार आकाश मलीन हो गया। पाप के त्रास से सूर्यदेव पश्चिमी समुद्र में डूब गये, इस प्रकार दिन के छिप जाने पर वत्सराज ने देवी के मन्दिर पर पहुँच कर भोज से कहा। हे कुमार! हे सेवकों के स्वामी! किसी ज्योतिषी ब्राह्मण ने आकर तुम्हें राजा होना बताया था, इस कारण राजा ने तुम्हारा वध करने की आज्ञा दी है। भोज ने कहा-

रामे प्रव्रजनं बलेर्नियमनं पाण्डोः सुतानां वनं।
वृष्णीनां निधनं नलस्य नृपते राज्यात्परिभ्रंशनम्।।
पाकागारनिवेषणं च मरणं सन्चिन्त्य लङ्केश्वरे।
सर्वः कालवशेन नश्यति नरः वा परित्रायते।।२८।।

रामचन्द्रजी का वनवास, राजा बलि का बन्धन, पाण्डवों का वनवास, यादवों की मृत्यु, राजा नल का राज्य से भ्रष्ट होना और रसोइयां बनाना एवम् रावण की मृत्यु को देखो, सभी मनुष्य काल से नष्ट हुए। किसी ने काल के गाल से रक्षा पाई है? ।।२८।।

लक्ष्मीकौस्तुभपारिजातसहजः सूनुः सुधांभोनिधे--।
र्देवेन प्रणयप्रसादविधिना मूर्ध्ना धृतः शम्भुना।।
अद्याप्युज्झति नैव दैवविहितं क्षैण्यं क्षपावल्लभः।
केनान्येन विलंघ्यते विधिगतिः पाषाणरेखासखी।।२९।।

लक्ष्मी, कौस्तुभमणि और कल्पवृक्ष का सहोदर, अमृत रूपी क्षीरसागर का पुत्र और विनयपूर्वक प्रसन्नता से महादेवजी के भाल पर विराजमान जो चन्द्र है, वह अब भी दैवबल से क्षीणता को नहीं छोडता है और उसकी कला सदा क्षीण होती रहती है, जैसे पत्थर पर की लकीर नहीं मिटती है, वैसे ही विधाता की गति भी नहीं उलाँघी जा सकती है।।२९।।

विकटोर्व्यामिप्यटनं शैलारोहणमपांनिधेस्तरणम्।
निगडं गुहाप्रवेशो विधिपरिपाकः कथं नु सन्तार्यः।।३०।।

विकट भूमि पर विचरना, पर्वत पर चढ़ना, सागर में तैरना, कारागार में बन्धन और गुहा में प्रवेश करना यह विधाता का बनाया हुआ है, इससे कैसे पार पा सकता है ।।३०।।

अंभोधि स्थलतां स्थलं जलधितां धूलीलवः शैलतां ।
मेरुर्मृत्त्कणतां तृणं कुलिशतां वज्रं तृणप्रायताम् ।।
वह्निः शीतलतां हिमं दहनतामायाति यस्येच्छया ।
लीलादुर्ललिताद्भुतव्यसनिने देवाय तस्मै नमः ।।३१।।

जिसकी रक्षा से समुद्र स्थलभूमि के समान और स्थलभूमि जलमयी हो जाती है, धूल के कण पर्वत और पर्वत और सुमेरु पर्वत रज के कण हो जाते हैं, तिनके वज्र के समान और वज्र तिनके के समान हो जाते हैं, अग्नि शीतल और बरफ आग के समान हो जाती है, उन लीलामात्र से अद्भुत कर्म करने वाले देव को नमस्कार है ।।३१।।

ततो वटवृक्षस्य पत्रे आदाय एकं पुटीकृत्य जङ्घां छुरिकया छित्त्वा तत्र पुटके रक्तमारोप्य तृणेन एकस्मिन् पत्रे कञ्चन श्लोकं लिखित्वा वत्सं प्राह। महाभाग! एतत्पत्रं नृपाय दातव्यं त्वमपि राजाज्ञा विधेहीति। ततो वत्सराजस्यानुजो भ्राता भोजस्य प्राणपरित्यागसमये दीप्यमानमुखश्रियमवलोक्य प्राह–

फिर वटवृक्ष के दो पत्तों को लेकर एक का दोना बनाया, उस दोने में अपनी जङ्घा से छुरी के द्वारे रुधिर निकाल कर उसमें से दूसरे पत्ते पर कोई श्लोक लिखकर वत्सराज से कहा– हे महाभाग! इस पत्र को राजा को दे देना। अब आप राजा की आज्ञा का पालन करें। तब वत्सराज के छोटे भाई ने प्राणों को त्यागते समय भोज के मुख की उज्ज्वल कान्ति को देखकर कहा–

एक एव सुहृद्धर्मो निधनेऽप्यनुयाति यः ।
शरीरेण समं नाशं सर्वमन्यच्च गच्छति ।।३२।।

केवल एक मात्र धर्म ही ऐसा मित्र है, जो मरने के उपरान्त भी प्राणी के साथ जाता है, अन्य समस्त शरीर के साथ नष्ट हो जाते हैं ।।३२।।

न ततो ह सहायार्थे माता भार्या च तिष्ठति ।
न पुत्रमित्रे न ज्ञातिर्धर्मस्तिष्ठति केवलः ।।३३।।

शरीर के नष्ट होने पर माता, स्त्री, पुत्र, भाई, बन्धु आदि कोई भी सहायता करने को नहीं खड़ा होता, उस समय केवल धर्म ही सहायता करता है ।।३३।।

बलवानप्यशक्तोऽसौ धनवानपि निर्धनः ।
श्रुतिवानपि मूर्खश्च यो धर्मविमुखो जनः ।।३४।।

धर्म से विमुख हुए पुरुष को बलवान् होने पर भी निर्बल, धनी होने पर भी निर्धनी और शास्त्री होने पर भी मूर्ख जानो ।।३४।।

इहैव नरकव्याधेश्चिकित्सां न करोति यः ।
गत्वा निरौषधस्थानं स रोगी किं करिष्यति ।।३५।।

जो मनुष्य इस लोक में नरक रूपी व्याधि की चिकित्सा नहीं करता है, वही. रोगी औषध रहित स्थान में जाकर क्या करेगा ? ।।३५।।

जरां मृत्युं भयं व्याधिं यो जानाति स पण्डितः ।
स्वस्थस्तिष्ठेन्निषीदेद्वा स्वपेद्वा केनचिद्धसेत् ।।३६।।

जरावस्था, मृत्यु, भय और व्याधियों को जानने वाले को पण्डित कहते हैं, मनुष्य स्वस्थ होने से स्थित होता है, स्वस्थ होने से आराम करता है, स्वस्थ होने से सोता है और स्वस्थ होने से ही किसी से हँसता है ।।३६।।

तुल्यजातिवयोरूपान् हृतान् पश्यत मृत्युना ।
नहि तत्रास्ति ते त्रासो वज्रवद्हृदयं तदा ।।३७।। इति ।

अपनी समान जाति, आयु और रूप वाले मनुष्य को मृत्यु के द्वारा नष्ट होते हुए देखते हो तो भी तुम्हारे हृदय में त्रास नहीं होता, तुम्हारा हृदय वज्र के समान कठोर है ।।३७।।

ततो वैराग्यमापन्नो वत्सराजः भोजः क्षमस्वेत्युक्त्वा प्रणम्य तं च रथे निवेश्य नगराद्बहिर्घने तमसि गृहमागमय्य भूमिगृहान्तरे निक्षिप्य ररक्ष। स्वयमेव कृत्रिमविद्याविद्भिः सुकुण्डलं स्फुरद्वक्त्रं निमीलितनेत्रं भोजकुमारमस्तकं कारयित्वा तच्चादाय कनिष्ठो राजभवनं गत्वा राजानं नत्वा प्राह। श्रीमता यदादिष्टं तत्साधित-मिति। ततो राजा च पुत्रवधं ज्ञात्वा तमाह वत्सराज! खड्गप्रहार-समये तेन पुत्रेण किमुक्तमिति। वत्सस्तत्पत्रमदात्। राजा स्वभार्या-करेण दीपमानीय तानि पत्राक्षराणि वाचयति-

फिर वैराग्य को प्राप्त होकर वत्सराज ने भोज को प्रणाम करके क्षमा मांगी और अन्धेरा हो जाने पर भोज को रथ में बिठाकर नगर के बाहर अपने घर लाकर तहखाने में रखा एवम् चित्रकारों द्वारा सुन्दर कुण्डलों को धारे, प्रकाशित मुख की छवि युक्त, मिचे हुए नेत्र वाले भोज का मस्तक बनवा कर राजभवन में जाकर राजा को प्रणाम करके कहा कि- श्रीमान् की आज्ञा का पालन किया। तब राजा ने पुत्र के वध को जानकर वत्सराज से पूछा कि- मरते समय पुत्र ने क्या कहा? तब वत्सराज ने पत्र दे दिया। राजा रानी के हाथ दीपक मँगा कर पत्र बाँचने लगा।

मान्धाता च महीपतिः कृतयुगालङ्कारभूतो गतः ।
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः ।।
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो याता दिवं भूपते ।
नैकेनापि समं गता वसुमती मन्ये त्वया यास्यति ।।३८।।

सतयुग का भूषण स्वरूप राजा मान्धाता चला गया, समुद्र पर सेतु बांध कर रावण को मारने वाले रामचन्द्रजी कहां हैं? हे राजन! और भी युधिष्ठिर आदि राजा स्वर्ग को सिधार गये, परन्तु यह पृथ्वी किसी के भी साथ नहीं गई, अब जान पड़ता है कि आप इस पृथ्वी को अपने साथ ले जाओगे ।।३८।।

राजा च तदर्थं ज्ञात्वा शय्यातो भूमौ पपात । ततश्च देवीकर-कमलचालितचैलांचलानिलेन ससंज्ञो भूत्वा देवि ! मां मा स्पृश हा हा पुत्रघातिनमिति विलपन् कुरर इव द्वारपालानानाय्य ब्राह्मणा-नानयतेत्याह । ततः स्वाज्ञया समागतान् ब्राह्मणान्नत्वा मया पुत्रो हतः तस्य प्रायश्चित्तं वदध्वमिति वदन्तं ते तमूचुः । राजन् सहसा वह्निमा-विशेति । ततः समेत्य बुद्धिसागरः प्राह । यथा त्वं राजाधमस्तथैव अमात्याधमो वत्सराजः । तव किल राज्यं दत्त्वा सिन्धुलनृपेण तेन त्वदुत्सङ्गे भोजः स्थापितः तच्च त्वया पितृव्येणान्यत्कृतम्-

राजा उस श्लोक के अर्थ को जान कर शय्या से पृथ्वी पर गिर गया। तब रानी ने अपने करकमलों द्वारा वस्त्र के आँचल से पवन करके राजा को चैतन्यता प्राप्त कराई। तब राजा ने कहा- हे देवि! हा हा! मुझ पुत्रघाती को मत छुओ। इस भाँति कुररी पक्षी की समान विलाप करता हुआ द्वारपालों को बुलाकर बोला कि ब्राह्मणों को बुला लाओ। अनन्तर अपनी आज्ञानुसार आये ब्राह्मणों को प्रणाम करके कहा- मैंने पुत्र को मार डाला है, सो आप इस पुत्रवध के पाप का प्रायश्चित्त बताइये। राजा के ऐसे वचन सुनकर ब्राह्मण बोले- हे राजन! सहसा अग्नि में प्रवेश कीजिये। तब वहाँ पर विराजमान बुद्धिसागर ने कहा- जैसे आप अधम राजा हो, वैसे ही मन्त्री वत्सराज भी अधम है। कारण सिन्धुल राजा ने आपको राज्य देकर आपकी गोद में भोज को बिठा दिया था। उसके चाचा होकर भी आपने उसे मरवा डाला।

कतिपयदिवसस्थायिनी मदकारिणि यौवने दुरात्मानः ।
विदधति तथापराधं जन्म हि तेषां यथा वृथा भवति ।।३९।।

दुष्ट पुरुष कुछ काल स्थित रहने वाले मदकारी यौवन में ऐसे अपराध कर डालते हैं, जिससे उनका जन्म ही वृथा हो जाता है ।।२९।।

सन्तस्तृणोत्सारणमुत्तमाङ्गात्सुवर्णकोट्यर्पणमामनन्ति।
प्राणव्ययेनापि कृतोपकाराः खलाः परं वैरमिवोद्वहन्ति।।४०।।

सज्जन पुरुष अपने सिर पर से तिनके को उतार देने वाले के लिये करोड़ों सोने की मोहर देकर मान लेते हैं और दुष्ट पुरुष प्राण त्याग करके भी उपकार करने वाले को वैरी के समान मानते हैं।।४०।।

उपकारश्चापकारो यस्य व्रजति विस्मृतिम्।
पाषाण हृदयस्यास्य जीवतीत्यभिधा मुधा।।४१।।

किये हुए अपकार और उपकारों को जो भूल जाते हैं, उन पत्थर के समान हृदय वालों का जीवन ही वृथा है।।४१।।

यथाङ्कुरः सुसूक्ष्मोऽपि प्रयत्नेनाभिरक्षितः।
फलप्रदो भवेत्काले तथा लोकः सुरक्षितः।।४२।।

जिस भाँति छोटा अङ्कुर भी यत्न के साथ रक्षित रहने से समय पर फल देता है, उसी भाँति उत्तमता से रक्षित किया हुआ पुरुष समय पर फल देता है।।४२।।

हिरण्यधान्यरत्नानि धनानि विविधानि च।
तथान्यदपि यत्किञ्चित्प्रजाभ्यः स्युर्महीभृताम्।।४३।।

सुवर्ण, धान्य, रत्न, विविध भाँति के धन तथा अन्य प्रकार के जो कुछ पदार्थ हैं, वे सब राजाओं के प्रजा से होते हैं।।४३।।

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापपराः सदा।
राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजाः।।४४।।

राजा के धर्मात्मा होने से प्रजा धार्मिक, राजा के पापी होने से प्रजा भी पापी होती है, राजा के अनुसार ही प्रजा चलती है। इस कारण जैसा राजा होता है, वैसी ही प्रजा होती है।।४४।।

ततो रात्रावेव वह्निप्रवेशननिश्चिते राज्ञि सर्वे सामन्ताः पौराश्चमिलिताः। पुत्रं हत्वा पापभयाद् भीतो नृपतिर्वह्निं प्रविशतीति किंवदन्ती सर्वत्राजनि। ततो बुद्धिसागरो द्वारपालमाहूय न केनापि भूपालभवनं प्रवेष्टव्यमित्युक्त्वा नृपमन्तःपुरे निवेश्य सभायामेकाकी सन् उपविष्टः। ततो राजमरणवार्तां श्रुत्वा वत्सराजः सभागृहमागत्य बुद्धिसागरं नत्वा शनैः प्राह तात! मया भोजराजो रक्षित इति। बुद्धिसागरश्च कर्णे तस्य किमप्यकथयत्। तच्छ्रुत्वा वत्सराजश्च

निष्क्रान्तः। ततो मुहूर्तेन कोऽपि करकलितदन्तींद्रदन्तदण्डो विरचितप्रत्यग्रजटाकलापः कर्पूरकरंबितभसितोद्धर्तितसकलतनु-मूर्तिमान्मन्मथ इव स्फटिककुण्डलमण्डितकर्णयुगलः कौशेयकौपीनो मूर्तिमांश्चन्द्रचूड इव सभां कापालिकः समागतः। तं वीक्ष्य बुद्धिसागरः प्राह। योगीन्द्र कुत आगम्यते कुत्र ते निवेशश्च। कापालिके त्वयि यच्चमत्कारिकलाविशेष औषधविशेषोऽप्यस्ति। योगी प्राह-

अनन्तर राजा का रात्रि में अग्नि में प्रवेश निश्चित हुआ। तब सब सामन्त और नगर निवासी मिलकर कहने लगे कि पुत्र को मार कर पाप के भय से डरकर राजा अग्नि में प्रवेश करता है, यह बात सर्वत्र फैल गई। तब बुद्धिसागर मन्त्री ने द्वारपालों को बुलाकर कहा कि- राजा के महल में किसी को न आने देना और स्वयं राजा के महल में जाकर सभा के स्थान पर अकेला ही बैठ गया। फिर राजा की मृत्यु का समाचार सुनकर वत्सराज ने सभा में आकर बुद्धिसागर को प्रणाम करके धीरे-धीरे कहा- हे तात! मैंने भोज को बचा रखा है। तब बुद्धिसागर ने उसके कान में कुछ कहा। उसे सुनकर वत्सराज चला गया, फिर दो घड़ी के पश्चात् हाथी दाँत का दण्ड धारे, जटाओं का जूड़ा बनाये, कपूर के चूर्ण से मिली भस्म को सर्वाङ्ग में रमाये, कामदेव के समान प्रकाशमान स्फटिकमणि के कुण्डलों से दोनों कानों को भूषित किये, रेशमी वस्त्र की कौपीन धारण किये और हाथ में कपाल लिये हुए, साक्षात् महादेवजी के समान एक योगी सभामण्डप में आया। उसे देखकर बुद्धिसागर ने कहा- हे योगीन्द्र! कहाँ से आये हो और आपका स्थान कहाँ है? आपकी कपाली में चमत्कारी कलाविशेष कोई औषधि है क्या? योगी ने कहा-

देशे देशे भवनं भवने भवने तथैव भिक्षान्नम्।
सरसि च नाद्यं सलिलं शिवशिव तत्त्वार्थयोगिनां पुंसाम्।।४५।।

शिव-शिव तत्त्व के अर्थ को जानने वाले योगियों का हर देश में घर है और प्रत्येक घर में भिक्षा का अन्न है तथा सरोवर एवम् नदियों में जल है।।४५।।

ग्रामे ग्रामे कुटि रम्या निर्झरे निर्झरे जलम्।
भिक्षायां सुलभं चान्नं विभवैः किं प्रयोजनम्।।४६।।

प्रत्येक ग्राम में रमणीक कुटी है, झरनों में सुन्दर जल है, फिर सुगमता से भिक्षा का अन्न प्राप्त हो जाता है, तब ऐश्वर्य का क्या प्रयोजन है?।।४६।।

देव! अस्माकं नैको देशः सकलभूमण्डलं भ्रमामः। गुरुपदेशे तिष्ठामः। निखिलं भुवनतलं करतलामलकवत्पश्यामः सर्पदष्टं

विषव्याकुलं रोगग्रस्तं शस्त्रभिन्नशिरस्कं कालशिथिलितं तात! तत्क्षणादेव विगतसकलव्याधिसश्चयं कुर्म इति। राजापि कुड्यान्तर्हित एव श्रुत सकलवृत्तान्तः सभामागतः कापालिकं दण्डवत्प्रणम्य योगीन्द्र! रुद्रकल्प परोपकारपरायण! महापापिना मया हतस्य पुत्रस्य प्राणदानेन मां रक्षेत्याह। अथ कापालिकोऽपि राजन्! मा भैषीः। पुत्रस्ते न मरिष्यति शिवप्रसादेन गृहमेष्यति परं श्मशानभूमौ बुद्धिसागरेण सह होमद्रव्याणि प्रेषयेत्यवोचत्। ततो राज्ञा कापालिकेन यदुक्तं तत्सर्वं तथा कुर्विति बुद्धिसागरः प्रेषितः। ततो रात्रौ गूढरूपेण भोजोऽपि तत्र नदीपुलिने नीतः। योगिनो भोजो जीवित इति प्रथा च समभूत्। ततो गजेन्द्रारूढो बन्दिभिः स्तूयमानो भेरीमृदङ्गादिघोषैर्जगद्बधिरीकुर्वन् पौरामात्यपरिवृत्तो भोजराजो राजभवनमगात्। राजा च तमालिंग्य रोदिति। भोजोऽपि रुदन्तं निवार्य अस्तौषीत्। ततः सन्तुष्टो राजा निजसिंहासने तस्मिन्निवेशयित्वा छत्र चामराभ्यां भूषयित्वा तस्मै राज्यं ददौ। निजपुत्रेभ्यः प्रत्येकमेकैकं ग्रामं दत्त्वा परमप्रेमास्पदं जयन्तं भोजसकाशे निवेशयामास। ततः परलोकपरित्राणो मुञ्जोऽपि निजपट्टराज्ञीभिः सह तपोवनभूमिं गत्वा परं तपस्तेपे। ततो भोजभूपालश्च देवब्राह्मणप्रसादाद्राज्यं पालयामास॥

इति भोजराजस्य राज्यप्राप्तिप्रबन्धः।

हे देव! हमारा कोई नियत एक देश नहीं है, समस्त भूमण्ड पर विचरते हैं और गुरुदेव के उपदेश से स्थित रहते हैं। समस्त पृथ्वीमण्डल को करतलगत आँवले के समान प्रत्यक्ष देखते हैं। हे तात! सर्प से डसे को, विष से व्याकुल को, रोगी को, शस्त्र द्वारा छिन्न मस्तक वाले को और काल से शिथिल पुरुष को हम तत्काल व्याधियों से रक्षित कर देते हैं। राजा ने इन सब बातों को दीवार की ओट में खड़े हुए सुना। फिर सभा में आकर कपालधारी योगी को प्रणाम करके कहा– हे योगिराज! हे शिवजी के सनान परोपकार करने वाले! मुझ महापापी ने पुत्र को मरवा डाला है, उसे आप जीवित करके मेरी रक्षा करें। तब योगी ने कहा– हे राजन्! तुम भय मत करो, तुम्हारा पुत्र नहीं मरेगा, शंकर की कृपा से घर आ जायेगा, तुम बुद्धिसागर के द्वारा स्मशानभूमि में हवन की सामग्री पहुँचा दो। राजा ने बहुत अच्छा, ऐसा ही होगा, यह कहकर बुद्धिसागर को भेजा। फिर रात्रि में गुप्त रूप से भोज को नदी के किनारे प्राप्त करा

दिया, तब योगिराज ने भोज को जीवित कर दिया यह बात फैल गयी। उपरान्त हाथी पर चढ़कर बन्दीजनों द्वारा स्तुति को प्राप्त होते हुए, मृदङ्ग आदि बाजों के शब्द से गूँजते हुए, नगरनिवासी और मन्त्रियों के साथ राजा भोज राजभवन में आया। तब राजा भोज से मिलकर रोने लगा। भोज ने राजा को रोने से रोक करके स्तुति की। पश्चात् राजा ने प्रसन्न होकर राजसिंहासन पर भोज को बिठा कर छत्र, चामरों से भूषित करके राज्य दे दिया और अपने बेटों को एक-एक ग्राम देकर परम प्रेमस्थान जयन्त को भोज की गोद में बिठा दिया। अनन्तर परलोक में स्थान पाने की अभिलाषा से मुञ्ज अपनी पटरानियों समेत तपोवन में जाकर तपस्या करने लगा और राजा भोज देवता और ब्राह्मणों की कृपा से राज्य करने लगा।

राजा भोज का राज्यप्राप्ति प्रबन्ध समाप्त।

*****

ततो मुञ्जे तपोवनं याते बुद्धिसागरं मुख्यामात्यं विधाय स्वराज्यं बुभुजे भोगराजभूपतिः। एवमक्रामति काले कदाचिद्राज्ञा क्रीडतोद्यानं गच्छता कोऽपि धारानगरवासी विप्रो लक्षितः। स च राजानं वीक्ष्य नेत्रे निमील्य आगच्छन् राज्ञा पृष्टः। द्विज! त्वं मां दृष्ट्वा न स्वस्तीति जल्पसि। विशेषेण लोचने निमीलयसि तत्र को हेतुरिति। विप्र आह। देव! त्वं वैष्णवोऽसि विप्राणां नोपद्रवं करिष्यसि ततस्त्वत्तो न मे भीतिः, किं तु कस्मैचित्किमपि न प्रयच्छसि, तेन तव दाक्षिण्यमपि नास्ति। अतस्ते किमाशीर्वचसा। किं च 'प्रातरेव कृपणमुखावलोकनात् परतोऽपि लाभहानिः स्यात्" इति लोकोक्त्या लोचने निमीलिते।।

मुञ्ज के तपोवन जाने पर राजा भोज ने अपने पुराने मन्त्री बुद्धिसागर को मन्त्री बनाया और अपने राज्य को भोगने लगा। इस भाँति से चिरकाल के उपरान्त क्रीड़ास्थान रूपी बगीचे में आते समय राजा भोज ने धारानगरवासी किसी ब्राह्मण को देखा। उस ब्राह्मण ने राजा को देखकर अपने दोनों नेत्र मींच लिये, तब राजा ने कहा कि- हे भूदेव! आपने मुझे देखकर 'स्वस्ति' कहकर आशीर्वाद तो न दिया, परन्तु अपने नेत्र मींच लिये, सो इसका क्या कारण है? ब्राह्मण ने कहा- हे देव! आप वैष्णव हो, अतएव ब्राह्मणों पर उपद्रव न करोगे, इस कारण मैं निर्भय हूँ। किसी को कुछ भी नहीं देते हो, इस कारण आप उदार नहीं हो, इसलिये आशीर्वाद देने से क्या लाभ? दूसरे प्रातः समय कृपण का मुख देखने से दूसरों की भी हानि होती है। इस लौकिक किंवदन्ती से मैंने नेत्र मींच लिये।

अपि च–

प्रसादो निष्फलो यस्य कोपश्चापि निरर्थकः ।

न तं राजानमिच्छन्ति प्रजाः षंढमिव स्त्रियः ।।४७।।

और भी जिसकी प्रसन्नता और क्रोध निष्फल हो, उस राजा को प्रजा नहीं चाहती है, जैसे नपुंसक पुरुष को स्त्री नहीं चाहती है ।।४७।।

अप्रगल्भस्य या विद्या कृपणस्य च यद्धनम् ।

यच्च बाहुबलं भीरोर्व्यर्थमेतत्त्रयं भुवि ।।४८।।

विना प्रगल्भता (ढिलाई) की विद्या, कृपण का धन और डरपोक मनुष्य की भुजाओं का बल पृथ्वी पर निष्फल जानो ।।४८।।

देव ! मत्पिता वृद्धः काशीं प्रति गच्छन् मया शिक्षां पृष्टः ।

तात ! मया किं कर्त्तव्यमिति । पित्रा चेत्थमभ्यधायि ।।

हे देव ! जब मेरे पिता काशीजी को जाने लगे, तब मैंने पूछा कि– हे तात ! मुझे क्या करना चाहिये ? तब पिता ने कहा–

यदि तव हृदयं विद्वन् सुनयं स्वप्नेऽपि मास्म सेविष्ठाः ।

सचिवजितं षंढचितं युवतिजितं चैव राजानम् ।।४९।।

हे विद्वान् ! जा कर जो तुम्हारा हृदय नीति से पूर्ण है, तो तुम मन्त्रियों के, नपुंसकों के और स्त्रियों के वशीभूत राजा का स्वप्न में भी स्मरण नहीं करना ।।४९।।

पातकानां समस्तानां द्वे परे तात पातके ।

एकं दुस्सचिवो राजा द्वितीयं च तदाश्रयः ।।५०।।

हे तात ! सब पापों में दो पाप बड़े हैं, एक तो दुष्ट मन्त्री के वशीभूत राजा और दूसरे उस राजा के आश्रय में रहना ।।५०।।

अविवेकमतिर्नृपतिर्मंत्रिषु गुणवत्सु वक्रितग्रीवः ।

यत्र खलाश्च प्रबलास्तत्र कथं सज्जनावसरः ।।५१।।

मूर्ख राजा की गुणवान् मन्त्रिगणों पर तिरछी दृष्टि रहती है, जहाँ दुष्टों की प्रबलता होती है, वहाँ सज्जनों को अवसर कहाँ मिलता है ? ।।५१।।

राजा सम्पत्तिहीनोऽपि सेव्यः सेव्यगुणाश्रयः ।

भवत्याजीवनं तस्मात्फलं कालान्तरादपि ।।५२।।

सम्पत्ति से हीन होने पर भी गुणी राजा का सम्मान करें, कारण समय आने पर उससे आजीविका रूपी फल प्राप्त होता है ।।५२।।

अदातुर्दाक्षिण्यं नहि भवति। देव! पुरा कर्णदधीचिशिविविक्रमप्रमुखाः क्षितिपतयो यथा परलोकमलङ्कुर्वाणा निजदानसमुद्भूतदिव्यनवगुणैर्निवसन्ति महीमण्डले तथा किमपरे राजानः ?।।

कृपण को चतुर नहीं कहते, हे देव! पूर्व के राजा कर्ण, दधीचि, शिबि और विक्रमादिकों ने जैसे परलोक को भूषित किया है और अपने हाथ के द्वारा दान से उत्पन्न हुए नव गुणों से युक्त पृथ्वी पर वास किया है, वैसे क्या और राजा हैं ?

देहे पातिनि का रक्षा यशो रक्ष्यमपातवत्।
नरः पतित कायोऽपि यशःकायेन जीवति।।५३।।

नष्ट होने वाले शरीर की क्या रक्षा करें, अविनाशी यश की रक्षा करें, मृत्यु के होने पर मनुष्य का शरीर नष्ट हो जाता है, परन्तु यश रूपी शरीर मृत्यु के उपरान्त भी अमर रहता है।।५३।।

पण्डिते चैव मूर्खे च बलवत्यपि दुर्बले।
ईश्वरे च दरिद्रे च मृत्योः सर्वत्र तुल्यता।।५४।।

पण्डित, मूर्ख, बलवान्, निर्बल, धनी और निर्धनी सभी में मृत्यु की समानता जानो।।५४।।

निमेषमात्रमपि ते वयो गच्छन्न तिष्ठति।
तस्माद्देहेष्वनित्येषु कीर्तिमेकामुपार्जयेत्।।५५।।

क्षणमात्र भी न ठहरने वाली तुम्हारी आयु बीती चली जाती है, अतएव इस अनित्य देह में केवल कीर्ति का सञ्चय करो।।५५।।

जीवितं तदापि जीवितमध्ये गण्यते सुकृतिभिः किमु पुंसाम्।
ज्ञानविक्रमकलाकुललज्जात्यागभोगरहितं विफलं यत्।।५६।।

जो ज्ञान् पराक्रम, कला, कुल की लाज, त्याग और भोग से रहित हैं, वे क्या जीते जी सज्जनों की श्रेणी में गिने जा सकते हैं ? अर्थात् नहीं गिने जाते।।५६।।

राजापि तेन वाक्येन पीयूषपूरस्नात इव परब्रह्मणि लीन इव लोचनाभ्यां हर्षाश्रूणि मुमोच। प्राह च द्विज विप्रवर! शृणु–

राजा भी उसके वचन द्वारा अमृतपूर्ण सरोवर में गोता लगाने की समान परब्रह्म में लीन होकर नेत्रों से आनन्द के आँसू बहाता हुआ बोला कि– हे विप्रवर! सुनो–

सुलभाः पुरुषा लोके सततं प्रियवादिनः।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।।५७।।

संसार में प्रिय वचन बोलने वाले मनुष्य बहुत हैं, परन्तु अप्रिय रूपी हित के

वचन कहने और सुनने वाले मनुष्य बहुत कम हैं ।।५७।।

म नीषिणः सन्ति न ते हितैषिणो हितैषिणः सन्ति न ते मनीषिणः।
सुहृच्च विद्वानपि दुर्लभो नृणां यथौषधं स्वादु हितं च दुर्लभम्।५८।

बुद्धिमान् पुरुष हितैषी नहीं होते और हितैषी पुरुष बुद्धिमान् नहीं होते हैं, जिस भाँति हितकारी और स्वादिष्ट औषधि दुर्लभ है, उसी भाँति मनुष्य को विद्वान् मित्र मिलना दुर्लभ है ।।५८।।

इति विप्राय लक्षं दत्त्वा किं ते नामेत्याह। विप्रः स्वनाम भूमौ लिखति गोविन्द इति। राजा वाचयित्वा विप्र। प्रत्यहं राजभवन-मागन्तव्यं न ते कश्चिन्निषेधः। विद्वांसः कवयश्च कौतुकात् सभामा-नेतव्याः कोऽपि विद्वान् न दुःखभागस्तु एनमधिकारं पालयेत्याह। एवं गच्छत्सु कतिपयदिवसेषु राजा विद्वत्प्रियः दानवित्तेश्वर इति प्रथामगात्। ततो राजानं दिदृक्षवः कवयो नानादिग्भ्यः समागताः। एवं वित्तादिव्ययं कुर्वाणं राजानं प्रति कदाचित् मुख्यामात्ये-नेत्थमभ्यधायि। देव! राजानः कोशबला एव विजयिनो नान्ये-

इतना कहकर राजा ने ब्राह्मण को लाख रुपये देकर कहा- महाराज! आपका नाम क्या है ? ब्राह्मण ने अपने नाम को पृथ्वी पर गोविन्द लिख दिया। राजा ने उसके नाम को पढ़कर कहा- हे विप्र! आप प्रतिदिन राजभवन में आया करें। आपका कोई निषेध नहीं है। विद्वान् और कवियों को सभा में सहर्ष लाया करें। कोई विद्वान् दुःखी न रहे, यह आपको अधिकार दिता हूँ। इस भाँति से कुछ दिनों के पश्चात् राजा विद्वानों का हितैषी और बड़ा दानी है, यह बात फैल गई। तब राजा को देखने के लिये देश-देशान्तरों से कविजन आने लगे। ऐसे धनादि का व्यय करते देखकर राजा से मुख्यमन्त्री ने एक दिन कहा कि- देव! विपुल धन वाले राजा ही विजयी होते हैं, दूसरे नहीं-

स जयी वरमातङ्गा यस्य कस्यास्ति मेदिनी।
कोशो यस्य स दुर्धर्षो दुर्गं यस्य स दुर्जयः ।।५९।।

जिसके उत्तम हाथियों से युक्त भूमि है, वह जय पाता है। जिसके खजाना है, उसका प्रचण्ड प्रताप जानो और जिसके किला होता है, वह दुर्जय होता है ।।५९।।

देव! लोकं पश्य-

हे देव! लोक को देखें।

प्रायो धनवतामेव धने तृष्णा गरीयसी।
पश्य कोटिद्वयासक्तं लक्षाय प्रवणं धनुः ।।६०।। इति।

प्रायः धनियों की धन में बड़ी तृष्णा होती है। देखें- दो करोड़ रुपये वाला मनुष्य लाख रुपये पाने के लिये बड़े उपाय करता है। (यहां दूसरा भाव यह है कि धनुष के दो कोटि (अग्रभाग) होते हैं, बीच से धनुष झुकता है, यहाँ लक्ष नाम निशाने का होने से अर्थ होता है।) दो कोटि में आसक्त होकर धनुष को लक्ष (निशान) के लिये झुके हुए को देखें।।६०।।

राजा च तमाह-

इसे सुनकर राजा ने कहा-

दानोपभोगवन्ध्या या सुहृद्भिर्या न भुज्यते।
पुंसां समाहिता लक्ष्मीरलक्ष्मीः क्रमशो भवेत्।।६१।।

जो दान भोग में नहीं आती, जो मित्रों द्वारा नहीं भोगी जाती, वह पुरुषों की एकत्रित की हुई लक्ष्मी क्रमानुसार अलक्ष्मी हो जाती है।।६१।।

इत्युक्त्वा राजा तं मन्त्रिणं निजपदाद्दूरीकृत्य तत्पदेऽन्यं दिदेश। आह च तम्-

ऐसा कहकर राजा ने उस मन्त्री को मन्त्री पद से हटाकर दूसरे को मन्त्री बनाया और उससे कहा-

लक्षंमहाकवेर्देयं तदर्धं विबुधस्य च।
देयं ग्रामैकमर्थ्यस्य तस्याप्यर्थं तदर्थिनः।।६२।।

महाकवि को एक लाख रुपये देना, पण्डित को पचास हजार, अर्थ के जानने वाले को एक गाँव और कहे अर्थ को समझाने वाले के लिये उससे आधा धन देना।।६२।।

यश्च मे अमात्यादिषु वितरणनिषेधमनाः स हन्तव्यः। उक्तं च-

जो मेरे आत्मीय जन दान करने का निषेध करेंगे, तो उनको मारना चाहिये। कहा भी है-

यद्ददाति यदश्नाति तदेव धनिनां धनम्।
अन्ये मृतस्य क्रीडन्ति दारैरपि धनैरपि।।६३।।

जो देता है और जो भोगता है उसी को धनी का धन समझो, मरने के पश्चात् धन एवम् स्त्रियों को दूसरे ही भोगते हैं।।६३।।

प्रियः प्रजानां दातैव न पुनर्द्रविणेश्वरः।
आगच्छन् कांक्ष्यते लोकैर्वारिदो न तु वारिधिः।।६४।।

दाता ही सब को प्यारा लगता है, धनी को कोई प्यार नहीं करता, जैसे मनुष्य मेघों का आना चाहते हैं समुद्र का नहीं।।६४।।

संग्रहैकपरः प्रायः समुद्रोऽपि रसातले।
दातारं जलदं पश्य गर्जन्तं भुवनोपरि ।।६५।।

सर्वसंग्रहकारी समुद्र रसातल में पड़ा है और दाता मेघ भुवन के ऊपर गर्जते हुए दिखते हैं ।।६५।।

एवं वितरणशालिनं भोजराजं श्रुत्वा कश्चित्कलिङ्गदेशात्कविरुपेत्य मासमात्रं तस्थौ। न च क्षोणीन्द्रदर्शनं भजति। आहारार्थे पाथेयमपि नास्ति। ततः कदाचिद्राजा मृगयाभिलाषी बहिर्निर्गतः। स कविर्दृष्ट्वा राजानमाह–

इस भाँति राजा भोज को दानी सुनकर कलिङ्ग देशवासी कवि आकर एक मास रहा, परन्तु राजा के दर्शन नहीं हुए। इधर इस कवि के पास का भोजन के लिये पैसा भी चुक गया। किसी समय राजा शिकार खेलने को बाहर निकला, तो कवि ने राजा को देखकर कहा–

दृष्टे श्रीभोजराजेन्द्रे गलन्ति त्रीणि तत्क्षणात्।
शत्रोः शस्त्रं कवेः कष्टं नीवीबन्धो मृगीदृशाम् ।।६६।।

श्री राजा भोज के दर्शन करते ही तीन चीजें गिर जाती हैं, एक तो शत्रु का शस्त्र, दूसरे कवि का कष्ट और तीसरे स्त्रियों की नीवी ।।६६।।

राजा लक्षं ददौ। ततस्तस्मिन्मृगयारसिके राजनि कश्चन पुलिन्दपुत्रो गायति। तेन गीतमाधुर्येण तुष्टो राजा तस्मै पुलिन्दपुत्राय पञ्चलक्षं ददौ। तदा कविः तद्दानमत्युन्नतं किरातपोतं च दृष्ट्वा नरेन्द्रपाणिकमलस्थपङ्कजमिषेण राजानं वदति–

राजा ने उसको लाख रुपये दिये। तदनन्तर राजा के शिकार खेलते हुए किसी पुलिन्द (भील) के पुत्र ने गाया। उसके सुरीले गीत गाने से राजा ने प्रसन्न होकर उस पुलिन्दपुत्र के लिये पांच लाख रुपये दिये, तब उस कवि ने भीलपुत्र को अधिक धन देते देखकर राजा के हाथ में स्थित कमल के मिस से राजा से कहा–

एते गुणास्तु पङ्कज सन्तोऽपि न ते प्रकाशमायान्ति।
यल्लक्ष्मीवसतेस्तव मधुपैरुपभुज्यते कोशः ।।६७।।

हे कमल! तुझ में इतने गुण रहते भी दृष्टि नहीं आते, इस कारण लक्ष्मी के स्थान स्वरूप तेरे खजाने को भ्रमर ही भोगते हैं। राजा के पक्ष में जाना जाता है कि, हे राजन! तेरा खजाना मधुपान करने वाले गँवार ही भोगते हैं ।।६७।।

भोजस्तमभिप्रायं ज्ञात्वा पुनर्लक्षमेकं ददौ। ततो राजा

ब्राह्मणमाह–

राजा ने इस आशय को जान कर फिर उस ब्राह्मण को एक लाख रुपये दिये और राजा ने ब्राह्मण से कहा–

प्रभुभिः पूज्यते विप्र कलैव न कुलीनता।
कलावान् मान्यते मूर्ध्नि सत्सु देवेषु शम्भुना ।।६८।।

हे विप्र! स्वामी कला को पूजते हैं, कुलीनता को नहीं पूजते, जैसे कलावान् होने से चन्द्रमा को शिवजी ने अन्य देवताओं के होते हुए भी अपने मस्तक पर धारण किया है ।।६८।।

एवं वदति भोजे कुतोऽपि पञ्चषाः कवयः समागताः। तान्दृष्ट्वा राजा विलक्षण इवासीत्। अद्यैव मया एतावद्वित्तं दत्तमिति। ततः कविस्तमभिपायं ज्ञात्वा नृपं पद्ममिषेण पुनः प्राह–

राजा भोज ऐसे कह रहा था तभी पाँच–छः कवि आ गये। उनको देख कर राजा विस्मित हो गया। अभी तो मैंने इतना धन दिया है। राजा के इस अभिप्राय को जान कर कमल के मिस से उस कवि ने राजा से कहा–

किं कुप्यसि कस्मै वा नवसौरभसाराय हि निजमधुने।
यस्य कृते शतपत्र तेऽद्य प्रतिपत्रं मृग्यते भ्रमरैः ।।६९।।

हें सौ पत्ते वाले कमल! तू किसलिये और क्यों कोप करता है? नवीन सुगन्धि के मिठास से क्यों कोप करते हो? उसी मिठास के लिये ही तो तेरे एक–एक पत्ते को भ्रमर खोज रहे हैं ।।६९।।

ततः प्रभुं प्रसन्नवदनमवलोक्य प्रकाशेन प्राह–

फिर राजा को प्रसन्न हुआ देख कर प्रगट में कहा–

न दातुं नोपभोक्तुं च शक्नोति कृपणः श्रियम्।
किं तु स्पृशति हस्तेन नपुंसक इव स्त्रियम् ।।७०।।

कृपण मनुष्य लक्ष्मी को न देता है और न ही भोगता है, केवल हाथ से छू लेता है, जैसे नपुंसक पुरुष स्त्री को हाथ से छू लेता है ।।७०।।

याचितो यः प्रहृष्येत दत्त्वा च प्रीतिमान् भवेत्।
तं दृष्ट्वाप्यथवा श्रुत्वा नरः स्वर्गमवाप्नुयात् ।।७१।।

जो मांगने पर प्रसन्न हो और दान देकर आनन्दित हो, तो ऐसे दाता को देखने व सुनने से मनुष्य स्वर्ग को जाता है ।।७१।।

ततस्तुष्टो राजा पुनरपि कलिङ्गदेशवासिकवये लक्षं ददौ।

ततः पूर्वकविः पुरः स्थितान् षट् कवीन्द्रान्दृष्ट्वाह। हे कवयोत्र महासरस्सेतुसुभूमौ वासी राजा यदा भवनं गमिष्यति तदा किमपि ब्रूतेति। ये च सर्वे महाकवयोऽपि सर्वं राज्ञः प्रथमचेष्टितं ज्ञात्वावर्त्तंत तेष्वेकः सरोमिषेण नृपं प्राह–

तब राजा ने प्रसन्न होकर फिर कलिङ्गवासी कवियों को लाख रुपये दिये, तो उसी पहले कलिङ्गवासी कवि ने सम्मुख खड़े हुए उन छः कविराजों से कहा– हे कविगण! यहाँ महासरोवर की भूमि पर विराजमान राजा जब घर को जाय, तब कुछ कहना। तब वह कवि जो पूर्व किये कार्यों को जानते हुए खड़े थे, उनमें से एक कवि ने सरोवर के मिस से राजा से कहा–

आगतानामपूर्णानां पूर्णानामप्यगच्छताम्।
यदध्वनि न सङ्घट्टो घटानां तत्सरोवरम्।।७२।। इति।

खाली आये और भरकर नहीं गये, इस भाँति घड़ों का मेल जिसके मार्ग में नहीं होता है, ऐसा सरोवर है। भाव यह है कि आप ऐसे सरोवर हो कि आपके पास रीते घट रूपी निर्धन आकर पूर्ण धन लेकर नहीं गये, ऐसा होता नहीं।।७२।।

तस्य राजा लक्षं ददौ। ततो गोविन्दपण्डितस्तान् कवीन्द्रान्दृष्ट्वा चुकोप। तस्य कोपाभिप्रायं ज्ञात्वा द्वितीयः कविराह–

ऐसा कहने पर उसको राजा ने लाख रुपये दिये। तब गोविन्द पण्डित उन कवियों को देखकर क्रोधित हुआ। उस क्रोधपूर्ण अभिप्राय को जानकर दूसरे कवि ने कहा–

कस्य तृषं न क्षपयसि पिबति न कस्तव पयः प्रविश्यान्तः।
यदि सन्मार्गसरोवर नक्रो न क्रोडमधिवसति।।७३।।

हे श्रेष्ठमार्ग वाले सरोवर! तुम्हारी गोद में रुकावट नहीं रहते। तो तुम किस की प्यास को नहीं शान्त करते और तुम्हारे भीतर प्रवेश करके कौन जल को नहीं पीता?।।७३।।

राजा तस्मै लक्ष्यद्वयं ददौ। तं च गोविन्दपण्डितं व्यापारपदाद्दूरीकृत्य त्वयापि सभायामागन्तव्यं परं तु केनापि दौष्ट्यं न कर्तव्यम्। इत्युक्त्वा ततस्तेभ्यः प्रत्येकं लक्षं दत्त्वा स्वनगरमागतः। ते च यथायथं गताः। ततः कदाचिद्राजा मुख्यामात्यं प्राह–

राजा ने उस कवि को दो लाख रुपये दिये और उस गोविन्द पण्डित से सङ्केत द्वारा कहा कि– आप सभा में आवें और किसी से ईर्ष्या नहीं करें। यह कहकर फिर पृथक्–पृथक् उन कवियों को एक–एक लाख रुपये देकर अपने नगर में आया और वे

सब अपने- अपने स्थानों को गये। फिर एक समय राजा ने अपने मुख्यमन्त्री से कहा-

विप्रोऽपि यो भवेन्मूर्खः स पुराद्बहिरस्तु मे।
कुम्भकारोऽपि यो विद्वान् स तिष्ठतु पुरे मम।।७४।। इति।

मूर्ख ब्राह्मण भी मेरी राजधानी से बाहर निकल जाय और विद्वान् होने वाले कुम्हार भी रहें।।७४।।

अतः कोऽपि न मूर्खोऽभूद्धारानगरे। ततः क्रमेण पञ्चशतानि विदुषां वररुचिबाणमयूररेफणहरिशङ्करकलिङ्गकर्पूरविनायक-मदनविद्याविनोदकोकिलतारेन्द्रमुखाः सर्वशास्त्रविचक्षणाः सर्वज्ञाः श्रीभोजराजसभालञ्चक्रुः। एवं स्थिते कदाचिद्विद्वद्वृन्दवन्दिते सिंहासनासीने कविशिरोमणौ कवित्वप्रिये विप्रप्रियबान्धवे भोजेश्वरे द्वारपाल एत्य प्रणम्य व्यजिज्ञपत्। देव! कोपि विद्वान् द्वारि तिष्ठतीति। अथ राज्ञा प्रवेश्य तमिति आज्ञप्ते सोऽपि दक्षिणेन पाणिना समुन्नतेन विराजमानो विप्रः प्राह-

इस कारण धारानगरी में कोई भी मूर्ख न हुआ। फिर क्रमानुसार पांच सौ विद्वान् वररुचि, बाण, रेफण, हरिशङ्कर, कलिङ्ग, कर्पूर, विनायक, मदन, विद्याविनोद, कोकिल, तारेन्द्र इत्यादि सब शास्त्रों में दक्ष और सर्वज्ञों ने राजा भोज की सभा को अलंकृत किया। इस भाँति से किसी समय विद्वानों से वन्दित राजसिंहासन पर विराजमान कवियों के शिरोमणि और कवितारसिक, ब्राह्मणों के प्रिय, बान्धवों से युक्त श्रीराजाधिराज भोज से आकर द्वारपाल ने प्रणाम करके कहा। हे देव! कोई विद्वान् दरवाजे पर खड़ा है। तब राजा ने कहा- उसे ले आओ। तब दक्षिण भुजा को ऊपर उठाते हुए ब्राह्मण ने आकर कहा-

राजन्नभ्युदयोऽस्तु शङ्करकवे किं पत्रिकायामिदं।
पद्यं कस्य तवैव भोजनृपते पापठ्यतां पठ्यते।।
एतासामरविन्दसुन्दरदृशां द्राक् चामरान्दोलना-।
दुद्वेल्लद्भुजवल्लिकङ्कणझणत्कारः क्षणं वार्यताम्।।७५।।

इस श्लोक में राजा और शङ्कर कवि का प्रश्नोत्तर है।

शङ्कर- हे राजन्! आपका अभ्युदय हो।

राजा- हे शङ्कर कवि! इस पत्रिका में क्या है?

शङ्कर- श्लोक है।

राजा- किसका?

शङ्कर– राजन्! आपका ही है।

राजा– पढ़कर सुनाओ।

शङ्कर– पढ़ता हूं।

कमलनयनी सुन्दरी स्त्रियों के चँवर डुलाने से घूमती हुई भुजा रूपिणी लताओं के कङ्कणों के झणत्कार शब्द को क्षणमात्र के लिये रोकिये ।।७५।।

यथा यथा भोजयशो विवर्धते सितां त्रिलोकीमिव कर्तुमुद्यतम्।
तथा तथा मे हृदयं विदूयते प्रियालकालीधवलत्वशङ्कया ।।७६।।

जैसे–जैसे आपका यश बढ़ता है, उससे तीनों लोक श्वेत हुए जाते हैं। इसी कारण मेरे हृदय में शङ्का होती है कि कहीं मेरी प्रिया के काले बाल सफेद न हो जाँय ।।७६।।

ततो राजा शङ्करकवये द्वादशलक्षं ददौ। सर्वे विद्वांसश्च विच्छायवदना बभूवुः। परं कोऽपि राजभयान्नावदतथ। राजा च कार्यवशाद् गृहं गतः। ततो विभूपालां सभां दृष्ट्वा विबुधगणस्तं निनिंद। अहो नृपतेरज्ञता किमस्य सेवया वेदशास्त्रविचक्षणेभ्यः स्वाश्रयकविभ्यः लक्षमदात्। किमनेन वितुष्टेनापि। असौ च केवलं ग्राम्यः कविः शङ्करः। किमस्य प्रागल्भ्यमित्येवं कोलाहलरवे जाते कश्चिदभ्यगात् कनकमणिकुण्डलशाली दिव्यांशुकप्रावरणो नृपकुमार इव मृगमदपङ्ककलङ्कितगात्रो नवकुसुमसमभ्यर्चित–शिराश्चन्दनाङ्गरागेण विलोभयन् विलास इव मूर्तिमान् कवितेव तनुमाश्रितः शृङ्गाररसस्य स्यन्द इव सस्यन्दो महेन्द्र इव महीवलयं प्राप्तो विद्वान्। तं दृष्ट्वा सा विद्वत्परिषत् भयकौतुकयोः पात्रमासीत्। स च सर्वान्प्रणिपत्य प्राह। कुत्र भोजनृप इति। ते तमूचुरिदानीमेव सौधान्तरगत इति। ततोऽसौ प्रत्येकं तेभ्यस्ताम्बुलं दत्त्वा गजेन्द्र–कुलगतः मृगेन्द्र इवासीत्। ततः स महापुरुषः शङ्करकविप्रदानेन कुपितान् तान् बुद्ध्वा प्राह। भवद्भिः शङ्करकवये द्वादशलक्षाणि प्रदत्तानीति न मन्तव्यम्। अभिप्रायस्तु राज्ञो नैव बुद्धः। यतः शङ्करपूजने प्रारब्धे शङ्करकविस्त्वेकेनैव लक्षेण पूजितः। किन्तु तन्निष्ठान् तन्नाम्ना विभ्राजितानेकादश रुद्रान् शङ्करानपरान् मर्त्या–न्प्रत्यक्षान् ज्ञात्वा तेषां प्रत्येकमेकैकं लक्षं तस्मै शङ्करकवय एव शङ्करमूर्तये प्रदत्तमिति राज्ञोऽभिप्राय इति। सर्वेऽपि चमत्कृतास्तेन।

ततः कोऽपि राजपुरुषः तद्विद्वत्स्वरूपं राजाग्रे निवेदमास। राजा च स्वमभिप्रायं साक्षाद्विदितवन्तं तं महेशमिव महापुरुषं मन्यमानः सभामभ्यगात्। स च स्वस्तीत्याह राजानम्। राजा च तमालिंग्य प्रणम्य निजकरकमलेन तत्करकमलमवलंब्य सौधान्तरं गत्वा प्रोत्तुङ्गगवाक्ष उपविष्टः प्राह। विप्र! भवन्नाम्ना कान्यक्षराणि सौभाग्यावलम्बितानि कस्य वा देशस्य भवद्विरहः सुजनानां बाधत इति। ततः कविर्लिखति राज्ञो हस्ते कालिदास इति। राजा वाचयित्वा पादयोः पतति। ततस्तत्रासीनयोः कालिदासभोजराजयोरासीत्सन्ध्या। राजा सखे। सन्ध्यां वर्णयेत्यवादीत्–

तदनन्तर राजा ने शङ्कर कवि को बारह लाख रुपये दिये, तो सभा में स्थित सभी विद्वानों के मुख मलीन हो गये। किन्तु राजा के भय से किसी ने कुछ न कहा। थोड़ी देर पश्चात् राजा कार्य के लिए महल में गया। राजा के चले जाने पर सभी विद्वान् राजा की निन्दा करने लगे। अहा! मूर्ख राजा की सेवा ही क्या है? वेदशास्त्र के ज्ञाता अपने आश्रित कवियों के लिये लाख ही रुपये दिये। इसकी परम प्रसन्नता से ही क्या है? यह तो केवल ग्रामीण कवि शङ्कर है। इसमें क्या विशेषता पाई। ऐसे कोलाहल के समय ही सुवर्ण और मणियों के कुण्डलों को धारे, दिव्य वस्त्रों को पहने, राजकुमार की समान अङ्ग पर कस्तूरी आदि सुगन्धित पदार्थ लगाये, नये फूलों से भूषित शिर वाले, चन्दन की गन्ध से सबको लुभाते कामदेव की समान मूर्तिमान्, कविता के समान शरीरधारी, शृङ्गार रस के रथ के समान रथ युक्त, इन्द्र के समान भूमण्डल पर कोई विद्वान् आकर सभा में विराजमान हुए। उस विद्वान् को देखकर विद्वानों की सभा भयभीत और आश्चर्य युक्त हो गई। तब उस कवि ने सबको प्रणाम करके कहा– राजा भोज कहाँ है? उन कवियों ने कहा– महाराज महल में गये हैं। फिर वह विद्वान् उन सभा के समस्त कवियों को एक-एक नागरपान देकर हाथियों के बीच सिंह के समान बैठ गया और उस महापुरुष ने शङ्कर कवि के लिये बारह लाख रुपये देने से कुपित सभा में विराजमान सब पण्डितों से कहा– आप यह मत समझिये कि राजा ने शङ्कर को ही बारह लाख रुपये दिये हैं। आपने राजा का अभिप्राय नहीं जाना। कारण शङ्कर (शिव) के पूजन करने में तो शङ्कर कवि का एक ही लाख रुपये से पूजन किया। किन्तु वैसे ही निष्ठा वाले उसी नाम से प्रकाशित हुए अन्य ग्यारह रुद्रों को मूर्तिमान् प्रत्यक्ष ग्यारह शङ्करों को जान कर उनको पृथक्-पृथक् एक-एक लाख रुपये देने के लिये उस शङ्कर कवि को बारह लाख रुपये दे दिये, राजा का यह अभिप्राय जानिये। ऐसे उसने सब कवियों को आश्चर्यमय कर दिया। फिर किसी राजपुरुष ने उस विद्वान् के स्वरूप को राजा से जाकर

कहा। तब राजा अपने अभिप्राय के प्रत्यक्ष जानने वाले उस महापुरुष को महादेव की समान मानता हुआ सभा में आया, तब उस कवि ने राजा को 'स्वस्ति' कहा। राजा ने उसे प्रणाम करके निज करकमलों से उसके करकमलों को स्पर्श करके राजभवन में जाकर ऊँचे झरोखे वाले स्थान पर बैठकर पूछा कि- हे विप्र! आपके नाम से कौन-कौन अक्षर सौभाग्यशाली हुए हैं? किस देश का आप से वियोग हुआ? अर्थात्- आप किस देश से पधारे हो? वहाँ के सज्जनों को आपके यहाँ आ जाने से बाधा होती होगी। तब उस कवि ने राजा के हाथ पर 'कालिदास' लिख दिया। राजा उन अक्षरों को बाँच कर उसके चरणों पर गिर पड़ा। फिर वहां बैठे हुए कालिदास और राजा भोज को सायंकाल हो गयी, तब राजा ने कहा- हे मित्र! सन्ध्या समय का वर्णन करो।

व्यसनिन इव विद्या क्षीयते पङ्कजश्री-।
र्गुणिन इव विदेशे दैन्यमायान्ति भृङ्गाः॥
कुनृपतिरिव लोकं पीडयन्त्यन्धकारो।
धनमिव कृपणस्य व्यर्थतामेति चक्षुः॥७७॥

हे राजन! सन्ध्या में कमलों की शोभा क्षीण हो जाती है, जैसे व्यसनी पुरुषों की विद्या क्षीण हो जाती है। भ्रमर दीन भाव को प्राप्त होते हैं, जैसे गुणी पुरुष विदेश में दीनता को प्राप्त हो जाते हैं। अन्धकार सबको पीड़ा देता है, जैसे दुष्ट राजा अपनी प्रजा को पीड़ा देता है और सन्ध्या समय में कृपण जन के धन के समान नेत्र व्यर्थ हो जाते हैं॥७७॥

पुनश्च राजानं स्तौति कविः॥

फिर कवि राजा की स्तुति करता है।

उपचारः कर्तव्यो यावदनुत्पन्नसौहृदाः पुरुषाः।
उत्पन्नसौहृदानामुपचारः कैतवं भवति॥७८॥

जब तक मित्रता न हो तब तक उपचार (सत्कार) करना चाहिये, जब मित्रता हो जाय, तब उपचार करना ठगी है॥७८॥

दत्ता तेन कविभ्यः पृथ्वी सकलापि कनकसम्पूर्णा।
दिव्यां सुकाव्यरचनां क्रम कवीनां च यो विजानाति॥७९॥

जो राजा कवियों की काव्यरचना को क्रम से जानते हैं, उन्होंने सुवर्ण से भरपूर समस्त पृथ्वी कवियों को दे दी॥७९॥

सुकवेः शब्दसौभाग्यं सत्कविर्वेत्ति नापरः।
वन्ध्या न हि विजानाति परां दौर्हृदसम्पदम्॥८०॥

उत्तम कवि के शब्दों के भावार्थ को श्रेष्ठ कवि के सिवाय दूसरा नहीं जानता, जैसे वन्ध्या स्त्री गर्भवती की अवस्था को नहीं जानती है ।।८०।।

इति । ततः क्रमेण भोजकालिदासयोः प्रीतिरजायत । ततः कालिदासं वेश्यालम्पटं ज्ञात्वा तस्मिन्सर्वे द्वेषं चक्रुः । न कोऽपि तं स्पृशति । अथ कदाचित् सभामध्ये कालिदासमालोक्य भोजेन मनसा चिन्तितं, कथमस्य प्राज्ञस्यापि स्मरपीडाप्रमाद इति । सोऽपि तदभिप्रायं ज्ञात्वा प्राह–

ऐसा कहा, फिर क्रमानुसार भोज और कालिदास की प्रीति हो गई । अनन्तर कालिदास को वेश्यागामी जानकर सब विद्वान् द्वेष करने लगे । (यहां तक) कि कोई भी मनुष्य कालिदास को नहीं छूता । किसी समय कालिदास को सभा में देख कर राजा भोज ने विचारा कि इस पण्डित को भी कामदेव का कैसा प्रमाद है । तब कालिदास ने राजा के अभिप्राय को जान कर कहा–

चेतोभुवश्चापलताप्रसङ्गे का वा कथा मानुषलोकभाजाम् ।
यद्दाहशीलस्य पुरां विजेतुस्तथाविधं पौरुषधर्ममासीत् ।।८१।।

कामदेव की चपलता के विषय में मनुष्यलोक वासी जनों की तो बात ही क्या है ? क्योंकि त्रिपुरासुर को जीतने वाले महादेव के (अङ्ग में) भी कामदेव नजर आता है, इसी से वह अर्द्ध पुरुष हो गये हैं, कामदेव की बाधा से ही शिवजी का अर्द्धाङ्ग स्त्री का रूप है ।।८१।।

ततस्तुष्टो भोजराजः प्रत्यक्षरं लक्षं ददौ । ततः कालिदासः भोजं स्तौति–

तब प्रसन्न होकर राजा भोज ने एक–एक अक्षर के दो–दो लाख रुपये दिये, फिर कालिदास ने भोज की स्तुति की–

महाराज श्रीमञ्जगति यशसा ते धवलिते ।
पयःपारावारं परमपुरुषोऽयं मृगयते ।।
कपर्दी कैलासं करिवरमभौमं कुलिशभृत् ।
कलानाथं राहुः कमलभवनो हंसमधुना ।।८२।।

हे महाराज ! हे श्रीमान् ! आपके यश से जगत् श्वेत हो गया, इसी से वह परम पुरुष श्रीविष्णुजी क्षीरसागर को ढूंढ़ रहे हैं, महादेवजी कैलास को खोज रहे हैं, इन्द्र ऐरावत हाथी को ढूंढते हैं, राहु चन्द्रमा को खोजता है और ब्रह्माजी हंस को ढूंढ़ रहे हैं अर्थात् आपके यश से उनको सब वस्तुएँ श्वेत ही दीखती हैं ।।८२।।

नीरक्षीरे गृहीत्वा निखिलखगततीर्याति नालीकजन्मा।
तक्रं धृत्वा तु सर्वानटति जलनिधींश्चक्रपाणिर्मुकुन्दः।।
सर्वानुत्तुङ्गशैलान् दहति पशुपतिः फालनेत्रेण पश्यन्।
व्याप्ता त्वत्कीर्तिकान्ता त्रिजगति नृपते भोजराज क्षितीन्द्र।।८३।।

हे पृथ्वीपति राजा भोज! आपकी कीर्ति रूपी कान्ता तीनों लोकों में व्याप्त हो रही है। (पूर्वोक्त यश से सब वस्तु श्वेत रंग हो गई हैं, इसी से) ब्रह्माजी जल और दूध को लेकर समस्त पक्षियों के पास हंस की परीक्षा के लिये जा रहे हैं, विष्णु भगवान् छाछ और मट्ठे को लेकर दूध की परीक्षा के लिये समुद्रों के पास जा रहे हैं और अपने तीसरे अग्नि स्वरूप नेत्रों से देखते हुए शिवजी समस्त ऊँचे-ऊँचे पर्वतों को दग्ध करते हुए कैलास पर्वत की परीक्षा करते हैं।।८३।।

विद्वद्राजशिखामणे तुलयितं धाता त्वदीय यशः।
कैलासं च निरीक्ष्य तत्र लघुतां निक्षिप्तवान् पूर्तये।।
उक्षाणं तदुपर्युमासहचरं तन्मूर्ध्नि गङ्गाजलं।
तस्याग्रे फणिपुङ्गवं तदुपरि स्फारं सुधादीधितम्।।८४।।

हे विद्वान्! हे नृपति मणिमुकुट भोजराज! आपके यश को तोलने के लिये ब्रह्माजी ने कैलास को देखा, सो वह हलका हुआ, उसे पूरा करने के लिये उस पर्वत पर नन्दियों को स्थापित किया, उस पर पार्वती के साथ महादेवजी को बैठाया, महादेवजी के मस्तक पर गङ्गाजी को, उसके सम्मुख शेषनाग को और उसके ऊपर अनेक अमृत की किरणों युक्त चन्द्रमा को स्थापित किया।।८४।।

स्वर्गाद्गोपाल कुत्र व्रजसि सुरमुने भूतले कामधेनो-।
र्वत्सस्यानेतुकामस्तृणचयमधुना मुग्ध दुग्धं न तस्याः।।
श्रुत्वा श्रीभोजराजप्रचुरवितरणं व्रीडशुष्कस्तनी सा।
व्यर्थो हि स्यात् प्रयास[१]स्तदपि तदरिभिश्चर्वितं सर्वमुर्व्याम्।८५।

और भी संवाद है,

प्रश्न- हे गोपाल! तू स्वर्ग से कहाँ जाता है?

उत्तर- हे सुरमुने! कामधेनु के बछड़े के लिये घास लेने के लिये पृथ्वी पर जाता हूँ।

प्रश्न- हे मुग्ध! क्या उस (कामधेनु) के दूध नहीं है?

उत्तर- राजा भोज के विशाल दान को सुनकर लाज से उसके स्तनों में दूध सूख गया है।

---

१) तृणमपि भोजराजपराक्रान्तैःशत्रुभिर्वनवासिभिर्भक्षितम्।

प्रश्न- तेरा घास लाने का यत्न वृथा होगा कारण पृथिवी पर की सब घास राजा भोज के वैरियों ने चबा डाली है ।।८५।।

तुष्टो राजा प्रत्यक्षरं लक्षं ददौ । ततः कदाचित् श्रुतिस्मृतिसारं गताः केचिद्राजानं कवित्वप्रियं ज्ञात्वा क्वचिन्नगराद्बहिर्भुवनेश्वरी-प्रसादेन कवित्वं करिष्याम इत्युपविष्टाः तेष्वनेन पण्डितंमन्येन एकश्चरणोऽपाठि । भोजनं देहि राजेन्द्रेति । अन्येनापाठि । घृतसूप-समन्वितमिति । उत्तरार्द्धं न स्फुरति ततो देवताभवनं कालिदासः प्रणामार्थमगात् । तं वीक्ष्य द्विजा ऊचुः । अस्माकं समग्रवेदविदामपि भोजः किमपि नार्पयति । भवादृशां हि यथेष्टं दत्ते । ततोऽस्माभिः कवित्वविधानधियात्रागतम् । चिरं विचार्य पूर्वार्धमभ्यधायि उत्तरार्धं कृत्वा देहि ततोऽस्मभ्यं किमपि प्रयच्छतीत्युक्त्वा तत्पुरस्त-दर्धमभाणि । स च तच्छ्रुत्वा, माहिषं च शरच्चन्द्रच्चन्द्रिकाधवलं दधीत्याह । ते च राजभवनं गत्वा दौवारिकानूचुः- वयं कवित्वं कृत्वा समागता राजानं दर्शयतेति । ते च कौतुकात् हसतो गत्वा राजानं प्रणम्य प्राहुः-

फिर प्रसन्न होकर राजा ने एक-एक अक्षर के एक-एक लाख रुपये दिये। उसके पश्चात् श्रुति-स्मृति के ज्ञाता कविगण राजा को कविताप्रिय जानकर नगर से बाहर भुवनेश्वरी देवी की प्रसन्नता से कविता करेंगे, यह कहकर बैठ गये । उनमें से एक अपने को विद्वान् मानने वाले ने एक पद पढ़ा। "**भोजनं देहि राजेन्द्र**" हे राजेन्द्र! भोजन दो, दूसरे ने पढ़ा "**घृतसूपसमन्वितम्**" घी और दाल से युक्त हो, इस भाँति से दो चरण पूरे हुए और उत्तरार्द्ध नहीं बन सका। तब कालिदासजी प्रणाम करने के लिये देवी के मन्दिर में गये, उनको देखकर ब्राह्मणों ने कहा,- ऐसे भी हम लोग समस्त वेदों के ज्ञाता को राजा भोज कुछ नहीं देता है और तुम्हारे समान मनुष्यों को इच्छानुसार देता है, इस कारण कविता करने की इच्छा से हम यहाँ आये हैं। चिरकाल तक विचार करके श्लोक का पूर्वार्द्ध तो बना लिया, अब उत्तरार्द्ध तुम बना दो, तो राजा हमें कुछ देगा। यह कहकर उन्होंने वही आधा श्लोक कालिदास के आगे पढ़ा, कालिदास उस आधे श्लोक को सुनकर "**माहिषं च शरच्चन्द्र-च्चन्द्रिकाधवलं दधि ।**" शरत्काल के चन्द्रमा की समान श्वेत भैंस का दही भी (भोजन में) दो, यह कहा। फिर उन कवियों ने आकर ड्यौढ़ी पर बैठे द्वारपालों से कहा कि- हम कविता करके लाये हैं, तुम राजा को दिखा दो। वे द्वारपाल आनन्द के साथ हँसते हुए राजा के समीप जाकर प्रणाम

करके बोले–

राजमाषनिभैर्दंतैः कटिविन्यस्तपाणयः ।
द्वारि तिष्ठन्ति राजेन्द्र च्छान्दसाः श्लोकशत्रवः ।।८६।।

हे राजेन्द्र! उड़दों के समान काले और बुरे दातों से युक्त, कमर पर हाथ धरे वेदपाठी श्लोक के शत्रु पण्डित आये हैं ।।८६।।

इति राज्ञा प्रवेशितास्ते दृष्टराजसंसदो मिलिताः सहैव कवित्वं पठन्ति स्म। राजा तच्छ्रुत्वा उत्तरार्द्धं कालिदासेन कृतमिति ज्ञात्वा विप्रानाह। येन पूर्वार्द्धं कारितं तन्मुखात्कवित्वं कदाचिदपि न करणीयम्। उत्तरार्द्धस्य किञ्चिद्दीयते न पूर्वार्द्धस्येत्युक्त्वा प्रत्यक्षर-लक्षं ददौ। तेषु कालिदासं वीक्ष्य राजा प्राह। कवे उत्तरार्द्धं त्वया पठितमिति। कविराह–

फिर राजा के बुलाने से राजसभा को देखकर उन सबों ने मिलकर एक बार कविता को पढ़ा। राजा ने उस श्लोक को सुनकर उत्तरार्द्ध कालिदास का बनाया हुआ जान कर ब्राह्मणों से कहा– जिसने पूर्वार्द्ध बनाया है उसके मुख से कविता मत पढ़वाना। उत्तरार्द्ध का कुछ देते हैं, पूर्वार्द्ध का कुछ नहीं मिलेगा। यह कहकर प्रत्येक अक्षर के लाख–लाख रुपये दे दिये। उनमें कालिदास को देखकर राजा ने कहा– हे कविराज! उत्तरार्द्ध तुमने बनाया है। कवि ने कहा–

अधरस्य मधुरिमाणं कुचकाठिन्यं दृशोश्च तैक्ष्ण्यं च ।
कवितायां परिपाकं ह्यनुभवरसिको विजानाति ।।८७।।

स्त्रियों के अधरामृत की मधुरता, कुचों की कठिनता, नेत्रों की तीक्ष्णता, कविता का भाव इन समस्त वस्तुओं के स्वाद को अनुभवी पुरुष ही जानता है ।।८७।।

राजा च सुकवे! सत्यं वदसि–

राजा ने कहा– हे कविशिरोमणि! सत्य वचन है।

अपूर्वो भाति भारत्याः काव्यामृतफले रसः ।
चर्वणे सर्वसामान्ये स्वादुवित्केवलं कविः ।।८८।।

वाणी के काव्य रूपी अमृत फल में अपूर्व रस जान पड़ता है। चाबने में सब को समान है, परन्तु स्वाद को केवल कवि ही जानता है ।।८८।।

सञ्चिन्त्य सञ्चिन्त्य जगत् समस्तं त्रयः पदार्था हृदयं प्रविष्टाः ।
इक्षोर्विकारा मतयः कवीनां मुग्धाङ्गनापाङ्गतरङ्गितानि ।।८९।।

समस्त जगत् की बार–बार चिन्ता करने से तीन पदार्थ हृदय में प्रविष्ट हो गये

हैं। १-ईख[१] का विकार, २-कवियों की बुद्धि और ३- मुग्धा युवतियों के कटाक्षों की लहरी।।८९।।

ततः कदाचिद्द्वारपालकः प्रणम्य भोजं प्राह। राजन्! द्रविडदेशात् कोऽपि लक्ष्मीधरनामा कविर्द्वारमध्यास्त इति। राजा प्रवेशयेत्याह। प्रविष्टमिव सूर्यमिव विभ्राजमानं चिरादप्यविदित-वृत्तान्त प्रेक्ष्य राजा विचारयामास प्राह च-

फिर किसी दिन द्वारपाल ने आकर प्रणाम करके राजा भोज से कहा- हे राजन्! द्रविड़ देश से लक्ष्मीधर नामक कोई कवि आकर द्वार पर खड़ा है। राजा ने कहा- उसे ले आओ। उसके सभा में आते समय मानो सूर्यदेव ही सभा में आ गये ऐसे प्रतापी का चिरकाल तक वृत्तान्त सभा में नहीं जान पड़ा, उसे देखकर राजा ने विचार कर कहा-

आकारमात्रविज्ञानसम्पादितमनोरथाः।
धन्यास्ते ये न शृण्वन्ति दीनाः क्वाप्यर्थिनां गिरः।।९०।।

आकार मात्र के ज्ञान से जो समस्त मनोरथों को पूर्ण कर देते हैं और वाचकों की दीन वाणी को नहीं सुनते अर्थात् उन्हें धनी कर देते हैं, वे धन्य हैं।।९०।।

स चागत्य तत्र राजानं स्वस्तीत्युक्त्वा तदाज्ञयोपविष्टः प्राह। देव इयं ते पण्डितमण्डिता सभा त्वं च साक्षाद्विष्णुरसि। ततः किं नाम पाण्डित्यं मम तथापि किञ्चिद्वच्मि-

इसके पश्चात् उस कवि ने राजा को (स्वस्ति) कहकर आशीर्वाद दिया और कहा- हे देव! आपकी सभा पण्डितों से शोभित है। उसमें आप साक्षात् विष्णु के समान विराजमान हो, इस कारण मेरा क्या पाण्डित्य है? फिर भी कुछ कहता हूँ-

भोजप्रतापं तु विधाय धात्रा शेषैर्निरस्तैः परमाणुभिः किम्।
हरेः करेऽभूत्पविरम्बरे च भानुः पयोधेरुदरे कृशानुः।।९१।।

विधाता ने जब राजा भोज के प्रताप को रचा तो निरन्तर अस्त हुए परमाणुओं से क्या हो सकता है? यही विचार कर इन्द्र के हाथ में वज्र दिया, आकाश में सूर्य निर्माण किया और सागर में वाडव ज्वाला बनाई।।९१।।

इति ततस्तेन परिषच्चमत्कृता। राजा च तस्य प्रत्यक्षरलक्षं ददौ। पुनः कविराह। देव! मया सकुटुम्बेनात्र निवासाशया समागतम्।।

---

१) गुड़, शक्कर, चीनी आदि।

इसके पश्चात् उस कवि ने समस्त सभा में स्थित पुरुषों को चमत्कृत कर दिया। राजा ने भी उसके एक-एक अक्षर के लाख-लाख रुपये दिये, तब कवि ने कहा- हे देव! मैं सकुटुम्ब आपके यहाँ रहने की अभिलाषा से आया हूँ।

क्षमी दाता गुणग्राही स्वामी पुण्येन लभ्यते।
अनुकूलः शुचिर्दक्षः कविर्विद्वान्सुदुर्लभः ।।९२।। इति।

क्षमायुत दाता और गुणग्राही स्वामी पुण्य के प्रताप से प्राप्त हो जाता है, परन्तु अनुकूल, पवित्र, चतुर और विद्वान् कवि मिलना दुर्लभ है।।९२।।

ततो राजा मुख्यामात्यं प्राहास्मै गृहं दीयतामिति। ततो निखिलमपि नगरं विलोक्य कमपि मूर्खममात्यो नापश्यत् यं निरस्य विदुषे गृहं दीयते। तत्र सर्वत्र भ्रमन् कस्यचित्कुविन्दस्य गृहं वीक्ष्य कुविन्दं प्राह। कुविन्द! गृहान्निःसर तव गृहं विद्वानेष्यतीति। ततः कुविन्दो राजभवनमासाद्य राजानं प्रणम्य प्राह। देव! भवदमात्यो मां मूर्खं कृत्वा गृहान्निःसारयतीति। त्वं तु पश्य मूर्खः पण्डितो वेति-

फिर राजा ने प्रधानमन्त्री से कहा- पण्डितजी के लिये घर दो। तब मन्त्री ने सभी नगर को देखा, पर किसी को भी मूर्ख नहीं पाया, जिसे निकाल कर पण्डित को घर दिया जाय। नगर में घूमते हुए मन्त्री ने किसी वस्त्र बुनने वाले (जुलाहे) को देख कर कहा- हे कुविन्द (जुलाहे)! तू घर से निकल जा, तेरा घर पण्डितजी को रहने के लिए दिया जायगा। तब वह जुलाहा राजसभा में आकर राजा को प्रणाम करके बोला- हे देव! आपका मन्त्री मुझे मूर्ख कहकर घर से निकाले देता है, सो आप देखिये, कि मैं मूर्ख हूँ वा विद्वान् हूँ।

काव्यं करोमि नहि चारुतरं करोमि।
यत्नात्करोमि यदि चारुतरं करोमि।।
भूपालमौलिमणिमण्डितपादपीठ।
हे साहसाङ्क कवयामि वयामि यामि।।९३।।

काव्य करता हूँ तो वह सुन्दर नहीं होता और जो सुन्दर करता हूँ तो देर में कर सकता हूँ,- हे सम्राट्! हे साहसाङ्क! हे राजन्! मैं कवि के समान आचरण करता हूँ, तो भी जुलाहे का काम करने को जाता हूँ।।९३।।

ततो राजा त्वङ्कारवादेन वदन्तं कुविन्दं प्राह। ललिता ते पदपंक्तिः। कवितामाधुर्यं च शोभनम्। परन्तु कवित्वं विचार्य वक्तव्यमिति।

फिर राजा ने 'तू' 'तेरे' एकवचन से कुविन्द (जुलाहे) से कहा। तेरे पदों की पंक्ति ललित है और कविता भी मधुर एवम् सुन्दर है, परन्तु कविता को विचार कर कहना चाहिये।

ततः कुपितः कुविन्दः प्राह। देव! अत्रोत्तरं भाति किन्तु न वदामि राजधर्मः पृथक् विद्वद्धर्मादिति। राजा प्राह अस्ति चेदुत्तरं ब्रवीहि। देव! कालिदासादृतेऽन्यं कविं न मन्ये कोऽस्ति ते सभायां कालिदासादृते कवितातत्त्वविद्विद्वान्?।।

तो क्रोधित होकर जुलाहे ने कहा– हे देव! इसका उत्तर समझ में आता है, किन्तु मैं नहीं कहता, कारण विद्वान् के धर्म से राजधर्म पृथक् है। राजा ने कहा,– जो उत्तर है तो कहो। (जुलाहे ने कहा)– हे देव! कालिदास के सिवाय अन्य को मैं कवि नहीं मानता हूँ, आपकी सभा में कालिदास के अतिरिक्त कविता के तत्त्व को जानने वाला ही कौन है?

यत्सारस्वतवैभवं गुरुकृपापीयूषपाकोद्भवं।
तल्लभ्यं कविनैव नैव हठतः पाठप्रतिष्ठाजुषाम्।।
कासारे दिवसं वसन्नपि पयःपूरं परं पङ्किलं।
कुर्वाणः कमलाकरस्य लभते किं सौरभं सैरिभः।।९४।।

जो गुरुदेव की कृपा रूपी अमृतपाक से सरस्वती (वाणी) का ऐश्वर्य प्रकट होता है, वह कविता से मिलता है। हठ से पाठ प्रतिष्ठा के सेवन करने वाले को नहीं मिलता। (जैसे) जल के सरोवर में समस्त दिन पड़े रहने से भैंसा जल को गँदला करने के सिवाय सरोवर की सुगन्धि को नहीं ले सकता है।।९४।।

अयं मे वाग्गुंफो विशदपदवैदग्ध्यमधुरः।
स्फुरद्बन्धो वन्ध्यः परहृदि कृतार्थः कविहृदि।।
कटाक्षो वामाक्ष्या दरदलितनेत्रान्तगलितः।
कुमारे निःसार स तु किमपि यूनः सुखयति।।९५।।

यह मेरी वाणी के द्वारा रचा हुआ ग्रन्थ है, सो उत्तम पदों से युक्त और कवियों को प्रिय है। इसमें छन्द हैं। यह कवियों के हृदय को कृतार्थ करता है और औरों के हृदय में बाँझ स्त्री की समान व्यर्थ है। जैसे स्त्रियों का कटाक्ष युवकों को सुखद और बालकों को निष्फल है।।९५।।

इति। विद्वज्जनवन्दिता सीता प्राह।

फिर विद्वानों से वन्दित हुई सीता ने कहा–

विपुलहृदयाभियोग्ये खिद्यति काव्ये जडो न मौर्ख्यें स्वे।
निन्दति कञ्चुकमेव प्रायः शुष्कस्तनी नारी ।।९६।।

मूर्ख उत्तम काव्य की (जो विद्वानों के समझने योग्य है उसकी) निन्दा करते वह अपनी मूर्खता की निन्दा नहीं करते हैं, जैसे क्षीण कुचों वाली स्त्री कञ्चुकी (चोली) सीने वाले दरजी की निन्दा करती है ।।९६।।

ततः कुविंदः प्राह–

फिर उस जुलाहे कवि ने कहा–

बाल्ये सुतानां सुरतेऽगनानां स्तुतौ कवीनां समरे भटानाम्।
त्वङ्कारयुक्ता हि गिरः प्रशस्ताः कस्ते प्रभो मोहतरः स्मर त्वम् ।।९७।।

बाल्यावस्था में पुत्रों को, मैथुन के समय स्त्रियों को, स्तुति करने में कवियों को और रण में योद्धाओं को त्वङ्कार (तू) शब्द से वाणी शोभा पाती है। हे प्रभो! तुम्हें इतना प्रबल मोह क्यों हुआ, जो तुमने 'तू' शब्द से मुझे संबोधित किया उस को स्मरण कीजिये ।।९७।।

ततो राजा साधु भो कुर्विदेत्युक्त्वा तस्याक्षरलक्षं ददौ। मा भैषीरिति पुनः कुविन्दं प्राह। एवं क्रमेणातिक्रान्ते कियत्यपि काले बाणः पण्डितवरः परं राज्ञा मान्यमानोऽपि प्राक्तनकर्मतो दारिद्र्यमनु भवति। एवं स्थिते नृपतिः कदाचिद्रात्रावेकाकी प्रच्छन्नवेशः स्वपुरे चरन् बाणगृहमेत्यातिष्ठत्। तदा निशीथे बाणो दारिद्र्याद्व्याकुलतया कान्तां वक्ति देवि! राजा कियद्वारं मम मनोरथमपूरयत् अद्यापि पुनः प्रार्थितो ददात्येव। परन्तु निरन्तरप्रार्थनारसे मूर्खस्यापि जिह्वा जडीभवतीत्युक्त्वा मुहूर्तार्थं मौनेन स्थितः। पुन पठति–

उसके पश्चात् राजा ने कुविन्द से कहा– तुम ने बहुत ठीक कहा, फिर एक – एक अक्षर के लाख–लाख रुपये दिये और जुलाहे से कहा– अब तुम मत डरो। इस भाँति क्रमानुसार कुछ काल बीतने पर राजा का माननीय बाण नामक पण्डित पूर्व कर्मों के वश दरिद्री हो गया। इसी दशा में एक दिन राजा अकेले ही रात्रि में अपने वेष को बदले हुए नगर में घूमता हुआ बाण पण्डित के घर के समीप पहुँच गया। उसी रात्रि में बाण पण्डित ने दरिद्रता से व्याकुल होकर अपनी स्त्री से कहा– हे देवि! राजा ने अनेक वार मेरे मनोरथों को पूर्ण किया है और फिर भी प्रार्थना करने से कुछ देता ही है, लेकिन् वृथा याचना से मूर्ख की भी जिह्वा जड़ हो जाती है अर्थात् प्रतिदिन नहीं माँगा जाता, यह कहकर एक घड़ी के लिये चुप रहा, फिर पढ़ने लगा–

हर हर पुरहर परुषं क्व हलाहलफल्गुयाचनावचसोः।
एकैव तव रसज्ञा तदुभयरसतारतम्यज्ञा ।।९८।।

हे हरहर! हे पुरहर! (त्रिपुरासुर के पुरों के नाशक शिव) हलाहल विष और निरर्थक याचना इन दोनों में कौन कठोर है? इन दोनों में न्यूनाधिक जानने वाली जिह्वा तो एक ही है। शिवजी ने विष पान किया है और याचना भी की है, यह शिवजी के लिये कहा है अर्थात् वृथा की याचना विष से भी बुरी है।।९८।।

देवि! दारिद्र्यस्यापरा मूर्तिर्याच्ञा न द्रविणान्यति।
अपि कौपीनवान् शम्भुस्तथापि परमेश्वरः।।९९।।

हे देवि! दारिद्र्य की परम मूर्ति याचना है, कुछ धन का अभाव ही दारिद्र्य की विशाल मूर्ति नहीं है, कारण शिवजी कौपीन धारी निर्धनी होने पर भी परमेश्वर हैं।।९९।।

सेवा सुखानां व्यसनं धनानां।
याच्ञा गुरूणां कुनृपः प्रजानाम्।।
प्रणष्टशीलस्य सुतः कुलानां।
मूलावघातः कठिनः कुठारः।।१००।।

सेवा समस्त सुखों की जड़ को काटने वाली कठिन कुल्हाड़ी है, धन की जड़ को काटने वाले कुल्हाड़े की तरह व्यसन है, गौरव की जड़ को काटने वाली कठिन कुल्हाड़ी रूपी याचना है, प्रजा की जड़ को काटने वाला कठिन कुठार स्वरूप दुष्ट राजा है और कुल की जड़ को काटने वाला कठिन कुठार स्वरूप दुःशील मनुष्य का पुत्र है।।१००।।

तत्सत्यपि दारिद्र्ये राज्ञो वक्तुं मया स्वयमशक्यम्।

अतएव दरिद्री होने पर राजा से मैं स्वयम् कहने के लिये असमर्थ हूँ।

गच्छन् क्षणमपि जलदो वल्लभतामेति सर्वलोकस्य।
नित्यप्रसारितकरः करोति सूर्योऽपि सन्तापम्।।१०१।।

क्षण काल के लिए वर्षा करने वाला मेघ सब को प्यारा लगता है और प्रतिदिन अपनी किरणों को फैलाता हुआ सूर्य सब को सन्ताप देता है।।१०१।।

किञ्च देवि! वैश्वदेवावसरे प्राप्ताः क्षुधार्ताः पश्चाद्यान्तीति तदैव मे हृदयं दुनोति।।

परन्तु, हे देवि! वैश्वदेव कर्म के समय आये हुए मनुष्य भूखे जाते हैं, यही मेरे हृदय में सन्ताप होता है।

दारिद्र्यानलसन्तापः शान्तः सन्तोषवारिणा।
याचकाशाविघातान्तर्दाहः केनोपशाम्यते।।१०२।।

दारिद्र्य रूपी अनल का सन्ताप सन्तोष रूपी जल से शान्त हो जाता है, किन्तु याचक के निराश होने की अन्तर्ज्वाला किससे शान्त हो सकती है? ।।१०२।।

राजा चैतत्सर्वं श्रुत्वा नेदानीं किमपि दातुं योग्यः, प्रातरेव बाणं पूर्णमनोरथं करिष्यामीति निष्क्रान्तः ।।

राजा ने इस सारे वृत्तान्त को सुना और सोचा कि इस समय कुछ नहीं देना चाहिये, प्रातःकाल ही बाण पण्डित की अभिलाषा पूर्ण करूंगा, यह कहकर चल दिये।

कृतो यैर्न च वाग्मी च व्यसनी तन्न यैः पदम् ।
यैरात्मसदृशो नार्थी किं तैः काव्यैर्बलैर्धनैः ।।१०३।।

जिस काव्य ने मूर्ख को विद्वान् नहीं बनाया, जिस बली ने व्यसनी को इच्छित स्थान पर न पहुँचाया और जिस धनी ने याचक को अपने समान धनी न बनाया, उस काव्य, बली और धनी को वृथा जानो।।१०३।।

एवं पुरे परिभ्रमाणे राजनि वर्त्मनि चोरद्वयं गच्छति। तयोरेकः प्राह शकुन्तकः। सखे स्फारान्धकारविततेऽपि जगत्यञ्जनवशात्सर्वं परमाणुप्रायमपि वसु सर्वत्र पश्यामि। परन्तु सम्भारगृहानीतकनक-जातमपि न मे सुखीयेति। द्वितीयो मरालनामा चोर आह। आहृतं सम्भारगृहात् कनकजातमपि न हितमिति कस्माद्धेतोरुच्यते इति। ततः शकुन्तकः प्राह- सर्वतो नगररक्षकाः परिभ्रमन्ति सर्वोऽपि जागरिष्यत्येषां भेरीपटहादीनां निनादेन। तस्मादाहृतं विभज्य स्वस्वभागागतं धनमादाय शीघ्रमेव गन्तव्यमिति। मरालः प्राह। सखे! त्वमनेन कोटिद्वयपरिमितमणिकनकजाते न किं करिष्यसीति। शकुन्तः- एतद्धनं कस्मैचिद्द्विजन्मने दास्यामि। यथायं वेद-वेदाङ्गपारगो अन्यं न प्रार्थयति। मरालः- सखे! चारु।।

इस भाँति राजा घूम रहा था, उसी समय मार्ग में दो चोर जा रहे थे, उनमें से 'शकुन्तक' नामक चोर ने कहा- हे सखे! यद्यपि घोर अन्धकार फैल रहा है, तो भी मैं सिद्धाञ्जन के वश जगत् में सब कुछ देखता हूँ, परमाणु मात्र द्रव्य को भी सब स्थानों में देखता हूँ, परन्तु खजाने से लाया हुआ सुवर्णादि समस्त धन मेरे सुख के लिये नहीं है। दूसरे 'मराल' नामक चोर ने कहा- जो खजाने से लाये सुवर्ण मात्र भी हितकारी नहीं, यह इच्छा क्यों होती है? तब 'शकुन्त' ने कहा सभी स्थानों में नगर के रखवाले सिपाही विचर रहे हैं और भेरी, ढोल आदि शब्दों से सब जाग उठेंगे, अतएव चुराये हुए धन को बाँट कर अपने-अपने हिस्से के धन को लेकर शीघ्र चलना

चाहिये। 'मराल' ने कहा- हे सखे! लगभग दो करोड सुवर्ण मणि आदि धन को क्या करोगे? 'शकुन्त' ने कहा- धन को किसी ब्राह्मण के लिये दे दूंगा, जिससे वेद-वेदाङ्ग का ज्ञाता ब्राह्मण फिर किसी दूसरे से न माँगे। 'मराल' ने कहा- हे सखे! बहुत अच्छा विचार है।

ददतो ययुद्धमानस्य पठतः पुलकोथ चेत्।
आत्मनश्च परेषां च तद्दानं पौरुषं स्मृतम्।।१०४।।

दान करते, युद्ध करते और पाठ करते हुए मनुष्य के यदि रोगटे खड़े हो जाँय, तो दान एवम् पुरुषार्थ कहते हैं।।१०४।।

मरालः- अनेन दानेन तव कथं पुण्यफलं भविष्यतीति। अस्माकं पितृपैतामहोऽयं धर्मः यच्चौर्य्येण वित्तमानीयते। मरालः- शिरच्छेदमङ्गीकृत्यार्जितं द्रव्यं निखिलमपि कथं दीयते। शकुन्तः-

मराल बोला- इस दान के द्वारा तुम्हें पुण्य का फल कैसे मिलेगा? शकुन्तक ने कहा- हमारे बाप-दादों का यही धर्म है कि- चोरी करके धन पैदा करना चाहिये। मराल ने पूछा- शिर कटाना स्वीकार करके पैदा हुआ धन कैसे दिया जायगा? शकुन्त ने कहा-

मूर्खो नहि ददात्यर्थं नरो दारिद्र्यशङ्कया।
प्राज्ञस्तु वितरत्यर्थं नरो दारिद्र्यशङ्कया।।१०५।।

मूर्ख दरिद्री को शङ्का से धन को नहीं देता है और बुद्धिमान् पुरुष दरिद्र को ही शङ्का से धन देता है, अर्थात्- दारिद्र्य के आने से धन नष्ट हो जायगा, इस कारण दान करना ही श्रेष्ठ है।।१०५।।

किञ्चिद्वेदमयं पात्रं किञ्चित्पात्रं तपोमयम्।
पात्राणामुत्तमं पात्रं शूद्रान्नं यस्य नोदरे।।१०६।।

वेदपाठी कुछ पात्र है, तप करने वाला भी कुछ पात्र है, परन्तु शूद्र के अन्न से उदर को बचाने वाला ही सब पात्रों में श्रेष्ठ सत्पात्र है।।१०६।।

शकुन्तः-- अनेन चित्तेन किं करिष्यति भवान्। मरालः- सखे! काशीवासी कोऽपि विप्रबटुरत्रागात् तेनास्मत्पितुः पुरः काशीवासफलं व्यावर्णितम्। ततोऽस्मत्तातः बाल्यादारभ्य चौर्यं कुर्वाणो दैववशात् स्वपापान्निवृत्तो वैराग्यात्सकुटुम्बः काशीमेष्यति। तदर्थमिदं द्रविणजातम्। शकुन्तः- महद्भाग्यं तव पितुः। तथाहि-

शकुन्त ने कहा- हे मित्र! इस धन से तुम क्या करोगे? मराल बोला- काशीवासी कोई ब्राह्मणकुमार यहां आया, उसने मेरे पिता से काशीवास करने का फल

वर्णन किया, उससे मेरे पिता बालकपन से चोरी करते रहने पर भी दैवयोग से अपने पाप द्वारा निवृत्त होकर वैराग्य उत्पन्न हो जाने के कारण सकुटुम्ब काशी को जायेंगे, उन्हीं के लिये यह सकल धन है। शकुन्त ने कहा– तेरे पिता बड़े भाग्यशाली हैं, देखो–

वाराणसीपुरीवासवासनावासितात्मना।
किं शुना समतां याति वराकः पाकशासनः ।।१०७।।

काशीपुरी में वास करने की इच्छा रखने वाले कुत्ते के समान क्या गरीब इन्द्र हो सकता है? अर्थात् इन्द्र भी उस कुत्ते की बराबरी नहीं कर सकता है ।।१०७।।

ऊषरं कर्म सस्यानां क्षेत्रं वाराणसी पुरी।
यत्र संलभ्यते मोक्षः समं चण्डालपण्डितैः ।।१०८।।

काशीपुरी कर्म रूपी बीजों को ऊसर का खेत है, अर्थात् काशीजी में सब कर्म नष्ट हो जाते हैं, क्योंकि जहाँ चाण्डाल और विद्वान् समान रूप से मोक्ष पाता है ।।१०८।।

मरणं मङ्गलं यत्र विभूतिश्च विभूषणम्।
कौपीनं यत्र कौशेयं सा काशी केन मीयते ।।१०९।।

जिस काशीजी में मरना मङ्गल स्वरूप है, विभूति अलङ्कार स्वरूप है और कौपीन रेशमी वस्त्र के समान है, उस काशीपुरी की कौन बराबरी कर सकता है? ।।१०९।।

एवमुभयोः संवादं श्रुत्वा राजा तुतोष। अचिन्तयच्च मनसि कर्मणां गतिः सर्वथैव विचित्रा। उभयोरपि पवित्रा मतिरिति। ततो राजा विनिवृत्य भवनान्तरे पितृपुत्रावपश्यत्। तत्र पिता पुत्रं प्राह। इदानीं परिज्ञातशास्त्रतत्त्वोऽपि नृपतिः कार्पण्येन किमपि न प्रयच्छति। किन्तु–

ऐसे उन दोनों चोरों के संवादों को सुनकर राजा प्रसन्न हुआ और मन में कर्मों की गति को विचारने लगा। सभी विचित्रता है, किन्तु दोनों की बुद्धि पवित्र है, इसके उपरान्त राजा दूसरे स्थान पर पहुँचा; वहाँ पर पिता-पुत्र को देखा, पिता पुत्र से बोला– अब शास्त्र के तत्त्व को जानने वाला भी राजा कृपणता से कुछ नहीं देता है, किन्तु–

अर्थिनि कवयति कवयति पठति च पठति स्तवोन्मुखे स्तौति।
पश्चाद्यामीत्युक्ते मौनी दृष्टिं निमीलयति ।।११०।।

अर्थी और कवि पुरुषों की कविता पर कविता करता है, पढ़ते हुए पर पढ़ता है और स्तुति करने पर स्तुति करता है, फिर मैं जाता हूँ ऐसा कह कर मौन होकर नेत्र मींच लेता है ।।११०।।

राजा एतच्छ्रुत्वा तत्समीपं प्राप्य मैवं वदेति स्वगात्रात्सर्वा–

भरणान्युत्तार्य ददौ तस्मै। ततो गृहमासाद्य कालान्तरे सभामुपविष्टः कालिदासं प्राह– सखे!

राजा इस बात को सुनकर उसके पास जाकर बोला– ऐसा मत कहो, यह कहकर अपने शरीर से सब आभूषणों को उतार कर उसे दे दिये, फिर अपने घर आकर एक दिन सभा में बैठकर कालिदास से कहा– सखे!

कवीनां मानसं नौमि तरति [1]प्रतिभांभसा।

ततः कविराह–

यत्पोतेन पयांसीव भुवनानि चतुर्दश ॥१११॥

मैं कवियों के मन को प्रणाम करता हूँ, जिनकी प्रतिभा जल में तैर जाती है। तब कालिदास ने कहा– उसी प्रतिभा रूपी डोंगी से चौदह भुवन के पार जाया जाता है ॥१११॥

ततो राजा प्रत्यक्षरमुक्ताफललक्षं ददौ। ततः प्रविशति द्वारपालः। देव! कोऽपि कौपीनावशेषो विद्वान् द्वारि तिष्ठतीति। राजा प्रवेशय। ततः प्रवेशितः कविरागत्य स्वस्तीत्युक्तवानुक्त एवोपविष्टः प्राह–

इसके पश्चात् राजा ने एक–एक अक्षर के एक–एक लाख मोती दिये, तत्पश्चात् द्वारपाल ने सभा में आकर कहा– हे देव! कोई कौपीन धारे हुए विद्वान् द्वार पर खड़े हैं। राजा ने कहा.– भीतर ले आओ। तब कवि सभा में आये और 'स्वस्ति' कहकर राजा की आज्ञा से बैठ गये और बोले–

इह निवसति मेरुः शेखरो भूधराणा–
मिह हि निहितभाराः सागराः सप्त चैव ॥
इदमतुलमनन्तं भूतलं भूरिभूतो–
द्भवधरणसमर्थं स्थानमस्मद्विधानाम् ॥११२॥

इस स्थान पर पर्वतों का शिखर रूप सुमेरु पर्वत बसता है, इसी स्थान पर सकल भारों समेत सात समुद्र बसते हैं और यह आपका स्थान अतुल अनन्त भूखण्ड स्वरूप है एवम् अनेक प्राणियों की उत्पत्ति धारण करने में समर्थ है ॥११२॥

राजा महाकवे! किं ते नाम अभिधत्स्व। कविः नामग्रहणं नोचितं पण्डितानां, तथापि वदामो यदि जानासि ॥

राजा ने कहा कि–हे महाकवे! आपका क्या नाम है? सो बताएँ। कवि ने कहा–

---

१) प्रज्ञा नवनवोन्मेषशालिनी प्रतिभा इति रुद्रः।

पण्डितों को अपना नाम लेना उचित नहीं, तो भी यदि जानना चाहते हो, तो कहूँगा।

न हि स्तनंधयी बुद्धिर्गम्भीरं गाहते वचः।
तलं तोयनिधेर्द्रष्टुं यष्टिरस्ति न वैणवी ।।११३।।

स्तनपान करने वाले दुधमुहे बालक की बुद्धि गंभीर वचन की थाह को नहीं जान सकती, जैसे बाँस की लकड़ी समुद्र की तली को नहीं ढूंढ़ सकती है ।।११३।।

देवाकर्णय–

हे देव! सुनिये–

च्युतामिन्दोर्लेखां रतिकलहभग्नं च वलयं।
समं चक्रीकृत्य प्रहसितमुखी शैलतनया।।
अवोचद्यं पश्येत्यवतु गिरीशः सा च गिरिजा।
स च क्रीडाचन्द्रो दशनकिरणापूरिततनुः ।।११४।।

शिव और पार्वतीजी की रति के कलह में शिवजी के मस्तक पर विराजमान चन्द्रकला गिर गई और उधर पार्वतीजी का कङ्कन टूट गया, तो इन दोनों को बराबर करके चक्र की समान बनाकर हँसती हुई पार्वतीजी ने कहा– यह देखिये, वह दाँतों की किरणों से (चन्द्र पक्ष में ३२ किरणों से) युक्त शरीर वाला क्रीड़ाचन्द्र एवम् पार्वतीजी और शिवजी आपकी रक्षा करें।।११४।।

कालिदासः सखे! क्रीडाचन्द्र चिरदृष्टोऽसि। कथमीदृशी ते दशा मण्डले मण्डले विराजत्यपि राजनि बहुधनवति। क्रीडाचन्द्रः–

कालिदास ने कहा– हे सखे क्रीड़ाचन्द्र! चिरकाल बाद तुम्हें देखा है, तुम्हारी यह दशा क्यों हो गई? मण्डल–मण्डल में धनी और राजाओं के विराजमान हो जाने पर भी यह अवस्था क्यों हुई? क्रीड़ाचन्द्र ने कहा–

धनिनोऽप्यदानविभवा गण्यन्ते धुरि महादरिद्राणाम्।
हन्ति न यतः पिपासामतः समुद्रोऽपि मरुरेव ।।११५।।

जिनके दान रूपी ऐश्वर्य नहीं है, वे धनी मनुष्य भी महादरिद्रियों में आगे गिने जाते हैं, जिसकी तृषा शान्त न हो, वह समुद्र भी मरुस्थल के समान है ।।११५।।

किञ्च– उनभोगकातराणां पुरुषाणामर्थसञ्चयपराणाम्।
कन्यामणिरिव सदने तिष्ठत्यर्थः परस्यार्थे ।।११६।।

जो लक्ष्मी को नहीं भोगते और केवल धन का सञ्चय ही करते हैं, उनका धन घर में कन्या रूपी रत्न के समान दूसरे का ही जानो ।।११६।।

सुवर्णमणिकेयूराडम्बररैन्यभूभृतः

कलयैव पदं भोज तेशामाप्नोति सारवित् ।।११७।।

हे भोज! अन्य राजा तो सुवर्णमणि, बाजूबन्द आदि आडम्बरों से विराजमान रहते हैं और सारवेत्ता अपनी कला से ही उन स्थानों को प्राप्त होते हैं ।।११७।।

सुधामयानीव सुधां गलन्ति विदग्धसंयोजनमन्तरेण ।
काव्यानि निर्व्याजमनोहराणि वाराङ्गनानामिव यौवनानि ।।११८।।

विदग्ध अक्षरों से रहित कवियों के काव्य अमृतमय हैं और उनसे अमृत झरता है, जैसे वेश्याओं का निष्कपट यौवन सभी को अमृत के समान सुख देता है ।।११८।।

ज्ञायते जातु नामापि न राज्ञः कवितां विना ।
कवेस्तद्व्यतिरेकेण न कीर्तिः स्फुरति क्षितौ ।।११९।।

विना कविता के राजा का नाम नहीं जाना जाता और उस राजा के विना कवि की कीर्ति भी पृथ्वी पर प्रकट नहीं होती है ।।११९।।

मयूरः–

ते वन्द्यास्ते महात्मानस्तेषां लोके स्थिरं यशः ।
यैर्निबद्धानि काव्यानि ये च काव्ये प्रकीर्तिताः ।।१२०।।

(सभा में स्थित) मयूर कवि ने कहा– जो काव्य करते हैं और जिनके काव्य में बखान होता है, वे ही धन्य हैं, वे ही महात्मा और उन्हीं का यश संसार में अटल रहता है ।।१२०।।

वररुचि–

पदव्यक्तव्यक्तिकृतसहृदयाबन्ध ललिते ।
कवीनां मार्गेऽस्मिन्स्फुरति बुधमात्रस्य धिषणा ।।
न च क्रीडालेशव्यसनपिशुनोऽयं कुलवधू– ।
कटाक्षाणां पन्थाः स खलु गणिकानामविषयः ।।१२१।।

सभा में स्थित वररुचि कवि ने कहा– पदों के प्रकट करने में हृदय का अभिप्राय प्रकट किया है, कवियों के इस मार्ग में पण्डितमात्र की बुद्धि प्रकट होती है। यह मार्ग क्रीड़ा के लेश का और व्यसन का विरोधी नहीं, किन्तु कुलवधुओं के कटाक्षों का मार्ग है, यह वेश्याओं का विषय नहीं है ।।१२१।।

राजा क्रीडाचन्द्राय विंशति गजेन्द्रान् ग्रामपञ्चकं च ददौ। ततो राजानं कविः स्तौति–

राजा ने क्रीड़ाचन्द्र के लिये बीस हाथी और पाँच गाँव दिये, पश्चात् कवि ने राजा की स्तुति की–

[1]कङ्कणं नयनद्वन्द्वे [2]तिलकं करपल्लवे ।
अहो भूषणवैचित्र्यं भोजप्रत्यर्थियोषिताम् ।।१२२।।

अहा! आश्चर्य है!! कि राजा भोज के शत्रुओं की स्त्रियों के अद्भुत आभूषण हैं। दोनों नेत्रों में कङ्कण (जल की बूँदें, आँसू) हैं और हाथों में तिलक (तिलोदक) है ।।१२२।।

तुष्टो राजा पुनरक्षरलक्षं ददौ । ततः कदाचित् कोऽपि जरा-जीर्णसर्वाङ्गसन्धिः पण्डितो रामेश्वरनामा सभामभ्यगात् । स चाह-

प्रसन्न होकर फिर राजा ने एक-एक अक्षर के एक-एक लाख रुपये दिये। तत्पश्चात् किसी समय जरा अवस्था से शिथिल शरीर वाले रामेश्वर नामक वृद्ध पण्डित सभा में आकर बोले-

पञ्चाननस्य सुकवेर्गजमांसैर्नृपश्रिया ।
पारणा जायते क्वापि सर्वत्रैवोपवासिनः ।।१२३।।

सब स्थानों में उपवास-व्रत करने वाले कवि की और निराहार व्रत करने वाले सिंह की पारणा राजा के ऐश्वर्य से और हाथी के मांस से होती है ।।१२३।।

वाहानां पण्डितानां च परेषामपरो जनः ।
कवीन्द्राणां गजेन्द्राणां ग्राहको नृपतिः परः ।।१२४।।

वाहन और पण्डितों के ग्राहक तो अन्य पुरुष भी हो जाते हैं, परन्तु श्रेष्ठ कवियों के और श्रेष्ठ हाथियों के ग्राहक श्रेष्ठ राजा ही होते हैं।।१२४।।

एवं हि-
सुवर्णैः पट्टचैलैश्च शोभा स्याद्वारयोषिताम् ।
पराक्रमेण दानेन राजन्ते राजनन्दनाः ।।१२५।।

ऐसे ही- सुवर्ण और रेशमी वस्त्रों से वेश्या शोभा पाती है, एवम् पराक्रम और दान के द्वारा राजकुमार की शोभा होती है ।।१२५।।

इत्याकर्ण्य राजा रामेश्वरपण्डिताय सर्वाभरणान्युत्तार्य लक्षद्वयं प्रायच्छत् । ततः स्तौति कविः-

यह सुनकर समस्त आभूषणों को उतार कर रामेश्वर पण्डित के लिये दो लाख रुपये दिये। तब उस कवि ने राजा की स्तुति की है-

भोज त्वत्कीर्तिकान्ताया नभोभाले स्थितं महत् ।
कस्तूरीतिलकं राजन् गुणाकर विराजते ।।१२६।।

१- कङ्कणे उदकबिन्दुः । २-तिलोदकम् ।

हे राजन! हे गुणनिधान! आपकी कीर्ति रूपी कान्ता (स्त्री) का विशाल कस्तूरी का तिलक आकाश के भाल पर स्थित है, अर्थात् आपकी विशाल कीर्ति स्वर्गधाम तक फैल गई है ।।१२६।।

बुधाग्रे न गुणान्ब्रूयात् साधु वेत्ति यतः स्वयम् ।
मूर्खाग्रेऽपि च न ब्रूयाद् बुधप्रोक्तान्न वेत्ति सः ।।१२७।।

पण्डित के सम्मुख गुणों का बखान न करें; कारण वह स्वयम् ही जानता है और मूर्ख के सामने भी गुणों का बखान न करें; कारण मूर्ख पण्डित के वचनों को नहीं समझता है ।।१२७।।

तेन चमत्कृताः सर्वे: रामेश्वरकविः प्राह–

इस बात से सभी चमत्कृत हुए, तब रामेश्वर कवि ने कहा–

ख्यातिं गणपति सुजनः सुकविर्विदधाति केवलं कार्यम् ।
पुष्णाति कमलमंभो लक्ष्म्या तु रविर्वियोजयति ।।१२८।।

सज्जन पुरुष विख्यात हो जाता है और सुकवि केवल कार्य को करता है, जैसे कमल को जल बढ़ाता है और सूर्य खिलाता है ।।१२८।।

ततस्तुष्टो राजा प्रत्यक्षरलक्षं ददौ । राजेन्द्रं कविः प्राह–

इस पर प्रसन्न होकर राजा ने प्रत्येक अक्षर के लाख–लाख रुपये दिये । तब राजा से कवि ने कहा–

कवित्वं न शृणोत्येव कृपणः कीर्तिवर्जितः ।
नपुंसकः किं कुरुते पुरः स्थितमृगीदृशा ।।१२९।।

कीर्तिहीन कृपण कविता को नहीं सुनता है, जैसे सम्मुख विराजमान स्त्री से नपुंसक क्या कर सकता है ? ।।१२९।।

सीता प्राह–

हता देवेन कवयो वराकास्ते गजा अपि ।
शोभा न जायते तेषां मण्डलेन्द्रगृहं विना ।।१३०।।

सभा में स्थित सीता ने कहा– दैव द्वारा हत होने पर दीन कवि और हाथी राजभवन के विना शोभित नहीं होते ।।१३०।।

कालिदासः–

अदातृमानसं क्वापि न स्पृशन्ति कवेर्गिरः ।
दुःखायैवातिवृद्धस्य विलासास्तरुणीकृताः ।।१३१।।

सभा में स्थित कालिदास बोले– कृपण के मन को कवि की वाणी नहीं छूती, जैसे युवती के हाव–भाव वृद्ध को दुःख ही देते हैं ।।१३१।।

राजा प्रतिपण्डितं लक्षं लक्षं दत्तवान्। ततः कदाचिद्राजा समस्तादपि कविमण्डलादधिकं कालिदासमायान्तमवलोक्य परं वेश्यालोलत्वेन चेतसि खेदलवं चक्रे। तदा सीता विद्वद्वन्तवन्दिता तदभिप्रायं ज्ञात्वा प्राह–देव!

फिर राजा ने प्रत्येक पण्डित को एक–एक लाख रुपये दिये। उस के पश्चात् किसी समय समस्त कवि मण्डल को प्रवीण वेश्यागामी कालिदास को आते हुए देखकर राजा को अपने मन में दुःख हुआ। राजा के मन की बात जान कर विद्वानों से वन्दित सीता ने कहा– हे देव!

दोषमपि गुणवति जने दृष्ट्वा गुणरागिणो न खिद्यन्ते।
प्रीत्यैव शशिनि पतितं पश्यति लोकः कलङ्कमपि।।१३२।।

गुणी मनुष्य में दोष निहार कर भी पुरुष खेदित नहीं होते, जैसे कलङ्कित चन्द्रमा को समस्त संसार प्रीति भाव से देखता है।।१३२।।

तुष्टो राजा सीतायै लक्षं ददौ। तथापि कालिदासं यथापूर्वं न मानयति यदा तदा स च कालिदासो राज्ञोऽभिप्रायं विदित्वा तुलामिषेण प्राह–

इस वचन से प्रसन्न होकर राजा ने सीता को लाख रुपये दिये। इतने पर भी जब राजा ने पूर्व की तरह कालिदास को नहीं मान दिया, तब कालिदास ने राजा के मन का भाव जान कर तराजू के मिस से कहा–

प्राप्य प्रमाणपदवीं को नामास्ते तुलेऽवलेपस्ते।
नयसि गरिष्ठमधस्तात्तदितरमुच्चैस्तरां कुरुषे।।१३३।।

हे तराजू! तू भारी को नीचा और हलके को ऊँचा करके भी अपने प्रमाण को प्राप्त कर क्यों गर्व करती है?

पुनराह–

फिर कहा–

यस्यास्ति सर्वत्र गतिः स कस्मात्।
स्वदेशरागेण हि याति खेदम्।।
तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणाः।
क्षारं जलं कापुरुषाः पिबन्ति।।१३४।।

जिसकी सब स्थानों में गति है वह क्यों अपने देश के स्नेह से दुःखी होता है। यह हमारे पिता का बनाया कुँआ है, ऐसा कहकर मूर्ख खारी जल को पीते हैं।।१३४।।

ततो राज्ञा कृतामवज्ञां मनसि विदित्वा कालिदासो दुर्मनाः निजवेश्म ययौ।

फिर राजा के द्वारा स्वयं को अपमानित जानकर कालिदास उदास होकर अपने घर चला गया।

अवज्ञास्फुटितं प्रेमं समीकर्तुं क ईश्वरः।
सन्धिं न याति स्फुटितं लाक्षालेपेन मौक्तिकम् ।।१३५।।

अवज्ञा से टूटे हुए प्रेम को जोड़ने के लिये कौन समर्थ है, जैसे फूटा मोती लाख के द्वारा नहीं जुड़ता है।।१३५।।

ततो राजापि खिन्नः स्थितः। ततो लीलावती खिन्नं दृष्ट्वा राजानं विषादकारणमपृच्छत्। राजा च रहसि सर्वं तस्यै प्राह। सा च राजमुखेन कालिदासावज्ञा ज्ञात्वा पुनः प्राह- देव प्राणनाथ! सर्वज्ञोऽसि।।

फिर राजा का भी मन खिन्न हुआ, तब लीलावती ने राजा को अनमना देख कर विषाद के कारण को पूछा। राजा ने अकेले में सब वृत्तान्त कह दिया, उसने राजा के मुख से कालिदास की अवज्ञा को सुनकर फिर कहा- हे देव प्राणनाथ! आप सर्वज्ञ हो।

स्नेहो हि वरमघटितो न वरं सञ्जातविघटितस्नेहः।
हृतनयनो हि विषादी न विषादी भवति स खलु जात्यन्धः।।१३६।।

स्नेह का न करना अच्छा, परन्तु करके तोड़ना ठीक नहीं, जैसे नेत्रों के नष्ट हो जाने पर मनुष्य को दुःख होता है और जन्मान्ध को दुःख नहीं होता है।।१३६।।

परन्तु कालिदासः कोऽपि भारत्याः पुरुषावतारः। तत्सर्व-भावेन सम्मानयैनं विद्वद्भ्यः। पश्य-

परन्तु कालिदास कोई सरस्वती का पुरुष रूपी अवतार है, अतएव उसको सब भाँति से विद्वानों के द्वारा सम्मानित कराओ। देखो-

दोषाकरोऽपि कुटिलोऽपि कलङ्कितोऽपि।
मित्रावसानसमये विहितोदयोऽपि।।
चन्द्रस्तथापि हरवल्लभतामुपैति।
नैवाश्रितेषु गुणदोषविचारणा स्यात् ।।१३७।।

दोषों की खान, कुटिल, कलङ्की, मित्र (सूर्य) के अस्त में उदय होने वाला चन्द्रमा भी शिवजी को प्रिय है, इसी कारण आश्रित जन के गुण-दोषों का विचार नहीं किया जाता है।

राजा– प्रिये! सर्वमेतत्सत्यमेवेत्यङ्गीकृत्य श्वः कालिदासं प्रातरेव सन्तोषयिष्यामीत्यवोचत्। अन्येद्यू राजा दन्तधावनादिविधिं विधाय निर्वर्तितनित्यकृत्यः सभां प्राप पण्डिताः कवयश्च गायका अन्ये प्रकृतयश्च सर्वे समाजग्मुः। कालिदासमेकमनागतं वीक्ष्य राजा स्वसेवकमेकं तदाकारणाय वेश्यागृहं प्रेषयामास। स च गत्वा कालिदासं नत्वा प्राह। कवीन्द्र! त्वामाकारयति भोजनरेन्द्र इति। ततः कविर्व्यचिन्तयत्। गतेऽह्नि नृपेणावमानितोऽहमद्य प्रातरेवा-कारणे किं कारणमिति–

राजा ने कहा– हे प्रिये! सत्य है, अच्छा, कल प्रातःकाल ही मैं कालिदास को प्रसन्न करूंगा। दूसरे दिन राजा दातौन आदि शुद्धिक्रियाओं को करके, नित्यकर्मों को पूर्ण करके सभा मे आया। पण्डित, कवि, गायक और समस्त सभासद सभा में पधारे, केवल कालिदास को सभा में नहीं आया हुआ देखकर राजा ने अपने एक सेवक को उन्हें बुलाने के लिये वेश्या के घर पर भेजा। सेवक ने जाकर कालिदास से प्रणाम करके कहा– हे कविकुल मुकुटमणि! राजा भोज ने आपको बुलाया है। तब कवि को बड़ी चिन्ता हुई कि कल ही राजा ने मेरा अपमान किया था, अब प्रातःकाल ही क्यों बुलाता है?

यं यं नृपोऽनुरागेण सम्मानयति संसदि।
तस्य तस्योत्सारणाय यतन्ते राजवल्लभाः।।१३८।।

राजा जिस–जिस मनुष्य से सभा में प्रेम करते हैं, राजप्रिय जन उसी उसको उखाड़ने का यत्न करते हैं।।१३८।।

किन्तु विशेषतो राज्ञा अन्वहं मान्यमाने मयि मायाविनो मत्सराद्वैरं बोधयन्ति।।

किन्तु प्रतिदिन राजा के द्वारा मेरा मान होने पर मायावी पुरुष ईर्ष्या से वैर कराते हैं।

अविवेकमतिर्नृपतिर्मन्त्रिषु गुणवत्सु यन्त्रितग्रीवः।
यत्र खलाश्च प्रबलास्तत्र कथं सज्जनावसरः।।१३९।।

अज्ञानी राजा गुणी मन्त्रियों के वशीभूत रहता है और जहाँ दुष्टों की प्रबलता होती है, वहाँ सज्जनों का वाश कैसे हो सकता है।।१३९।।

इति विचारयन् सभामागच्छत्। ततो दूरे समायान्तं वीक्ष्य सानन्दमासनादुत्थाय सुकवे मत्प्रियतमाद्य कथं विलम्बः क्रियत इति

भाषमाणः पञ्च षट् पदानि सम्मुखो गच्छति। ततो निखिलापि सभा स्वासनादुत्थिता सर्वे सभासदश्च चमत्कृताः। वैरिणश्चास्य विच्छाय-वदना बभूवः। ततो राजा निजकरकमलेन अस्य करकमलमवलम्ब्य स्वासनदेशं प्राप्य तं च सिंहासने उपवेश्य स्वयं च तदाज्ञया तत्रै-वोपविष्टः। ततो राजसिंहासनारूढे कालिदासे बाणकविर्दक्षिणं बाहुमुद्धृत्य प्राह–

यह विचार सभा में आया। तब कालिदास को दूर ही से आते हुए देखकर हर्ष के साथ राजा ने खड़े होकर कहा– हे सुकवे! हे मम प्रिय! आपने क्यों विलम्ब किया? ऐसा कहकर पाँच–छः पग अगवानी के लिये चला, तो समस्त सभासद पुरुष अपने–अपने आसनों पर खड़े हो गये। इधर कालिदास के शत्रुओं का मुख मलीन हो गया। तब राजा ने निज करकमलों से कालिदास के करकमलों को लेकर अपने आसन के स्थान पर जाकर कविराज को सिंहासन पर बिठाया और उनकी आज्ञा से स्वयम् भी वहीं बैठ गये। जब कालिदास राजसिंहासन पर विराजे, तब बाण कवि ने अपनी दाहनी भुजा उठाकर कहा–

भोजः कलाविद्रुद्रो वा कालिदासस्य माननात्।
विबुधेषु कृतो राजा येन दोषाकरोऽप्यसौ॥१४०॥

भोज को कलाओं का ज्ञाता कहें वा रुद्र कहें, क्योंकि जिसने दोषाकार (दोषों की खान) कालिदास को पण्डितों में राजा कर दिया, रुद्र पक्ष में दोषों की खान विद्वानों के राजा चन्द्रमा को शिवजी ने अपने भाल में स्थान दिया॥१४०॥

ततोऽस्य विशेषेण विद्वद्भिः सह वैरानलः प्रदीप्तः। ततः कैश्चिद्बुद्धिमद्भि मन्त्रयित्वा सर्वैरपि विद्वद्भिः भोजस्य ताम्बूलवाहिनी दासी धनकनकादिना सम्मानिता। ते च तां प्रत्युपायमूचुः। सुभगे! अस्मत्कीर्तिमसौ कालिदासो मलयति अस्मासु कोऽपि नैतेन कलासाम्यं प्रवहते। वत्से! यथैनं राजा देशान्तरं निःसारयति तद्भवत्या कर्तव्यमिति। दासी प्राह। भवद्भ्यो हारं प्राप्य मया युष्मत्कार्यं क्रियते तन्मम प्रथमं हारो दातव्य इति। ततः सा ताम्बूलवाहिनी तैर्दत्तं हारमादाय व्यचिन्तयत्। तथाहि– बुधैरसाध्यं किं वास्ति। ततः समतिक्रामत्सु कतिपयवासरेषु दैवादेकाकिनि प्रसुप्ते राजनि चरणसंवाहनादिसेवामस्य विधाय तत्रैव कपटेन नेत्रे निमील्य सुप्ता। ततश्चरणचलनेन राजानमीषज्जागरूकं सम्यग्ज्ञात्वा

प्राह। सखि मदनमालिनि! स दुरात्मा कालिदासः दासीवेषेण अन्तःपुरं प्राप्य लीलादेव्या सह रमते। राजा तच्छ्रुत्वा उत्थाय प्राह। तरङ्गवति! किं जागर्षीति। सा च निद्राव्याकुलेव न शृणोति। राजा च तस्या अपध्वनिं श्रुत्वा व्यचिन्तयत्। इयं तरङ्गवती निद्रायां स्वप्नवशं गता वासनावशाद्देव्या दुश्चरितं प्राह। स च स्त्रीवेषेणान्तः-पुरमागच्छतीत्येतदपि सम्भाव्यते। को नाम स्त्रीचरितं वेदेति। ततश्चेत्थं विचार्य राजा परेद्युः प्रातरात्मनि कृत्रिमज्वरं विधाय शयानः कालिदासं दासीमुखेन आनाय्य तदागमनानन्तरं तयैव लीलादेवीं चानाय्य देवीं प्रत्यवदत्। प्रिये! इदानीमेव मया पथ्यं भोक्तव्यमिति। इत्युक्ते सापि तथैवेति पथ्यं गृहीत्वा राज्ञे रजतपात्रे दत्त्वा तत्र मुद्गदालीं प्रत्यवेषयत्। ततो राजापि तयोरभिप्रायं जिज्ञासमानः श्लोकार्द्धं प्राह-

इसके उपरान्त विद्वानों के साथ बैर की आग प्रकट हुई। फिर कुछ विद्वानों की सलाह से सभी विद्वानों ने भोज को पान की बीड़ी देने वाली दासी को सुवर्ण आदि दिया और फिर उस दासी को उन्होंने उपाय बताया। हे सुभगे! हमारी कीर्ति को कालिदास खण्डित कर देता है, हमारे लिये कोई भी कालिदास के समान कलावान् नहीं है। हे वत्से (बेटी)! जिससे राजा कालिदास को देश से निकाल दे, तुम उसी काम को करो। दासी ने कहा- आपसे हार (मोतियों की माला) लेकर मैं इस कार्य को करूँगी, अतएव पहले आप मुझे हार दो। फिर उस पान की बीड़ी देने वाली दासी ने उनसे हार लेकर विचारा कि बुद्धिमान क्या नहीं कर सकते हैं? कुछ काल के उपरान्त जब राजा अकेला सो रहा था, तब दासी राजा के पैर दाब सेवा करके वहीं कपट से नेत्र मींच कर सो गई। चरण फैलाने से राजा को कुछ जागता हुआ जान कर बोली- हे सखी मदनमालिनि! वह दुष्ट कालिदास दासी के वेष में अन्तःपुर में जाकर लीलादेवी (रानी) के साथ रमण करता है। राजा ने इस बात को सुनकर बैठकर कहा- हे तरङ्गवति! क्यों जागती हो? तब वह निद्रा में व्याकुल के समान नहीं सुनती है, राजा ने उसकी बुरी वाणी का शब्द सुन कर विचारा। यह तरङ्गवती नीन्द के वशीभूत है, वासना से रानी के दुश्चरित्रों को कहती है, वह स्त्रीवेष से अन्तःपुर में आता है, यह सम्भव हो सकता है? स्त्रियों के चरित्र नहीं जाने जाते। यह विचार कर दूसरे दिन राजा अपने शरीर में छल से ज्वर बताकर सो गया। फिर कालिदास कवि को दासी द्वारा बुलाया और उसी दासी से लीलादेवी को बुलाकर कहा- हे प्रिये! अभी मुझे पथ्य लेना चाहिये,

तब रानी ने राजा की आज्ञानुसार पथ्य स्वरूप चाँदी के पात्र में राजा के लिये मूँग की दाल परोसी। तब राजा ने उनका अभिप्राय जानने की लालसा से आधा श्लोक पढ़ा-

मुद्गदाली गदव्याली कवीन्द्र वितुषा कथम्।

हे कविराज! रोग की नाशक सर्पिणी रूपी मूँग की दाल छिलकों से रहित कैसे हुई?

इति। ततः कालिदासः देव्यां समीपवर्तिन्यामपि उत्तरार्द्धं प्राह-

तब कालिदास ने रानी के समीप होने पर भी आधा श्लोक पढ़ा-

अन्धोवल्लभसंयोगे जाता विगतकञ्चुकी।।१४१।।

भोजन रूपी पति के संयोग में इस (दाल रूपी) स्त्री ने अपनी कञ्चुकी खोल दी।।१४१।।

देवी तच्छ्रुत्वा परिज्ञातार्थस्वरूपा सरस्वतीव तदर्थं विदित्वा स्मेरमुखी मनागिव प्रबभूव। राजाप्येतद्दृष्ट्वा विचारयामास। इयं पुरा कालिदासे स्निह्यति अनेन एतस्यां समीपवर्तिन्यामपि इत्थमभ्यधायि इयं च स्मेरमुखी बभूव। स्त्रीणां चरित्रं को वेद।।

फिर रानी इस पद को सुनकर अर्थ को जानने वाले सरस्वती के समान उसके अर्थ को जान कर मुसकराई। राजा ने भी यह देखकर विचारा, यह पहले से ही कालिदास से स्नेह करती है, इसी कारण कवि ने इसके समीप रहने पर भी ऐसा कहा और यह भी कुछ मुसकराई। स्त्रियों का चरित्र कौन जानता है?

अश्वप्लुतं वासवगर्जितं च स्त्रीणां च चित्तं पुरुषस्य भाग्यम्।
अवर्षणं चाप्यतिवर्षणं च देवो न जानाति कुतो मनुष्यः।।१४२।।

घोड़े का कूदना, इन्द्र का गर्जना, स्त्रियों का चित्त, पुरुषों का भाग्य, वर्षा न होना और अति वर्षा होने को देवता भी नहीं जान सकते, तो मनुष्य की क्या सामर्थ्य है? जो जान सके।।१४२।।

किं त्वयं ब्राह्मणः दारुणापराधित्वेन हन्तव्य इति। विशेषेण सरस्वत्याः पुरुषावतार इति विचार्य कालिदासं प्राह। कवे! सर्वथा अस्मद्देशेन स्थातव्यं किं बहुनोक्तेन। प्रतिवाक्यं किमपि न वक्तव्यम्। ततः कालिदासोऽपि वेगेनोत्थाय वेश्यागृहमेत्य तां प्रत्याह। प्रिये! अनुज्ञां देहि मयि भोजः कुपितः स्वदेशे न स्थातव्यमित्युवाच। अहह-

किन्तु दारुण अपराधी होने से यह ब्राह्मण मारने के योग्य है। विशेष कर यह

सरस्वती का अवतार है, (रानी के) इस बात को विचार कर कालिदास से कहा- हे कवे! अधिक क्या कहूँ? तुम हमारे देश से निकल जाओ और मुझे उत्तर न दो। तब कालिदास तुरन्त खड़ा होकर चल दिया और वेश्या के घर में आकर कहा- हे प्रिये! विदा दो, मुझ पर कुपित होकर राजा ने देश से निकल जाने को कहा है। अहह!

अघटितघटितानि घटयति घटितघटितानि दुर्घटीकुरुते।
विधिरेव तानि घटयति यानि पुमान्नैव चिन्तयति ।।१४३।।

विधाता अनहोनी बात कर देता है और होने वाली बात नष्ट कर देता है। जिनका कभी पुरुष विचार भी नहीं करता, उनको कर देता है ।।१४३।।

किं च किमपि विद्वद्वृन्दचेष्टितमेवेति प्रतिभाति। तथाहि-

किन्तु कुछ विद्वानों को ही यह समस्त चेष्टित दीखता है, ऐसा कहा भी है-

बहूनामल्पसाराणां समवायो दुरत्ययः।
तृणैर्विधीयते रज्जुर्बध्यन्ते तेन दन्तिनः ।।१४४।।

अल्पसार वालों का एकत्र होना ही दृढ़ हो जाता है, जैसे तिनकों की बनी हुई रस्सी से हाथी बाँधे जाते हैं ।।१४४।।

ततो विलासवती नाम वेश्या तं प्राह-

फिर विलासवती नाम वाली वेश्या ने कवि से कहा;-

तदेवास्य परं मित्रं यत्र संक्रामति द्वयम्।
दृष्टे सुखं च दुःखं च प्रतिच्छायेव दर्पणे ।।१४५।।

इस प्राणी का वही परम मित्र है, जिसके दर्शन से सुख-दुःख दोनों दर्पण में प्रतिबिम्ब के समान दीखते हैं ।।१४५।।

दयित! मयि विद्यमानायां किं ते राज्ञा किं वा राजदत्तेन वित्तेन कार्यम्। सुखेन निःशङ्कं तिष्ठ मद्गृहान्तःकुहरः इति। ततः कालिदासः तत्रैव वसन् कतिपयदिनानि गमयामास। ततः कालिदासे गृहान्निर्गते राजानं लीलादेवी प्राह। देव कालिदासकविना साकं नितान्तं निबिडतमा मैत्री तदिदानीमनुचितं कस्मात्कृतं देशेऽप्यवस्थानं निषिद्धम् ।।

हे प्रिय! जब तक मैं जीवित हूँ, तब तक राजा से तुम्हें क्या काम है? और राजा का धन से तुम्हें क्या काम है? सुख से मेरे घर के तहखाने में निःशङ्क होकर रहो, फिर कालिदास ने कुछ दिन वहीं रहकर बिताये। इसके पीछे कालिदास घर से बाहर निकल गये, तब लीलावती देवी ने कहा- हे देव! कालिदास का साथ आप की परम

मित्रता थी, सो अब क्यों जाती रही, जो कालिदास को देश से भी निकाल दिया।

इक्षोरग्रात्क्रमशः पर्वणि पर्वणि यथा रसविशेषः।
तद्वत्सज्जनमैत्री विपरीतानां च विपरीता ।।१४६।।

जैसे गन्ने के आगे से क्रमानुसार पोर-पोर में अधिक मिठास होती है, वैसे ही सज्जनों की मित्रता दिन-पर-दिन अधिक होती जाती है और दुष्टों की मित्रता उलटी होती है अर्थात् प्रतिदिन घटती जाती है ।।१४६।।

शोकारातिपरित्राण प्रीतिविस्रम्भभाजनम्।
केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम् ।।१४७।।

शोक रूपी शत्रु से रक्षक, प्रीति और विश्वास का पात्र "मित्र" नामक दो अक्षर के रत्न को किसने रचा है? ।।१४७।।

राजाप्येतल्लीलादेवीवचनमाकर्ण्य प्राह- देवि! केनापि ममेत्यभिधायि। तत्कालिदासो दासीवेषेण अन्तःपुरमासाद्य देव्या सह रमत इति। मया चैतद्व्यापारजिज्ञासया कपटज्वरेणायं भवती च वीक्षितौ। ततः समीपवर्तिन्यामपि त्वय्युत्तरार्द्धमित्थं प्राह। तथाकर्ण्य त्वयापि कृतो हासः। ततश्च सर्वमेतद्दृष्ट्वा ब्राह्मण-हननभीरुणा मया देशान्निःसारितः। त्वां च न दाक्षिण्येन हन्मीति। ततः हासपरा देवी चमत्कृता प्राह। निःशङ्कं देव! अहमेव धन्या यस्यास्त्वं पतिरीदृशः। यत्त्वया भुक्तशीलया मम मनः कथमन्यत्र गच्छति यतः सर्वकामिनीभिरपि कान्तोपभोगे स्मर्त्तव्योऽसि। अहह देव! त्वं यदि मां सतीमसतीं वा अकृत्वा गमिष्यसि तर्ह्यहं सर्वथा मरिष्य इति। ततो राजापि प्रिये! सत्यं वदसीति। ततः स नृपतिः पुरुषैरहिमानयामास तप्तं लोहगोलकं कारयामास धनुश्च सज्जं चक्रे। ततो देवी स्नाता निजपातिव्रत्यानलेन देदीप्यमाना सुकुमारगात्री सूर्यमवलोक्य प्राह। जगच्चक्षुस्त्वं सर्वसाक्षी सर्वं वेत्सि-

राजा ने लीलादेवी के वचनों को सुनकर कहा- हे देवी! किसी ने मेरे सामने कहा कि, दासी के वेष में कालिदास अन्तःपुर में आकर रानी के साथ रमण करता है। मैंने इसकी सत्यता के लिये ज्वर के छल से तुम्हें और कालिदास को देख लिया। फिर तुम्हारे समीप रहने पर भी इस प्रकार श्लोक के उत्तरार्द्ध को पढ़ा और उस पद को सुनकर तुम भी हँसी। तब इन सब बातों को देखकर ब्राह्मण वध का भय जानकर उस कवि को

मैंने देश से बाहर निकाल दिया। तुम चतुरा और बुद्धिमती हो, इस कारण तुम्हें नहीं मारता हूँ। फिर रानी ने हँसी के साथ चौंककर कहा- हे देव! मैं निःशंक हुई, धन्य हूँ जिसके आप पति हो। आप मेरे स्वभाव को भलीभाँति से जानते हो, आपकी भोगी हुई का मेरा मन अन्य स्थान में क्यों जायगा? कारण हे कान्त! आप सभी स्त्रियों के उपभोग समय में स्मरण होते हो, अहा! बड़े खेद की बात है कि आप मुझे सती अथवा असती बिना बनाये जाओगे तो मैं निश्चय प्राण त्याग दूंगी। तब राजा ने कहा- प्यारी! सत्य कहती हो? फिर राजा ने पुरुषों से सर्प मंगाया लोहे के गोले को तपाया और धनुष पर बाण चढ़ाया। तब उस सुकुमारी रानी ने स्नान करके अपने पातिव्रत्य धर्म रूपी अग्नि से दीप्त होकर सूर्य का दर्शन करके कहा- हे जगत् के चक्षु! आप सभी के साक्षी हो और सब कुछ जानते हो।

जाग्रति स्वप्नकाले च सुषुप्तौ यदि मे पतिः।
भोज एव परं नान्यो मच्चिते भावितोऽपि न ।।१४८।।

जागते, सोते और स्वप्न के समय मेरे चित्त में अपने प्राणपति भोज के सिवाय दूसरा नहीं आता है, इसको सत्य करके दिखाओ ।।१४८।।

इत्युक्त्वा ततो दिव्यत्रयं चक्रे। ततः शुद्धायामन्तःपुरे लीलावत्यां लज्जानतशिराः नृपतिः पश्चात्तापात्पुरा देवि! क्षमस्व पापिष्ठ किं वदामीति कथयामास। राजा च तदाप्रभृति न निद्राति न च भुंक्ते न केनचिद्वक्ति। केवलमुद्विग्नमनाः स्थित्वा दिवानिशं प्रविलपति। किं नाम मम लज्जा किं नाम दाक्षिण्यं क्व गाम्भीर्यं हा हा कवे कविकोटिमुकुटमणे कालिदास हा! मम प्राणसम! हा मूर्खेण किमश्राव्यं श्रावितोऽसि अवाच्यमुक्तोऽसीति प्रसुप्त इव ग्रहग्रस्त इव मायाविध्वस्त इव पपात। ततः प्रियाकरकमलसिक्त-जलसञ्जातसंज्ञः कथमपि तामेव प्रियां वीक्ष्य स्वात्मदिन्दापरः परमतिष्ठत्। ततो निशा निशानाथहीनेव दिनकरहीनेव दिनश्रीर्वियो-गिनीव योषित् शक्ररहितेव सुधर्मा न भाति भोजभूपालसभारहिता कालिदासेन। तदाप्रभृति न कस्यचिन्मुखे काव्यं न कोऽपि विनोदसुन्दरं वचो वक्ति। ततो गतेषु केषुचिद्दिनेषु कदाचिद्राकापूर्णे-न्दुमण्डलं पश्यन् पुरश्चलीलादेवीमुखेन्दुं वीक्ष्य प्राह-

इस भाँति से कहकर दिव्यत्रय किया, अर्थात्- सर्प से नहीं डसी, अग्नि से नहीं जली और बाण द्वारा भी नहीं विंधी। अन्तःपुर मे ही लीलावती शुद्ध हो चुकी,

तब तो लाज से नीचे मुख किये राजा ने पछता कर पहले कहा कि– हे देवि! मुझ पापी को क्षमा करो, अधिक क्या कहूँ? तब से राजा को न नीन्द आती है और न भूख लगती है। राजा किसी से कुछ नहीं कहता है। केवल उदासीन होकर रात-दिन विलाप करता है, अब मेरी लज्जा, चतुराई और गौरव कहाँ है? हा! हा!! हे कवे! हे कविकुल मुकुटमणि! हे कालिदास! हे मम प्राणतुल्य! हा!! मुझ मूर्ख ने क्या सुनाने योग्य तुम को नहीं सुनाया? और क्या कहने योग्य तुमसे नहीं कहा? इस भाँति निद्राभिभूत ग्रहों से ग्रसे हुए के समान छल से विध्वस्त होने की समान गिर गया। तब रानी के करकमलों द्वारा जल छिड़काने से चैतन्य हुआ, फिर रानी को निहार मौन, होकर बैठ गया। पश्चात् चन्द्रहीन रात्रि के समान, सूर्यहीन दिन के समान, वियोगिनी स्त्री के समान और इन्द्र रहित सुधर्मा सभा के समान राजा भोज की सभा कालिदास से हीन होने से श्रीहीन हो गई। फिर तब से किसी के मुख से काव्य की रचना नहीं सुन पड़ी, कोई विनोद के वचन नहीं कहता है। इस भाँति कुछ काल के उपरान्त पूर्णिमा की रात्रि में पूर्ण चन्द्र को देखकर राजा लीलादेवी के मुखचन्द्र को निहारते हुए कहने लगा;–

[१]'तुलणं अणु अणुसरई ग्लौ सो मुहचन्दस्स खु एदाये।

कि यह चन्द्रमा इस रानी के मुखचन्द्र की बराबरी करता है।

कुत्र च पूर्णेऽपि चन्द्रमसि नेत्रविलासाः कदा वाचो विलसि-तम्। प्रातश्चोत्थितः प्रातर्विधीन्विधाय सभां प्राप्य राजा विद्वद्वरा-न्प्राह। अहो कवयः! इयं समस्या पूर्यताम्। ततः पठति 'तुलणं अणु अणुसरई ग्लौ सो मुहचन्दस्स खु एदाये।' पुनराह। इयं चेत्समस्या न पूर्यते भवद्भिः मद्देशे न स्थातव्यमिति। ततो भीतास्ते कवयः स्वानि गृहाणि जग्मुः। चिरं विचारितेऽप्यथ कस्यापि नार्थसङ्गतिः स्फुरति। ततः सर्वैर्मिलित्वा बाणः प्रेषितः ततः सभां प्राप्याह राजानम्। देव! सर्वैर्विद्वद्भिरहं प्रेषितः। अष्टवासरानवधिम-भिधेहि। नवमेऽह्नि पूरयिष्यन्ति ते। न चेद्देशान्निर्गच्छन्ति ते। राजा अस्त्वित्याह। ततो बाणः तेषां विज्ञाप्य राजसन्देशं स्वगृहमगात्। ततोऽष्टौ दिवसाः अतीताः। अष्टमदिनरात्रौ मिलितेषु बाणः प्राह। अहो तारुण्यमदेन राजसन्मानमदेन किञ्चिद्विद्यामदेन कालिदासो निःसारितोऽभवत्। समे भवन्त सर्व एव कवयः। विषमे स्थाने तु स एक एव कविः। तं निःसार्य इदानीं किं नाम महत्वमासीत्। स्थिते

१– च्छाया–तुलनामन्वनुसरति ग्लौः स मुखचन्द्रस्यखल्वेतस्या।

तस्मिन् कथमियमवस्थास्माकं भवेत्। तन्नि:सारे या या बुद्धिः कृता सा भवद्भिरेव अनुभूयते ।।

ऐसे कभी पूर्ण चन्द्रमा में नेत्रों का विलास हुआ और फिर कभी वाणी का विलास हुआ। (यह कविता रची) फिर प्रातःकाल राजा उठा और प्रातःकाल का नित्य कर्म समाप्त करके सभा में आकर ब्राह्मणों से कहा– हे कविगण! इस समस्या को पूर्ण करो। राजा पढ़ता है,– "**तुलनं अणु अणुसरई ग्लौ सो मुहचन्दस्स खु एदाये।**" पढ़कर कहा– यदि इस समस्या को आप पूरा न कर सको तो, मेरे देश से निकल जाओ। तब तो मारे डर के वे कवि अपने-अपने घर को चले गये। चिरकाल तक अर्थ विचारने पर भी किसी को अर्थ की सङ्गति नहीं सूझी। तब सभी ने मिल कर बाणकवि को भेजा। बाण ने सभा में आकर राजा से कहा– हे देव! सभी ने मिलकर मुझे भेजा है, आप आठ दिन की अवधि दीजिये। नवमें दिन समस्यापूर्ति करेंगे, नहीं तो आपके देश से निकल जायेंगे। राजा ने यह बात मान ली। फिर बाणकवि राजा के सन्देश को सब कवियों को सुनाकर अपने घर आया। जब आठ दिन बीत गये। आठवें दिन रात्रि में सब एकत्रित हो गये, तब बाण ने कहा– अहो! तरुणाई के मद से, राजसम्मान के मद से और कुछ विद्या के मद से कालिदास को निकाल दिया। साधारण स्थान में आप सभी कवि हो और विषम स्थान में तो वह एक ही कवि है। उसको निकालकर अब क्या गौरव पाया? उसके होते हमारी यह दशा क्यों होती? उसके निकाल ने में जो-जो अक्लमंदी दिखाई थी, उसीका स्वाद मिला है

सामान्यविप्रद्वेषे च कुलनाशो भवेत्किल।
उमारूपस्य विद्वेषो नाशः कविकुलस्य हि ।।१४९।।

सामान्य ब्राह्मण के साथ द्वेष करने से निश्चय कुल नष्ट हो जाता है। पार्वतीजी के रूप का द्वेष करने से कवियों का कुल अवश्य नष्ट हो जाता है ।।१४९।।

ततः सर्वे गाढं कलहायन्ते स्म। मयूरादयश्च ततस्ते सर्वान् कलहान्निवार्य सद्यः प्राहुः। अद्यैवावधिः पूर्णः कालिदासमन्तरेण न कस्यचित्सामर्थ्यमस्ति समस्यापूरणे ।।

उसके पश्चात् सब कवि बड़ा कलह करने लगे। फिर मयूर आदि से लेकर समस्त कवि सबको कलह से रोककर बोले कि– आज अवधि पूर्ण हो गई। कालिदास के विना समस्यापूर्ति कोई नहीं कर सकता है।

सङ्ग्रामेषु भटेन्द्राणां कवीनां कविमण्डले।
दीप्तिर्वा दीप्तिहानिर्वा मुहूर्त्तेनैव जायते ।।१५०।।

समरभूमि में योद्धाओं की और कविमण्डल में कवियों की हार-जीत मुहूर्त्त

भर में ही दीख जाती है ।।१५०।।

यदि रोचते ततोऽद्यैव मध्यरात्रे प्रमुदितचन्द्रमसि निगूढमेव गच्छामः सम्पत्तिसम्भारमादाय। यदि न गम्यते श्वो राजसेवका अस्मान्बलान्निःसारयन्ति तदा देहमात्रेणैवास्माभिर्गन्तव्यम्। तदाद्य मध्यरात्रे गमिष्याम इति सर्वे निश्चित्य गृहमागत्य बलीवर्दव्यूढेषु शकटेषु सम्पद्भारमारोप्य रात्रावेव निष्क्रान्ताः। ततः कालिदासः तत्रैव रात्रौ विलासवतीसदनोद्याने वसन् पथि गच्छतां तेषां गिरं श्रुत्वा वेश्याचेटी प्रेषितवान्। प्रिये! पश्य क एते गच्छन्ति ब्राह्मणा इव। ततः सा समेत्य सर्वानपश्यत्। उपेत्य च कालिदासं प्राह-

जो आपकी सम्मति हो तो आज ही आधी रात के समय चन्द्रोदय में अपने समस्त धनादि को ले कर चुपके से चले जाओ जो नहीं चलोगे तो कल ही राजसेवक हमें जबरदस्ती निकाल देंगे, तब हमें केवल शरीर को लेकर ही जाना पड़ेगा। अतएव आज ही रात्रि में चलना चाहिये। ऐसा निश्चय करके सब अपने-अपने घर आकर बैलों को जोत कर छकड़ों में अपने माल असबाब को लाद रात्रि को ही निकल पड़े। तब कवि कालिदास ने वही विलासवती के बगीचे में छुपे हुए मार्ग में जाते हुए उन कवियों की वाणी को सुनकर वेश्या की दासी को भेजा कि- हे प्रिये! देख तो सही, ये कौन जा रहे हैं? मुझे ब्राह्मण जान पड़ते हैं। पश्चात् दासी ने वहाँ जाकर सब को देखा और लौटकर कालिदास से कहा-

एकेन राजहंसेन या शोभा सरसोऽभवत्।
न सा बकसहस्रेण परितस्तीरवासिना ।।१५१।।

एक राजहंस से जो सरोवर की शोभा होती है, वह चारों ओर वसने वाले हजार बगलों से नहीं हो सकती है ।।१५१।।

सर्वे च बाणमयूरप्रमुखाः पलायन्ते नात्र संशय इति। कालिदासः प्रिये! वेगेन वासांसि भवनादानय यथा पलायमानान् विप्रान् रक्षामि ।।

निश्चय ही बाण-मयूर को आदि लेकर समस्त कविगण भागे जा रहे हैं। (यह सुनकर) कालिदास ने कहा- प्रिये! शीघ्र वस्त्र लाओ, जिससे भागते हुए ब्राह्मणों की रक्षा करूं।

किं पौरुषं रक्षति यो न वार्तान्।
किं वा धनं नार्थिजनाय यत्स्यात् ।।

सा किं क्रिया या न हितानुबद्धा।
किं जीवितं साधुविरोधि यद्वै।।१५२।।

कारण– पीड़ितों की रक्षा न की तो बल क्यों है? अभ्यागतों को न दिया, तो धन क्यों है? जो अपना हित न करे, वह क्रिया क्या है? और साधुओं से विरोध रखकर जीवन क्या है? अर्थात् कुछ नहीं।।१५२।।

ततः स कालिदासश्चारवेषं विधाय खड्गमुद्वहन् क्रोशार्द्धमुत्तरं गत्वा तेषामभिमुखमागत्य सर्वान्निरूप्य जयेत्याशीर्वचनमुदीर्य पप्रच्छ चारणभाषया। अहो विद्यावारिधयो भोजसभायां सम्प्राप्तमहत्त्वातिशयाः बृहस्पतय इव सम्भूव कुत्र जिगमिषवो भवन्तः। कच्चित्कुशलं वो राजा च कुशली। अस्माभिः काशीदेशादागम्यते भोजदर्शनाय वित्तस्पृहया। ततः परिहासं कुर्वन्तः सर्वे निष्क्रान्ताः। ततस्तेषु कश्चित्तद्गिरमाकर्ण्य तं च चारणं मन्यमानः कुतूहलेन विपश्चित्प्राह अहो चारण! शृणु त्वया पश्चादपि श्रोष्यत एव अतो मया अद्यैवोच्यते। राज्ञा किलैभ्यो विद्वद्भ्यः पूरणाय समस्योक्ता तत्पूरणाशक्ताः कुपिता राज्ञा देशान्तरे क्वचिज्जिगमिषव एते निश्चक्रमुः। चारणः– राज्ञा का वा समस्या प्रोक्ता। ततः पठति स विपश्चित्। "तुलणं अणु अणुसरई ग्लौ सो मुहचन्दस्स खु एदाये।" चारणः– एतत्साध्येव गूढार्थमेतत्पूर्णेन्दुमण्डलं वीक्ष्य राज्ञापाठि। एतस्योत्तरार्द्धमिदं भवितुमर्हति।।

तत्पश्चात् कालिदास ने यह विचार कर गुप्तचर बनकर खड्ग लेकर अर्द्धकोश आगे जाकर उन कवियों के सामने आकर खबर करी, 'जय हो' ऐसे आशीर्वाद देकर उनसे चारण की भाषा से पूछा कि– हे विद्यासागर! राजा भोज की सभा में बृहस्पति के समान बड़े गौरव पाने वालो! आप सब मिलकर कहाँ जाने की इच्छा करते हो? कहिये, आप कुशल से तो हो? और राजा भी कुशलपूर्वक है? (यह कहकर फिर कालिदास ने कहा) धन की अभिलाषा से राजा भोज के लिये मैं काशीधाम से आया हूँ। तब सब हँसते हुए चले गये। उसके पश्चात् उनमें से किसी विद्वान् ने उसकी वाणी सुन और उसे चारण मान कर आश्चर्य से कहा कि– हे चारण! सुनिये, आप पहले भी सुने होंगे, अतएव अभी कहता हूँ। सत्य तो यह है कि राजा भोज ने इन सबों को एक समस्यापूर्त्ति के लिये दी थी, उसकी ये पूर्त्ति न कर सके, अतएव राजा ने क्रोध करके

ये सब निकाले हुए दूसरे देश में बसने की लालसा से जा रहे हैं। यह सुनकर चारण (कालिदास) ने कहा– राजा ने कौन सी समस्या पूर्त्ति के लिये दी है? तब उस विद्वान ने कहा– "तुलणं अणु अणुसरई ग्लौ सो मुहचन्दस्स खु एदाये।" चारण ने कहा यह ठीक ही है। चन्द्रमा का पूर्ण मण्डल देखकर इस गूढ़ अर्थ भरी समस्या को राजा ने कहा है। सो इसकी पूर्त्ति ऐसे होनी चाहिये।

अणुइदि बणयदि कह अणुकिदि तस्स पडिपदि चन्दस्स।।

"अन्विति वर्ण्यते कथमनुकृतिस्तस्य प्रतिपदि चन्द्रस्य।"

सर्वे श्रुत्वा चमत्कृताः। ततश्चारणः सर्वान्प्रणिपत्य निर्ययौ। ततः सर्वे विचारयन्ति स्म अहो इयं साक्षात्सरस्वती पुरुषेण सर्वेषा–मस्माकं परित्राणायागता नायं भवितुमर्हति मनुष्यः। अद्यापि किमपि केनापि न ज्ञायते। ततः शीघ्रमेव गृहमासाद्य शकटेभ्यो भारमुत्तार्य प्रातः सर्वैरपि राजभवनं गन्तव्यं न चेच्चारण एव निवेदयिष्यति ततो झटिति गच्छाम इति योजयित्वा तथा चक्रुः। ततो राजसभां गत्वा राजानमालोक्य स्वस्तीत्युक्त्वा विदिशुः। ततो बाणः प्राह। देव सर्वज्ञेन यत्त्वया पठ्यते तदीश्वर एव वेद। केऽमी वराका उदरम्भरयः द्विजाः तथाप्युच्यते–

इसे सुनकर सभी विस्मित हो गये। पश्चात् चारण सबको प्रणाम करके चला गया। तब सब ने विचारा कि अहा! पुरुष रूप से साक्षात् सरस्वती थी, सो जान पड़ता है कि हमारी रक्षा करने को ही आयी थी। इसे मनुष्य नहीं मानना चाहिये। अभी तो किसी ने कुछ नहीं जाना है। फिर शीघ्र ही सब घर आकर छकड़ों से असबाब उतार कर सम्मति करने लगे। कल प्रातःकाल ही सबको राजा की सभा में चलना चाहिये। नहीं तो यह पद चारण कह जायेगा। इस कारण शीघ्र चलेंगे। यह सलाह करके वैसा ही किया। पश्चात् राजसभा में आकर और राजा को देख 'स्वस्ति' रूप आशीर्वाद देकर विराजमान हो गये। फिर बाणकवि ने कहा– हे देव! जो आप सर्वज्ञ ने कहा है, उसे भगवान् ही जान सकते हैं। ये तुच्छ के पेट भरने वाले ब्राह्मण क्या जानेंगे? परन्तु फिर भी कहते हैं–

[1]तुलणं अणु अणुसरई ग्लौ सो मुहचन्दस्स खु एदाये।
अणुइदि बणयदि कह अणुकिदि तस्स पडिपदि चन्दस्स।।१५३।।

आपकी समस्या का आशय यह है कि इस रानी के मुखचन्द्र की बराबरी यह चन्द्रमा करता है। (अब उत्तरार्द्ध पूर्त्ति ऐसी है) परन्तु रानी का मुखचन्द्र सोलह कलाओं

से सदैव पूर्ण रहता है और चन्द्र की कला प्रतिपदा को एक ही रह जाती है, इस कारण रानी के मुखचन्द्र की बराबरी चन्द्रमा भी नहीं कर सकता ॥१५३॥

राजा यथाव्यवसितस्याभिप्रायं विदित्वा सर्वथा कालिदासो दिवसप्राप्यस्थाने निवसति। उपायैश्च सर्वं साध्यम्। ततो बाणाय रुक्माणां पञ्चदशलक्षाणि प्रादात्। सन्तोषमिषेणैव विद्वद्वृन्दं स्वं स्वं सदनं प्रतिप्रेषितम्। गते च विद्वन्मण्डले शनैर्द्वारपालायादिष्टं राज्ञा। यदि केचित् द्विजन्मान आयास्यन्ति तदा गृहमध्यमानेतव्याः। तत सर्वमपि वित्तमादाय स्वगृहं गते बाणे केचित्पण्डिता आहुः। अहो बाणेनानुचितं व्यधायि। यदसावपि अस्माभिः सह नगरान्निष्क्रान्तोऽपि सर्वमेव धनं गृहीतवान्। सर्वथा भोजस्य बाणस्य रूपं ज्ञापयिष्यामः। यथा कोऽपि नान्यायं विधत्ते विद्वत्सु। ततस्ते राजा नमासाद्य ददृशुः। राजा तान्प्राह एतत्स्वरूपं ज्ञातमेव भवद्भिर्यथार्थतया वाच्यम्। ततस्तैः सर्वमेव निवेदितम्। ततः राजा विचारितवान्। सर्वथा कालिदासश्चारणवेषेण मद्भयान्मदीयनगरमध्यास्ते। ततश्चाङ्गरक्षकानादिदेश। अहो पलाय्यन्तां तुरङ्गाः। ततः क्रीडोद्यानप्रयाणे पटहध्वनिरभवत्। अहो इदानीं राजा देवपूजाव्यग्र इति शुश्रुमः। पुनरिदानीं क्रीडोद्यानं गमिष्यतीति व्याकुलाः सर्वे भटाः सम्भूय पश्चाद्यान्ति। ततो राजा तैर्विद्वद्भिः स अश्वमारुह्य रात्रौ यत्र चारणप्रसङ्गः समजनि तत्प्रदेशं प्राप्तः। ततो राजा चरतां चौराणां पदज्ञाननिपुणानाहूय प्राह। अनेन वर्त्मना यः कोऽपि रात्रौ निर्गतः तस्य पदानि अद्यापि दृश्यन्ते तानि पश्यन्त्विति। ततो राजा प्रतिपण्डितं लक्षं दत्त्वा तान्प्रेषयित्वा च स्वभवनमगात्। ते च पदज्ञा राजाज्ञया सर्वतश्चरन्तोऽपि तमनवेक्षमाणा विमूढा इवासन्। ततश्च लम्बमाने सवितरि कामपि दासीमेकं पदत्राणं त्रुटितमादाय चर्मकारवेश्म गच्छन्तीं दृष्ट्वा तुष्टा इवासन्। ततस्तत् पदत्राणं तया चर्मकारकरे न्यस्तं वीक्ष्य तैश्च तस्य करान्मिषेणादाय रेणुपूर्णे पथि मुक्त्वा तदेव पदं तस्येति ज्ञात्वा तां च दासीं क्रमेण वेश्याभवनं व्रजन्तीं वीक्ष्य तस्या

१- च्छाया-तुलनामन्वनुसरति ग्लौः स मुखचन्द्रस्य खल्वेतस्याः। अन्विति वर्ण्य ते कथमनुकृतिस्तस्य प्रतिपादे चन्द्रस्य

मन्दिरं परितो वेष्टयामासुः। ततश्च तैः क्षणेन भोजश्रवणपथविषयं अभिज्ञानवार्त्ता प्रापिता। ततो राजा सपौरः सामात्यः पद्भ्यामेव विलासवतीभवनमगात्। ततस्तच्छ्रुत्वा विलासवतीं प्राह कालिदासः। प्रिये! मत्कृते किं कष्टं ते पश्य। विलासवती प्राह सुकवे-

ऐसा सुनकर ठिक है, कहकर राजा ने विचारा कि अवश्य एक दिन में प्राप्त होने वाले स्थान में कालिदास रहता है। उपाय करने से सब ही सिद्ध होता है। तत्पश्चात् पन्द्रह लाख रुपये बाणकवि को राजा भोज ने दिये। मैं आप सबों से प्रसन्न हुआ, इस बहाने से सब विद्वानों को राजा ने अपने-अपने घर भेज दिया। जब सब विद्वान् चले गये, तब राजा ने द्वारपाल से कहा- जो कोई ब्राह्मण आवें, उन्हें हमारे स्थान पर लाना। फिर समस्त धन को लेकर जब बाणकवि अपने घर चला गया, तब कुछ पण्डितों ने कहा- अहो! बाणकवि ने बड़ा अनुचित किया। कारण जब यह भी हमारे साथ नगर से निकला था, तो हमारे बराबर ही हुआ, तब वह अकेला ही सब धन को कैसे ले गया? भलीभाँति से राजा भोज के सामने बाणकवि के स्वरूप को कहेंगे। जिससे फिर कोई विद्वानों में अन्याय न करने पाये। फिर वे विद्वान् राजा के पास आये। राजा ने उनसे कहा- यह स्वरूप तो जान लिया, परन्तु आप सत्य-सत्य कहो। तब उन विद्वानों ने सम्पूर्ण समाचार कह दिया। राजा ने विचार किया कि सब भाँति से मेरे भय से चारण का वेष बनाकर कालिदास मेरे ही नगर में विराजमान है। तब राजा ने सेनापतियों को आज्ञा दी- अहो! घोड़ों को दौड़ाओ। फिर बगीचे में चलने के लिये नगाड़ा बजा। राजा देवपूजन कर रहे हैं, फिर बाग में जायेंगे। ऐसे शब्द को सुनकर व्याकुल होकर सब लोग इकट्ठे होकर राजा के पीछे चलने को तैयार हो गये। तब राजा उन विद्वानों के साथ घोड़े पर चढ़कर रात्रि में जहाँ चारण मिला था वहाँ पहुचा। फिर राजा ने विचरते हुए चोरों के पदचिह्नों को पहचानने वालों के लिये बुलाया और उनसे बोला- इस मार्ग से रात्रि में जो गया है, उसके पदचिह्न अब भी दीखते हैं, उन्हें पहचानो। फिर राजा ने उन पण्डितों को एक-एक लाख रुपये देकर घर भेज दिया और स्वयम् भी अपने स्थान को चला आया। उन पदचिह्नों को पहचानने वालों ने चारों ओर घूम कर मूर्खों के समान पदचिह्नों को नहीं पहिचाना। जब थोड़ा दिन बचा तब टूटी जूती को दासी ने चमार के हाथ में दिया, यह देखकर उन खोज करने वालों ने टूटी जूती किसी बहाने से चमार के हाथ से ले ली और रेतीली भूमि पर जहाँ पदचिह्न पाये थे उसमें डालकर देखा, तो वह पदचिह्न इसी जूती का पाया और उस दासी को वेश्या के घर गयी जानकर वेश्या के घर की चारों ओर से रक्षा करते हुए फिर उन्होंने क्षणभर में इस पदचिह्न के जानने की बात राजा को पहुँचाई। तब राजा भोज नगरनिवासी और मन्त्रियों के साथ पैदल ही विलासवती (वेश्या) के स्थान पर आया। पश्चात् इस

वृत्तान्त को सुनकर कालिदास ने विलासवती से कहा– हे प्रिये! मेरे कारण तुझे कैसा कष्ट प्राप्त हुआ? उसे देखो। विलासवती बोली;– हे कविकुल गुरु! सुनिये–

उपस्थिते विप्लव एव पुंसां।
समस्तभावः परमीयतेऽतः।।
अवाति वायौ नहि तूलराशे–
र्गिरेश्च। कश्चित्प्रतिभाति भेदः।।१५४।।

पुरुषों को विपत्ति के समय सब भाव नजर आते हैं, जैसे विना पवन के चले रुई का ढेर और पर्वत एक सा दिखता है।।१५४।।

मित्रस्वजनबन्धूनां बुद्धेर्वित्तस्य चात्मनः।
आपन्निकषपाषाणो जनो जानाति सारताम्।।१५५।।

मित्र, स्वजन, बन्धु, बुद्धि, धन और अपने सार विपत्ति रूप कसौटी वाला पुरुष ही जानता है।।१५५।।

अप्रार्थितानि दुःखानि यथैवायान्ति देहिनः।
सुखानि च तथा मन्ये दैन्यमत्रातिरिच्यते।।१५६।।

शरीरधारियों को विना मांगे स्वयम् ही जैसे दुःख और सुख प्राप्त हो जाते हैं, सो मैं उनमें दीनता को ही विशेष समझती हूँ।।१५६।।

सुकवे! राज्ञा त्वयि मनाक् निराकृते वचसापि मया सहेदं दासीवृन्दं प्रदीप्तवह्नौ पतिष्यति। कालिदासः प्रिये! नैवं मन्तव्यं मां दृष्ट्वा विकासीकृतास्यो भोजः पादयोः पतिष्यतीति। ततो वेश्यागृहं प्रविश्य भोजः कालिदासं दृष्ट्वा ससम्भ्रममाश्लिष्य पादयोः पतति। स राजा पठति च–

हे सुकवे! यदि वाणी से राजा ने कुछ भी तुम्हारा निरादर किया, तो मैं दासीगणों के साथ प्रज्ज्वलित अग्नि में भस्म हो जाऊँगी। कालिदास ने कहा– हे प्रिये। यह मत समझना मुझे देखकर राजा हँसता हुआ चरणों पर गिर पड़ेगा। तत्पश्चात् वेश्या के घर में आकर राजा भोज कालिदास को देखकर चकित होकर चरणों में गिर पड़ा और कहने लगा;–

गच्छतस्तिष्ठतो वापि जाग्रतः स्वपतोऽपि वा।
मा भून्मनः कदाचिन्मे त्वया विरहितं कवे।।१५७।।

हे कवे! चलते, ठहरते, जागते और सोते हुए भी मेरा मन कभी आपसे दूर न हो।।१५७।।

कालिदासस्तच्छ्रुत्वा व्रीडावनताननस्तिष्ठति। राजा च कालिदाससमुखमुन्नमय्याह-

कालिदास इस बात को सुनकर नीचे को मुख करके खड़े हो गये। तब राजा ने मुख को सामने करके कहा-

कालिदास कलावास दासवच्चालितो यदि।
राजमार्गे व्रजन्नत्र परेषां तत्रका त्रपा ।।१५८।।

हे कलाओं के क्षेत्र कालिदास! आपने राजमार्ग से चलते हुए मुझे दास के समान बुला लिया, तो इसमें दूसरों की क्या लाज है? ।।१५८।।

धन्यां विलासिनीं मन्ये कालिदासो यदेतया।
निबद्धः स्वगुणैरेष शकुन्त इव पञ्जरे ।।१५९।।

मैं विलासिनी वेश्या को धन्य मानता हूँ, जिसने अपने गुणों से पींजरे में पक्षी की समान कालिदास को बांध रखा है।।१५९।।

राजा नेत्रयोः हर्षाश्रु मार्जयति कराभ्यां कालिदासस्य। ततः तत्प्राप्तिप्रसन्नो राजा ब्राह्मणेभ्यः प्रत्येकं लक्षं ददौ। निजतुरङ्गे च कालिदासमारोप्य सपरिवारः निजगृहं ययौ। कियत्यपि कालेऽतिक्रान्ते राजा कदाचित्सन्ध्यामालोक्य प्राह-

फिर राजा ने कालिदास के आनन्दाश्रु को अपने करकमलों से पोंछा और कालिदास के पाने से राजा ने प्रसन्न होकर प्रत्येक ब्राह्मण को एक-एक लाख रुपये दिये। फिर राजा भोज अपने घोड़े पर कालिदास को सवार करके दलबल के साथ अपने घर लाया। थोड़े दिन के उपरान्त राजा ने किसी दिन सन्ध्या को देखकर कहा;-

परिपतति पयोनिधौ पतङ्गः।

सूर्य समुद्र में पतित होता है।

ततो बाणः प्राह- सरसिरुहामुदरेषु मत्तभृङ्गः ।।

बाण कवि ने कहा- जैसे बगीचे में कमल के बीच भ्रमर पड़ता है।

ततो महेश्वरकविः- उपवनतरुकोटरा विहङ्गः।

महेश्वर कवि ने कहा- जैसे बगीचे में वृक्षों की खोह में पक्षी छिपता है।

ततः कालिदासः- युवतिजनेषु शनैः शनैरनङ्गः ।।१६०।।

कालिदास ने कहा- जैसे स्त्रियों के शरीर में धीरे-धीरे कामदेव प्रवेश करता है। यह सन्ध्या समय का वर्णन है।।१६०।।

तुष्टो राजा लक्षं लक्षं ददौ। चतुर्थचरणस्य लक्षद्वयं ददौ।

कदाचिद्राजा बहिरुद्यानमध्ये मार्गं प्रत्यागच्छन्तं कमपि विप्रं ददर्श। तस्य करे चर्ममयं कमण्डलुं वीक्ष्य तं चातिदरिद्रं ज्ञात्वा मुखश्रिया विराजमानं चावलोक्य तुरङ्गं तदग्रे निधायाह। विप्रः चर्मपात्रं किमर्थं पाणौ वहसीति। स च विप्रः नूनं मुखशोभया मृदूक्त्या च भोज इति विचार्याह। देव! वदान्यशिरोमणौ भोजे पृथ्वीं शासति लोह-ताम्राभावः समजनि तेन चर्ममयं पात्रं वहामीति। राजा भोजे शासति लोहताम्राभावे को हेतुः। तदा विप्रः पठति-

प्रसन्न होकर राजा ने बाण और महेश्वर कवि को एक-एक लाख रुपये दिये और कालिदास को दो लाख रुपये दिये। किसी समय राजा भोज बाहर बगीचे के मार्ग से जाता था, सब ने किसी ब्राह्मण को सामने से आते हुए देखा। उसके हाथ में चमड़े का कमण्डलु देख, उसे दीन जान, मुख पर तेज की छटा निहार उस ब्राह्मण के सम्मुख घोड़े को रोक कर कहा कि- हे ब्राह्मण! चमड़े का कमण्डलु क्यों हाथ में रखते हो? उस ब्राह्मण ने मुख की शोभा से और मधुर भाषण से जान लिया कि, यह राजा भोज है; तब बोला कि- हे देव! दानियों में शिरोमणि राजा भोज के होने पर लोहे और ताम्बे का अभाव हो गया, इसी कारण चमड़े का कमण्डलु रखता हूँ। राजा ने पूछा- राजा भोज के होने पर लोहे और ताम्बे का क्यों अभाव हो गया? तब उस ब्राह्मण ने कहा-

अस्य श्रीभोजराजस्य द्वयमेव सुदुर्लभम्।
शत्रूणां शृङ्खलैर्लोहं ताम्रं शासनपत्रकैः।।१६१।।

इस राजा भोज के राज्य में दो वस्तुएँ दुर्लभ हो गईं; एक तो शत्रुओं की बेड़ियों की अधिकता से लोहा और दान के पट्टा लिखने से ताम्बा।।१६१।।

ततस्तुष्टो राजा प्रत्यक्षरं लक्षं ददौ। कदाचिद्द्वारपालः प्राह। धारेन्द्र! दूरदेशादागतः कश्चिद्विदान् द्वारि तिष्ठति तत्पत्नी च तत्पुत्रः सपत्नीकः अतोऽतिपवित्रं विद्वत्कुटुम्बं द्वारि तिष्ठतीति। राजा अहो गरीयसी शारदाप्रसादपद्धतिः तस्मिन्नवसरे गजेन्द्रपाल आगत्य राजानं प्रणम्य प्राह। भोजेन्द्र! सिंहलदेशाधीश्वरेण सपादशतं गजेन्द्राः प्रेषिताः षोडश महामणयश्च। ततो बाणः प्राह-

पश्चात् प्रसन्न होकर राजा ने एक-एक अक्षर के एक-एक लाख रुपये दिये। किसी समय द्वारपाल ने कहा कि- हे धारानगरी के प्रभु! दूर देश से आकर कोई विद्वान् द्वार पर खड़ा है, साथ में उसकी स्त्री और पुत्र भी है। अतएव परम पवित्र विद्वान् का कुटुम्ब दरवाजे पर खड़ा है। (यह सुन कर) राजा ने कहा- अहा! सरस्वती

की कृपा अपार है। उसी समय गजेन्द्रपाल ने आकर राजा से प्रणाम करके कहा- हे भोजराज! सिंहल देश के राजा ने सवा सौ (१२५) हाथी भेजे हैं और सोलह महामणि भेजी हैं, तब बाणकवि ने कहा-

स्थितिः कवीनामिव कुञ्जराणां।
स्वमन्दिरे वा नृपमन्दिरे वा।।
गृहे गृहे किं मशका इवैते।
भवन्ति भूपालविभूतषिताङ्गाः।।१६२।।

हे राजन! कवियों की समान हाथियों की स्थिति अपने मन्दिर में व राजभवन में शोभा पाती है। फिर राजाओं से भूषित शरीर वाले कवि और हाथी क्यों मच्छरों की समान फिरते हैं?

ततो राजा गजावलोकनाय बहिरगात्। ततस्तद्विद्वत्कुटुम्बं वीक्ष्य चोलपण्डितो राज्ञः प्रियोऽहमिति गर्वं दधार। यन्मया राज-भवनमध्यं गम्यते। विद्वत्कुटुम्बं तु द्वारपालज्ञापितमपि बहिरास्ते। तदा राजा तच्चेतसि गर्वं विदित्वा चोलपण्डितं सौधाङ्गणान्निः-सारितवान्। काशीदेशवासी कोऽपि तण्डुलदेवनामा राज्ञे स्वस्ती-त्युक्त्वातिष्ठत्। राजा च तं पप्रच्छ। सुमते! कुत्र निवासः-

तत्पश्चात् राजा हाथियों को देखने के लिये बाहर आया। तब उस सकुटुम्ब विद्वान् को देखकर चोल पण्डित ने गर्व से कहा कि मैं राजमहल में जाने से राजा का प्रिय हूँ। अन्य विद्वान् तो द्वारपाल के बताये बाहर खड़े हैं। तब राजा ने चोल पण्डित के मन में गर्व जानकर उसको महल के आंगन से बाहर निकाल दिया। पश्चात् कोई काशी निवासी तण्डुलदेव नामक विद्वान् राजा से आकर 'स्वस्ति' कहकर बैठ गया, तब राजा ने उससे पूछा कि- हे सुमते! हे विद्वान्! आप कहां रहते हो?

वर्त्तते यत्र सा वाणी कृपाणी रिक्तशाखिनः।
श्रीमन्मालवभूपाल तत्र देशे वसाम्यहम्।।१६३।।

हे श्रीमन्! हे मालव देश के राजा! जहां रीते हाथ वाले मनुष्य के पास वाणी ही तलवार के समान रहती है, मैं वहीं (पूर्व देश में) रहता हूँ।।१६३।।

तुष्टो राज। तस्मै गजेन्द्रसप्तकं ददौ। ततः कोऽपि विद्वानागत्य प्राह।

प्रसन्न होकर राजा ने उस विद्वान् को सात हाथी दिये। पश्चात् किसी विद्वान् ने आकर कहा-

तपसः सम्पदः प्राप्यस्तत्तपोऽपि न विद्यते।
येन त्वं भोजकल्पद्रुर्दृग्गोचरमुपैष्यसि ।।१६४।।

जिस तप से सम्पत्ति प्राप्त होती है, उसको तप नहीं कहते, जिससे आप भोज रूपी कल्पवृक्ष हमें दृष्टिगोचर हो, उसे ही तप कहते हैं ।।१६४।।

तस्मै राजा दशगजेन्द्रान् ददौ। ततः कश्चिद्ब्राह्मणपुत्रो भूम्भारवं कुर्वाणोऽभ्येति। ततः सर्वे सम्भ्रान्ताः कथं भूम्भारवं करोषीति राज्ञा स्वदृग्गोचरमानीतः पृष्टः स प्राह–

राजा ने उसको दश हाथी दिये, फिर किसी ब्राह्मण कुमार ने 'भूंभा' शब्द किया (रोया) उसे सुनकर सभी चकित होकर बोले– यह 'भूंभा' शब्द क्यों करता है ? राजा ने अपने पास बुलाकर पूछा, तब बालक ने कहा–

देव ! त्वद्दानपाथोधौ दारिद्र्यस्य निमज्जतः।
न कोऽपि हि करालम्बं दत्ते मत्तेभदायक ।।१६५।।

हे देव ! मत्त हाथियों के दानी ! आपके दान रूपी सागर में डूबते हुए द्रारिद्र्य को कोई हाथ का सहारा नहीं देता है ।।१६५।।

ततस्तुष्टो राजा तस्मै त्रिंशत् गजेन्द्रान् प्रादात्। ततः प्रविशति पत्नीसहितः कोऽपि विलोचनो विद्वान् स्वस्तीत्युक्त्वा प्राह–

फिर राजा ने प्रसन्न होकर उसे तीस हाथी दिये। तत्पश्चात् स्त्री के साथ [1]किसी विलोचन नाम वाले विद्वान् ने 'स्वस्ति' कहकर कहा–

निजानपि गजान् भोजं ददानं प्रेक्ष्य पार्वती।
गजेन्द्रवदनं पुत्रं रक्षत्यद्य पुनः पुनः ।।१६६।।

अब पार्वतीजी राजा भोज को हाथियों के दान करते हुए देखकर अपने पुत्र हस्तिमुख वाले गणेशजी की बार–बार रक्षा करती हैं ।।१६६।।

ततो राजा सप्त गजान् तस्मै ददौ। ततो राजा विद्वत्कुटुम्बं तदैव पुरतःस्थितं वीक्ष्य ब्राह्मणं प्राह–

तब राजा ने उसे सात हाथी दिये। फिर राजा ने विद्वान् के कुटुम्ब को सम्मुख विद्यमान देख ब्राह्मण से समस्यापूर्त्ति को कहा–

क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे।

महत् पुरुषों की क्रिया सिद्धि शरीर में ही होती है, सामग्री में नहीं होती।

१– जो प्रथम द्वार पर खड़ा था, उसी को यहां विलोचन कहा है। अथवा प्रज्ञाचक्षु होने से विलोचन कहा है।

वृद्धद्विजः प्राह–

वृद्ध ब्राह्मण ने कहा–

घटो जन्मस्थानं मृगपरिजनो भूर्जवसनं।
वने वासः कन्दादिकमशनमेवंविधगुणः।।
अगस्त्यः पाथोधिं यदकृत करांभोजकुहरे।
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे।।१६७।।

घट ही जन्मस्थान है, मृग ही परिवार के मनुष्य हैं, भोजपत्र ही वस्त्र है, वन ही निवासस्थान है, कन्दमूल भोजन है, ऐसे गुणों से भूषित अगस्त्य मुनि ने समुद्र का आचमन कर लिया, इस कारण महान् परुषों की क्रिया सिद्धि शरीर में ही होती है, सामग्री में नहीं।।१६७।।

ततो राजा बहुमूल्यानपि षोडशमणीन् तस्मै ददौ। ततस्त–त्पत्नीं प्राह राजा अम्ब! त्वमपि पठ। देवी–

तब राजा ने कीमती मूल्य वाले सोलह मणि उसे दे दिये। फिर राजा उस ब्राह्मण की स्त्री से बोला कि– हे मातः! आप भी समस्या की पूर्त्ति करिये। ब्राह्मणी बोली–

रथस्यैकं चक्रं भुजगयमिताः सप्ततुरगा।
निरालम्बो मार्गश्चरणविकलः सारथिरपि।।
रविर्यात्येवान्तं प्रतिदिनमपारस्य नभसः।
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे।।१६८।।

सूर्य के रथ का पहिया तो एक, सर्पों से बँधे सात घोड़े, आकाश मार्ग और चरणहीन सारथि के होने पर भी प्रतिदिन सूर्य आकाश के पार हो जाता है, इस कारण महत् पुरुषों की क्रिया सिद्धि शरीर में होती है, सामग्री में नहीं।।१६८।।

राजा तुष्टः सप्तदश गजान् सप्त रथांश्च तस्यै ददौ। ततो विप्रपुत्र प्राह राजा विप्रसुत! त्वमपि पठ। विप्रसुतः–

तब राजा ने प्रसन्न होकर सत्रह (१७) हाथी और सात रथ उस ब्राह्मणी को दिये। पश्चात् राजा ने ब्राह्मण कुमार से कहा– हे विप्रसुत! तुम भी समस्या की पूर्त्ति करो। यह सुनकर ब्राह्मण कुमार ने कहा–

विजेतव्या लङ्का चरणतरणीयो जलनिधि–
र्विपक्षः पौलस्त्यो रणभुवि सहायाश्च कपयः।।
पदातिर्मर्त्योऽसौ सकलमवधीद्राक्षसकुलं।
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे।।१६९।।

लङ्का पुरी को जीतने वाले, सागर को चरणों से पार करने वाले, पुलत्स्य ऋषि का पुत्र महाबली रावण के विपक्ष में, वानरों की सहायता से, पैदल ही रामचन्द्रजी ने मनुष्य शरीर से समस्त राक्षसों के कुल का नाश कर दिया, इस कारण जान पड़ता है कि महत्पुरुषों की क्रिया सिद्धि शरीर में होती है, सामग्री में नहीं ।।१६९।।

तुष्टो राजा विप्रसुताय अष्टादश गजेन्द्रान् प्रादात्। ततः सुकुमारमनोज्ञनिखिलाङ्गावयवालङ्कृतां शृङ्गाररसोपजातमूर्तिमिव चम्पकलतामिव लावण्यगात्रयष्टिं विप्रस्नुषां वीक्ष्य नूनं भारत्याः कापि लीलाकृतिरियमिति चेतसि नमस्कृत्य राजा प्राह। मातरस्त्व-मप्याशिषं वद। विप्रस्नुषा- देव शृणु-

इस पर प्रसन्न होकर राजा ने ब्राह्मण कुमार के लिये अठारह(१८) हाथी दिये। पश्चात् सुकुमार, सुन्दरी, कोमलाङ्गी, शृङ्गार रस की मूर्ति की समान चम्पे की बेल की समान शोभामयी शरीर वाली ब्राह्मण की पुत्रवधू को देखकर राजा ने कहा निश्चय ही यह सरस्वती की लीलामयी आकृति है, ऐसा विचार कर प्रणाम करके राजा ने कहा- हे मातः! आप भी आशीर्वाद दीजिये। तब पण्डित की पुत्रवधू बोली- हे देव! सुनिये-

धनुः पौष्पं मौर्वी मधुकरमयी चञ्चलदृशां।
दृशां कोणो बाणः सुहृदपि जडात्मा हिमकरः।।
स्वयं चैकोऽनङ्ग सकलभुवनं व्याकुलयति।
क्रियासिद्धिः सत्त्वे भवति महतां नोपकरणे।।१७०।।

पुष्प रूपी धनुष को धारण करने वाला, भ्रमर रूपी प्रत्यञ्चा वाला, चञ्चल नेत्र वाली स्त्रियों के नेत्रकोण रूपी बाण वाला, जडात्मा चन्द्र के मित्र, अङ्गहीन अनङ्ग नाम वाला कामदेव समस्त भुवनों को व्याकुल कर देता है, इससे विदित होता है कि महत्पुरुषों की क्रिया सिद्धि शरीर में ही होती है, सामग्री में नहीं होती।।१७०।।

चमत्कृतो राजा लीलादेवीभूषणानि सर्वाण्यादाय तस्यै ददौ। अनर्घ्यांश्च सुवर्णमौक्तिकवैडूर्यप्रवालांश्च प्रददौ। ततः कदाचित्सी-मन्तनामा कविः प्राह-

चकित होकर राजा ने लीलादेवी (रानी) के सब आभूषणों को लेकर उस को दे दिया और भी बेशी कीमती सुवर्ण मोती, मणि एवम् मूँगे दिये। पश्चात् उसी समय सीमन्त नामक कवि ने कहा-

पन्थाः संसर दीर्घतां त्यज निजं तेजः कठोरं रवे।
श्रीमन्विन्ध्यगिरे प्रसीद सदयं सद्यः समीपे भव।।

इत्थं दूरपलायनश्रमवतीं दृष्ट्वा निजप्रेयसीं ।
श्रीमन्भोज तव द्विषः प्रतिदिनं जल्पन्ति मूर्च्छन्ति च ।।१७१।।

हे मार्ग! शीघ्र अपनी दूरी को छोड़कर आ जाओ। हे सूर्य! अपने प्रचण्ड तेज को त्याग दो। हे श्रीमन् विन्ध्याचल! दया करके प्रसन्न होकर शीघ्र ही समीप हो जाओ। इस भाँति दूर भागने से थकी हुई अपनी स्त्रियों को देखकर आपके शत्रु प्रतिदिन बकते हैं और मूर्छित होते हैं।।१७१।।

तस्मिन्नेव क्षणे कश्चित्सुवर्णकारः प्रान्तेषु पद्मरागमणिमण्डितं सुवर्णभाजनमादाय राज्ञः पुरो मुमोच। ततो राजा सीमन्तकविं प्राह। सुकवे! इदं भाजनं कामपि श्रियं दर्शयति। ततः कविराह–

उसी समय किसी सुनार ने आकर पुष्पराग मणि से जड़े हुए थाल को लाकर राजा को भेंट किया, तब राजा ने सीमन्त कवि से कहा– हे कवेः! यह पात्र कैसी विचित्र शोभा दे रहा है, उसे सुनकर कवि बोला–

धारेश! त्वत्प्रतापेन पराभूतस्त्विषाम्पतिः ।
सुवर्णपात्रव्याजेन देव त्वामेव सेवते ।।१७२।।

हे देव! हे धारेश! आपके प्रताप से सूर्यनारायण तिरस्कृत होकर सुवर्ण के पात्र के बहाने आपकी सेवा करना चाहते हैं।।१०२।।

ततस्तुष्टो राजा तदेव पात्रं मुक्ताफलैरापूर्य प्रादात्। कदाचिद्राजा मृगयारसेन पुरः पलायमानं वराहं दृष्ट्वा स्वयमेकाकी तदा दूरं वनान्तमासादितवान्। तत्र कञ्चन द्विजवरमवलोक्य प्राह। द्विज! कुत्र गन्तासि। द्विजः– धारानगरम्। भोजः– किमर्थम्। द्विजः– भोजं द्रष्टुं द्रविणेच्छया। स पण्डिताय दत्ते। अहमपि मूर्खं न याचे। भोजः– विप्र! तर्हि त्वं विद्वान्कविर्वा। द्विजः– महाभाग! कविरहम्। भोजः– तर्हि किमपि पठ। द्विजः– भोजं विना मत्पदसरणिं न कोऽपि जानाति। राजा– ममाप्यमरवाणीपरिज्ञान–मस्ति राजा च मयि स्निह्यति त्वद्गुणं च श्रावयिष्यामि। किमपि कलाकौशलं दर्शय। विप्रः– किं वर्णयामि। राजा– कलमानेता–न्वर्णय। विप्रः–

फिर प्रसन्न होकर राजा ने उस सुवर्ण के थाल को मोतियों से भरकर कवि को दे दिया। किसी समय राजा शिकार की इच्छा से भागते हुए सुअर को देखकर उसके

पीछे दूर तक वन में चला गया। वहां किसी उत्तम ब्राह्मण को देखकर कहा– हे विप्र! कहां जाते हो? ब्राह्मण बोला– धारनगरी को। राजा ने कहा– किसलिये? ब्राह्मण ने कहा– द्रव्य की अभिलाषा से भोज का दर्शन करने के लिये। राजा बोला– भोज तो पण्डितों को ही धन देता है। ब्राह्मण ने कहा– मैं भी मूर्ख से नहीं मांगता हूँ। राजा ने कहा– हे विप्र! तुम कवि हो वा विद्वान्। ब्राह्मण ने कहा– मैं कवि हूँ। भोज ने कहा– तब कुछ कहिये। ब्राह्मण बोला– भोज के सिवाय मेरे पदों की पङ्क्ति को कोई नहीं जान सकता। राजा ने कहा– मैं भी देववाणी को जानता हूँ और राजा भोज भी मुझ पर स्नेह रखता है। आपकी गुणावली को मैं राजा को सुनाऊंगा, कुछ विद्या की चतुरता दिखाइये। ब्राह्मण ने कहा– क्या वर्णन करूं? राजा बोला– इन कलमों को अर्थात् खेत में स्थित धान्य विशेष का वर्णन कीजिये। (तब) ब्राह्मण ने कहा–

कलमाः पाकविनम्रा मूलतलाप्राणसुरभिकह्लाराः।
पवनाकम्पितशिरसः प्रायः कुर्वंति परिमलश्लाघाम्।।१७३।।

हे राजन्! इन चावलों की जड़ में प्राण रहित कमल की गन्ध है और सरलता से पक जाते हैं। पवन के वेग से हिलने के कारण शिर को हिलाते हुए यह धान्य कमल के गन्ध की प्रशंसा करते हैं।।१७३।।

राजा तस्मै सर्वाभरणान्युत्तार्य ददौ। ततः कदाचित्कुम्भ-कारवधूः राजगृहमेत्य द्वारपालं प्राह। द्वारपाल! राजा द्रष्टव्यः। स आह किं ते राज्ञा कार्यम्। सा चाह। न तेऽभिधास्यामि नृपाय एव कथयामि। स सभामागत्य प्राह। देव! कुभ्भकारप्रिया काचिद्राज्ञो दर्शनाकांक्षिणी न वक्ति मत्पुरः कार्यं त्वत्पुरतः कथयिष्यति। राजा प्राह प्रवेशय। सा चागत्य नमस्कृत्य वक्ति–

राजा ने उसके लिये सब आभूषण उतार दिये। फिर किसी समय किसी कुम्हारी ने आकर राजभवन में द्वारपाल से कहा– हे द्वारपाल! मुझे राजा का दर्शन कराओ। द्वारपाल बोला– तेरा राजा से क्या काम है? कुमारी ने उत्तर दिया– तुझसे नहीं कहूँगी। तब द्वारपाल ने सभा में जाकर कहा– हे देव! कोई कुमारी आपके दर्शनों की लालसा करती है और मुझसे कार्य को नहीं कहती है। हे राजन! आपके सम्मुख ही कहना चाहती है। राजा ने कहा– ले आओ। कुमारी ने आकर प्रणाम करके कहा,–

देव! मृत्खननाद्दृष्टं निधानं वल्लभेन मे।
स पश्यन्नेव तत्रास्ते त्वां ज्ञापयितुमभ्यगाम्।।१७४।।

हे देव! मिट्टी खोदते हुए मेरे स्वामी को खजाना मिला है, सो वे वही खड़े उसे स्थित होकर देख रहे हैं, इतने में मैं आपसे निवेदन करने आई हूँ।।१७४।।

राजा च चमत्कृतो निधानकलशमानयामास। तद्द्वारमुत्पाट्य यावत्पश्यति राजा तावत्तदन्तर्वर्ति द्रव्यं मणिप्रभामण्डलमालोक्य कुम्भकारं पृच्छति। किमेत्कुम्भकार। स चाह–

राजा ने चकित होकर उस धन के कलश को मंगाया। जब उसको उघाड़ कर देखा, तो उसके भीतर मणियों की कान्ति से युक्त द्रव्य नजर आया, उसे देख कर कुम्हार से पूछा– हे कुम्भकार! यह क्या है? कुम्हार ने कहा–

राजचन्द्रं समालोक्य त्वां तु भूतलमागतम्।
रत्नश्रेणिमिषान्मन्ये नक्षत्राण्यभ्युपागमन्॥१७५॥

हे राजन! मैं तो यह समझता हूँ, राजा भोज रूपी चन्द्रमा को पृथ्वी पर आया हुआ देखकर यह नक्षत्रों की पंक्ति रत्नों के रूप में आकर आपको प्राप्त हुई है॥१७५॥

राजा कुम्भकारमुखात् श्लोकं लोकोत्तरमाकर्ण्य चमत्कृतः तस्मै सर्वं ददौ। ततः कदाचिद्राजा रात्रावेकाकी सर्वतो नगरचेष्टितं पश्यन् पौरगिरमाकर्णयन् चचार। तदा क्वचिद्वैश्यगृहे वैश्यः स्वप्रियां प्राह प्रिये! राजा स्वल्पदानरतोऽपि उज्जयनीनगराधिपतेर्विक्रमार्कस्य दानप्रतिष्ठां कांक्षते सा किं भोजेन प्राप्यते। कैश्चित्तन्त्रपरायणैर्मयूरादिकविभिर्महिमानं प्रापितो भोजः। परन्तु भोजो भोज एव। प्रिये शृणु–

राजा ने कुम्हार के मुख से उत्तम श्लोक सुनकर उसी को समस्त धन दे दिया। फिर एक समय राजा अकेला रात्रि में नगर के चारों ओर घूमता हुआ नगरवासियों की वाणी सुनकर विचारने लगा। उसी समय किसी बनिया ने अपनी स्त्री से कहा– हे प्रिये! राजा भोज थोड़े दान करने से उज्जैन नगरी के स्वामी विक्रमादित्य के समान यश को चाहता है, सो क्या भोज को मिल सकता है? मयूरादि कितने ही कवियों ने तन्त्र के द्वारा भोज की महिमा प्रकट की है, लेकिन भोज तो भोज ही है। हे प्रिये! सुनो–

आबद्धकृत्रिमसटाजटिलांसभित्तिरारोपितो यदि पदं मृगवैरिणः श्वा। मत्तेभकुम्भतटपाटनलम्पटस्य नादं करिष्यति कथं हरिणाधिपस्य॥१७६॥

यदि कोई कुत्ते पर सिंह की समान बालों को लपेट कर सिंह के स्थान पर कुत्ते को बांध दे, तो क्या वह कुत्ता मत्त हाथी के मस्तक को फाड़ने वाले सिंह के समान शब्द कर सकता है?॥१७६॥

राजा श्रुत्वा विचारितवान्। असौ सत्यमेव वदति। ततः पुनःपुनर्वदन्तं शृणोति–

राजा यह सुनकर विचारने लगा कि यह सत्य कहता है। फिर बारम्बार कहे को सुनता रहा।

आपन्न एव पात्रं देहीत्युच्चारणं न वैदुष्यम्।
उपपन्नमेव देयं त्यागस्ते विक्रमार्क किमु वर्ण्यः ।।१७७।।

हे विक्रमादित्य! आपके दान का क्या वर्णन करूं? कारण यदि किसी दीन विपत्ति युक्त पुरुष ने आपसे पात्र मांगा तो, उसमें आपको बड़ा दुःख होता है और उसे भरपूर धन देते हैं, जिससे उसे अधिक विपत्ति न रहे ।।१७७।।

विक्रमार्क त्वया दत्तं श्रीमन् ग्रामशताष्टकम्।
अर्थिने द्विजपुत्राय भोजे त्वन्महिमा कुतः ।।१७८।।

हे विक्रमादित्य राजन्! आपने धन के निमित्त आये हुए ब्राह्मणकुमार के लिये १०७ ग्राम दे दिये, अतएव भोज में तुम्हारी महिमा कहां से आ सकती है? ।।१७८।।

प्राप्नोति कुम्भकारोऽपि महिमानं प्रजापतेः।
यदि भोजोऽप्यवाप्नोति प्रतिष्ठां तव विक्रम ।।१७९।।

यदि कुम्हार मिट्टी के बर्त्तन आदि के बनाने से ब्रह्माजी के पद को प्राप्त हो जाय तो हे विक्रमादित्य! भोज भी आपकी पदवी को प्राप्त हो जायगा ।।१७९।।

राजा लोके सर्वोऽपि जनः स्वगृहे निःशङ्कं सत्यं वदति। मया वा अन्येन वा सर्वथा विक्रमार्कप्रतिष्ठा न शक्या प्राप्तुम्। ततः कदाचित्कश्चित्कविः राजद्वारं समागत्याह राजा द्रष्टव्य इति। ततः प्रवेशितो राजानं स्वस्तीत्युक्त्वा तदाज्ञयोपविष्टः पठति–

राजा ने कहा– संसार में सब मनुष्य अपने घर में निडर होकर सत्य कहते हैं। मैं अथवा कोई भी विक्रमादित्य की प्रतिष्ठा को नहीं प्राप्त कर सकता। फिर कुछ काल के उपरान्त किसी कवि ने राजद्वार पर आकर कहा कि– राजा के दर्शन की लालसा है। तब कविराज सभा में जाकर राजा को 'स्वस्ति' कहकर राजा की आज्ञा से बैठ गया और यह पढ़ने लगा–

कविषु वादिषु भोगिषु देहिषु द्रविणवस्तु सतामुपकारिषु।
धनिषु धन्विषु धर्मधनेष्वपि क्षितितले न हि भोजसमो नृपः ।।१८०।।

कवियों मे, वादियों में, भोगियों में, शरीर धारियों में, सत्पुरुषों का उपकार करने वालों में, धनियों में और धर्मात्माओं में इस पृथ्वी पर राजा भोज के समान दूसरा नहीं है ।।१८०।।

राजा तस्मै लक्षं प्रादात्। ततः कदाचिद्राजा क्रीडोद्यानं प्रस्थितो मध्येमार्गं काममपि मलिनांशुकं वसानां तीक्ष्णकरतपन-करविदग्धमुखारविन्दां सुलोचनां लोचनाभ्यामालोक्य पप्रच्छ ।।

राजा ने उस कवि को एक लाख रुपये दिये। फिर किसी समय राजा भोज बगीचे में जा रहा था, तब मार्ग में मैले वस्त्र पहने, प्रचण्ड सूर्य की किरणों से मुखमण्डल पर पसीने की बूंदो वाली सुन्दर नेत्रों वाली किसी स्त्री को देखकर राजा ने पूछा-

'का त्वं पुत्रि।' सा च तं श्रीभोजभूपालं मुखश्रिया विदित्वा तुष्टा प्राह- 'नरेन्द्र लुब्धकवधूः' हर्षसम्भृतो राजा तस्या पटुबन्धानु-बन्धेनाह- 'हस्ते किमेतत्।' सा चाह- 'पलम्।' राजाह- 'क्षामं किं।' सा चाह- सहजं ब्रवीमि नृपते यद्यादराच्छ्रूयते। गायन्ति त्वदरिप्रियाश्रुतटिनीतीरेषु सिद्धाङ्गनाः। गीतं गानतृणं चरन्ति हरिणा-स्तेनामिषं दुर्लभम् ।।१८१।।

हे पुत्रि! तुम कौन हो? उसने मुख की कान्ति से राजा भोज जानकर प्रसन्न होकर कहा- हे नरेन्द्र! मैं पारिधी की स्त्री हूँ। उसके मुख से ऐसा सुनकर प्रसन्न होकर राजा ने कहा- हाथ में क्या है? वह बोली- मांस है। राजा ने पूछा- थोड़ा क्यों है? उसने कहा- हे राजन! यदि सादर सुनते हो तो सत्य कहती हूँ। आपके शत्रुओं की स्त्रियों के आँसुओं की नदी के किनारे सिद्धाङ्गना गान करती है, वहीं पर गान रूपी तृण को हिरण चरते हैं, अतएव मांस दुर्लभ हो गया है। (अर्थात् भूखे मृगों का मांस सूख गया है।) ।।१८१।।

राजा तस्यै प्रत्यक्षरं लक्षं प्रदात्। सर्वाभरणान्युत्तार्य तं च तुरङ्गं ददौ। ततो गृहमागत्य गवाक्षे उपविष्टः। तत्र चासीनं भोजं दृष्ट्वा राजवर्त्मनिस्थित्वा कश्चिदाह। देव सकलमहीपाल! आकर्णय ।।

राजा ने उसके प्रत्येक अक्षर पर लाख-लाख रुपये दिये और अपने सब आभूषणों को उतार कर घोड़ा सहित उसे दे दिये। फिर घर में आकर झरोखों में बैठ गया। वहां विराजमान भोज को देखकर किसी पुरुष ने राजमार्ग में खड़े होकर कहा- हे देव! हे सकल महीपाल! सुनिये-

इतश्चेतश्चाद्भिर्विघटिततटः सेतुरुदरे।
धरित्री दुर्लंघ्या बहुलहिमपङ्को गिरिरयम् ।।
इदानीं निवृत्ते करितुरगनीराजनविधौ।
न जाने यातारस्तव च रिपवः केन च पथा ।।१८२।।

हे राजन्! आपकी सेना के हाथी-घोड़ों को जल पिलाने, नहलाने और सर्वत्र सेना की सजावट से आपके शत्रु किस मार्ग से जायेंगे, सो नहीं जान पड़ता, क्योंकि; पुलों के किनारे वा बीच में बहुत भीड़ होने से पृथ्वी दुर्लंघनीय है और हिमालय पर्वत पर बहुत बर्फ पड़ते है ।।१८२।।

तुष्टो भोजो वर्त्मनि स्थितायैव तस्मै वंश्यान् पञ्च गजान् ददौ। कदाचिद्राजा मृगयारसपराधीनो हयमारुह्य प्रतस्थे।।

यह सुनकर प्रसन्न होकर राजा ने मार्ग में स्थित ब्राह्मण को पांच हाथी दिये। किसी समय राजा शिकार खेलने की इच्छा से घोड़े पर सवार होकर चला।

ततो नदीं समुत्तीर्णं शिरस्यारोपितेंधनम्।
वेषेण ब्राह्मणं ज्ञात्वा राजा प्रपच्छ सत्वरम्।।१८३।।

तब शिर पर लकड़ियों के गट्ठे को धरे नदी में तैरते हुए भेष से ब्राह्मण जान कर राजा ने पूछा-

कियन्मानं जलं विप्र।

हे विप्र! कितना जल है?

स आह- जानुदघ्नं नराधिप।
सचमत्कृतो राजाह- ईदृशी किमवस्था ते।
स आह- न हि सर्वे भवादृशाः।।१८४।।

ब्राह्मण ने कहा- हे राजन्! घुटनों तक। राजा ने चमत्कृत होकर कहा- विद्वान् होने पर भी तुम्हारी यह दशा क्यों है? ब्राह्मण ने कहा- सब आपके समान गुणग्राही नहीं होते हैं।।१८४।।

राजा प्राह कुतूहलात्। विद्वन्: याचस्व कोशाधिकारिणं, लक्षं दास्यति मद्वचसा। ततो विद्वान् काष्ठं भूमौ निक्षिप्य कोशाधिकारिणं गत्वा प्राह। महाराजेन प्रेषितोऽहं लक्षं मे दीयताम्। ततः स हसन् आह। विप्र भवन्मूर्तिः लक्षं नार्हति। ततो विषादी स राजानमेत्याह। स पुनर्हसति देव नार्पयति। राजा कुतूहलादाह। लक्षद्वयं प्रार्थय दास्यति। पुनरागत्य विप्रो लक्षद्वयं देयमिति राज्ञोक्तमित्याह। पुनर्हसति। पुनरपि भोजं प्राप्याह। स पापिष्ठो मां हसति नार्पयति। ततः कौतूहली लीलानिधिर्महीं शासत् श्रीभोजराजः प्राह। विप्र लक्षत्रयं याचस्व अवश्यं स दास्यति। पुनरेत्य प्राह। राजा मे लक्षत्रयं दापयति।

स पुनर्हसति। ततः क्रुद्धो विप्रः पुनरेत्याह देव स नापयत्येव।।

राजा ने सहर्ष कहा कि- हे विप्र! खजांची के पास जाकर मेरे हुक्म से एक लाख रुपये ले लो। तब ब्राह्मण ने शिर के बोझे को पृथ्वी पर डालकर खजांची के पास जाकर कहा- मुझे महाराज ने भेजा है, एक लाख रुपये दे दो। तब खजांची ने हंसकर कहा- हे ब्राह्मण! तुम्हारी तो सूरत लाख रुपये के योग्य नहीं है। फिर खिन्न मन होकर ब्राह्मण ने राजा के पास जाकर कहा- हे राजन्! उस खजांची ने रुपये न देकर मेरा उपहास किया। तब राजा ने सहर्ष कहा- अच्छा दो लाख मांगो, दे देगा। ब्राह्मण ने खजांनची के पास जाकर कहा- अब राजा ने दो लाख रुपये देने को कहा है, सो दीजिये। खजांची फिर हँसा, तब फिर भोज के पास जाकर ब्राह्मण ने कहा कि- हे महाराज! वह पापी खजांनची हंसता है और मुझे रुपये नहीं देता है। फिर आनन्द से क्रीड़ा के क्षत्र स्वरूप पृथ्वी के शिक्षक राजा भोज ने कहा- हे विप्र! अब जाकर तीन लाख रुपये मांगो, वह अवश्य दे देगा। तब ब्राह्मण ने खजांची से आकर कहा- मुझे तीन लाख रुपये हो, ऐसा राजा ने कहा है। यह सुनकर खजांनची फिर हँस दिया, तब क्रोधित होकर ब्राह्मण ने राजा से आकर कहा- हे देव! वह तो देता ही नहीं।

राजन्कनकधाराभिस्त्वयि सर्वत्र वर्षति।
अभाग्यच्छत्रसंछन्ने मयि नायान्ति बिन्दवः।।१८५।।

हे राजन्! आपकी सुवर्ण धारा सभी स्थानों में वर्ष रही है, परन्तु अभाग्य रूपी छत्र से ढंके होने से मेरे ऊपर बूँद भी नहीं पड़ती है।।१८५।।

त्वयि वर्षति पर्जन्ये सर्वे पल्लविता द्रुमाः।
अस्माकमर्कवृक्षाणां पूर्वपत्रेषु संक्षयः।।१८६।।

हे राजन्! मेघ रूपी आपके बरसने से सम्पूर्ण वृक्षों पर पत्ते आ गये और हम सरीखे आक वृक्षों के तो पहले पत्ते भी नष्ट हो गये।।१८६।।

एकमस्य परमेकमुद्यमं निस्त्रपत्वमपरस्य वस्तुनः।
नित्यमुष्णमहसा निरस्यते नित्यमन्धतमसं प्रधावति।।१८७।।

लज्जा न करना ही केवल एक मात्र जीव का उपाय है, क्योंकि प्रतिदिन दिन के प्रकाश रूपी उष्णता से अन्धकार भाग जाता है, उसमें किसी को लज्जा नहीं आती है।।१८७।।

ततो राजा प्राह-

फिर राजा ने कहा-

क्रोधं मा कुरु मद्वाक्याद्गत्वा कोशाधिकारिणम् ।
लक्षत्रयं गजेन्द्राश्च दश ग्राह्यास्त्वया द्विज ।।१८८।।

हे ब्राह्मण! क्रोध मत करो और मेरी आज्ञा से खजांची के पास जाओ, एवम् तीन लाख रुपये और दश हाथी ले लो ।।१८८।।

ततः स्वाङ्गरक्षकं प्रेषयति। ततः कोशाधिकारी धर्मपत्रे लिखति।

बाद में राजा ने अपने सेवक को भेजकर दिला दिया। तब खजांची ने धर्म पत्र पर लिखा-

लक्षं लक्षं पुनर्लक्षं मत्ताश्च दश दन्तिनः ।
दत्ताः श्रीभोजराजेन जानुदघ्नप्रभाषिणे ।।१८९।।

लाख, लाख और फिर लाख इस भाँति तीन बार की आज्ञा से तीन लाख रुपये और दश हाथी श्रीराजा भोज ने घुटने तक जल कहने वाले विद्वान् को दिये ।।१८९।।

ततः सिंहासनमलङ्कुर्वाणे श्रीभोजनृपतौ द्वारपाल आगत्य प्राह। राजन्! कोऽपि शुकदेवनामा कविर्द्वारि वर्तते। राजा बाणं प्राह। पण्डितवर सुकवे! तत्त्वं विजानासि। बाणः- देव! शुकदेवपरिज्ञानसामर्थ्याभिज्ञः कालिदास एव नान्यः। राजाह सुकवे सखे कालिदास! किं एव विजानासि शुकदेवकविम्। आह कालिदासः- देव!

तत्पश्चात् सिंहासन पर विराजमान राजा भोज से आकर द्वारपाल ने कहा- हे राजन्! कोई शुकदेव नामक कवि द्वार पर खड़े हैं। राजा ने बाणकंवि से कहा- हे सुकवे! आप शुकदेव कवि को जानते हो? बाण ने कहा- हे देव! शुकदेव कवि को जानने की सामर्थ्य कालिदास के सिवाय दूसरे में नहीं है। राजा ने कहा कि- हे सुकवे! हे सखे कालिदास! तुम शुकदेव कवि को जानते हो? कालिदास ने कहा- हे देव!

सुकविद्वितयं जाने निखिलेऽपि महीतले ।
भवभूतिः शुकश्चायं वाल्मीकिस्त्रितयोऽनयोः ।।१९०।।

समस्त पृथ्वी तल पर केवल दो श्रेष्ठ कवियों को जानता हूँ, एक भवभूति और दूसरे शुकदेव को, एवम् इन दोनों के बीच में तीसरे वाल्मीकि को ।।१९०।।

ततो विद्वद्वृन्दवन्दिता सीता प्राह-

फिर विद्वानों से वन्दित हुई सीता बोली–

अपृष्टस्तु नरः किञ्चिद्यो ब्रूते राजसंसदि।
न केवलमसम्मानं लभते च विडम्बनाम् ।।१९१।।

राजसभा में विना पूछे जो मनुष्य कुछ कहता है, वह असत्कार को ही नहीं पाता, बरन् दुःख को भी पाता है ।।१९१।।

देव तथाप्युच्यते–

हे देव! तो भी मैं कहती हूँ।

का सभा किं कविज्ञानं रसिकाः कवयश्च के।
भोज किं नाम दानं शुकस्तुष्यति येन सः ।।१९२।।

हे राजा भोज! क्या आपकी सभा है, क्या कवि का ज्ञान है, क्या रसिक कवि है और क्या आपका दान है? जिससे शुककवि प्रसन्न हों ।।१९२।।

तथापि भवनद्वारमागतः शुकदेवः सभायामानेतव्य एव। तदा राजा विचारयति। शुकदेवसामर्थ्यं श्रुत्वा हर्षविषादयोः पात्रमासीत्। महाकविरवलोकित इति हर्षः। अस्मै सत्कविकोटिमुकुटमणये किं नाम देयमिति च विषादः। भवतु द्वारपाल! प्रवेशय। तत आयान्तं शुकदेवं दृष्ट्वा राजा सिंहासनादुदतिष्ठत। सर्वे पण्डितास्तं शुकदेवं प्रणम्य सविनयमुपवेशयन्ति। स च राजानं सिंहासन उपवेश्य स्वयं तदाज्ञयोपविष्टः। तत शुकदेवः प्राह। देव धारानाथ! श्रीविक्रमनरेन्द्रस्य या दानलक्ष्मीः सा त्वामेव सेवते। देव! मालवेन्द्रएव धन्यो नान्ये भूभुजः। यस्य ते कालिदासादयो महाकवयः सूत्रनद्धाः पक्षिण इव निवसन्ति। ततः पठति–

तथापि द्वार पर आये शुकदेव कवि को सभा में बुलाना चाहिये। तब राजा सोचने लगा, शुकदेव कवि की शक्ति को सुनकर राजा को हर्ष और क्लेश दोनों हुए। महाकवि के दर्शन होंगे, इससे तो आनन्द हुआ और श्रेष्ठ कवि कोटियों में मुकुटमणि रूप कवि को क्या देना चाहिये? इससे विषाद हुआ। फिर राजा ने कहा– कुछ चिन्ता नहीं, हे द्वारपाल! तुम कवि को बुला लाओ। फिर शुकदेव कवि के आने पर राजा सिंहासन से उठे। साथ ही समस्त पण्डित मण्डली शुकदेव कवि को प्रणाम करके विनय के साथ बैठ गये। शुकदेव कवि ने राजा को सिंहासन पर बिठाया और स्वयम् भी राजा की आज्ञा से बैठ गयी। फिर शुकदेवजी बोले– हे देव धारापति! राजा

विक्रमादित्य की दानलक्ष्मी आपकी ही सेवा करती है। हे देव मालवेन्द्र!आप धन्य हो, जो आपके पास कालिदास आदि महाकविगण सूत्र से बन्धे पक्षियों के समान वास करते हैं। फिर श्लोक पढ़ा-

प्रतापभीत्या भोजस्य तपनो मित्रतामगात्।
और्वो वाडवतां धत्ते तडित क्षणिकतां गता ।।१९३।।

भोज के प्रताप के डर से सूर्य मित्रता को प्राप्त हुआ, समुद्र की अग्नि वाडवता को प्राप्त हुई और बिजली क्षणिकता को प्राप्त हो गई ।।१९३।।

राजा- तिष्ठ सुकवे नापरः श्लोकः पठनीयः।

राजा ने कहा- हे सुकवे! ठहरो और अभी दूसरा श्लोक न पढ़ना।

सुवर्णकलशं प्रादाद्दिव्यमाणिक्यसम्भृतम्।
भोजः शुकाय सन्तुष्टो दन्तिनश्च चतुःशतम् ।।१९४।।

राजा भोज ने प्रसन्नता से शुकदेव कवि को सुन्दर मणियों से भर कर कलश दिया और चार सौ हाथी दिये ।।१९४।।

इति पुण्यपत्रे लिखित्वा सर्वं दत्त्वा कोशाधिकारी शुकं प्रस्थापयामास। राजा स्वदेशं प्रति गतं शुकं ज्ञात्वा तुतोष। सा च परिषत् सन्तुष्टा। अन्यदा वर्षाकाले वासुदेवो नाम कविः कश्चि-दागत्य राजानं दृष्टवान्। राजा सुकवे पर्जन्यं पठ। ततः कविराह-

यह पुण्यपत्र में लिखकर राजा का दिया हुआ समस्त धनादि खजांची ने शुकदेव कवि को दे कर बिदा किया। शुकदेव कवि अपने देश को गये, यह जानकर राजा प्रसन्न हुआ। फिर वर्षा ऋतु में किसी वासुदेव नामक कवि ने आकर राजा का दर्शन किया। राजा ने कहा- हे सुकवे! मेघ का वर्णन करो! तब कवि ने कहा-

नो चिन्तामणिभिर्न कल्पतरुभिर्नो कामधेन्वादिभि-
र्नो देवैश्च परोपकारनिरतैः स्थूलैर्न सूक्ष्मैरपि ।।
अम्भोदेन निरन्तरं जलभरैस्तामुर्वरां सिञ्चता।
धौरेयेण धुरं त्वयाद्य वहता मन्ये जगज्जीवति ।।१९५।।

चिन्तामणि, कल्पतरु, कामधेनु, देवता, परोपकारी और स्थूल-सूक्ष्म कोई भी चीज नहीं है, परन्तु निरन्तर जलपूर्ण पृथ्वी को सींचने वाले, भार से मन्द-मन्द चलने वाले मेघ के द्वारा ही मैं मानता हूँ, जगत् जीता है ।।१९५।।

राजा लक्षं ददौ। कदाचिद्राजानं निरन्तरं ददानमालोक्य

मुख्यामात्यो वक्तुमशक्तो राज्ञः शयनभवनभित्तौ व्यक्तान्यक्षराणि लिखितवान् ।।

राजा ने यह सुनकर लाख रुपये दिये। किसी समय राजा को निरन्तर दान करते देखकर प्रधान मन्त्री ने राजा के सोने के स्थान की भीत पर स्पष्ट अक्षरों में कहने में असमर्थ ऐसा पद लिखा–

आपदर्थं धनं रक्षेत्,

विपत्ति के लिये धन की रक्षा करनी चाहिये।

राजा शयनादुत्थितो गच्छन् भित्तौ तान्यक्षराणि वीक्ष्य स्वयं द्वितीयचरणं लिलेख–

राजा ने जागकर चलते समय दीवाल पर लिखे उन अक्षरां को देखकर स्वयम् दूसरे पद को लिख दिया–

श्रीमतामापदः कुतः।

श्रीमानों को कैसी विपत्ति ?

अपरेद्युरमात्यो द्वितीयं लिखितं दृष्ट्वा स्वयं तृतीयं लिलेख।

दूसरे दिन मन्त्री ने दूसरा पाद लिखा हुआ देखकर तीसरा पद लिखा–

सा चेदपगता लक्ष्मीः,

यह लक्ष्मी चली जायेगी तो ?

परेद्यू राजा चतुर्थं लिखति–

अगले दिन राजा ने चौथा चरण (पद)लिख दिया।

सञ्चितार्थो विनश्यति ।।१९६।।

सञ्चित धन भी नष्ट हो जाता है ।।१९६।।

ततो मुख्यामात्यो राज्ञः पादयो पतति। देव क्षन्तव्योऽयं ममापराधः। अन्यदा धाराधीश्वरमुपरि सौधभूमौ शयानं मत्वा कश्चिद्द्विजचोरः कातपातपूर्वं राज्ञः कोशगृहं प्रविश्य बहूनि विविधरत्नानि वैडूर्यादिनि हृत्वा तानि तानि परलोकऋणानि मत्वा तत्रैव वैराग्यमापन्नो विचारयामास ।।

फिर प्रधान मन्त्री राजा के चरणों में गिर पड़ा और बोला– हे देव! मेरा अपराध क्षमा करें। एक समय राजा भोज अपने महल की छत पर सो रहे थे, इस अवसर को

जान कर कोई चोर ब्राह्मण सुरंग लगाकर राजा के खजाने में आया और अनेक भाँति के वैडूर्यादि रत्न चुराये। फिर उन सबको परलोक का ऋण मान कर वहीं वैराग्य को प्राप्त होकर विचारने लगा।

यद्व्यङ्गाः कुष्ठिनश्चान्धाः पङ्गवश्च दरिद्रिणः।
पूर्वोपार्जित पापस्य फलमश्नन्ति देहिनः ॥१९७॥

पूर्वजन्म के पापों से मनुष्य अंगभंग, कुष्ठी, अन्धा, लूला और दरिद्री होता है ॥१९७॥

ततो राजा निद्राक्षये दिव्यशयनस्थितो विविधमणिकङ्कणा-लंकृतं दयितवर्गं दर्शनीयमालोक्य गजतुरगरथपदातिसामग्रीं च चिन्तयन् राज्यसुखसन्तुष्टः प्रमोदभरादाह ॥

फिर राजा जब सो कर उठे, तब सुन्दर शैय्या पर स्थित अनेक भाँति की मणि और कङ्कणों से भूषित रानियों को देखकर; हाथी, घोड़े, रथ, पैदलों को देखकर विचारने लगे और प्रसन्न होकर हर्ष के साथ बोले-

चेतोहरा युवतयः सुहृदोऽनुकूलाः सद्बान्धवाः प्रणयगर्भगिरश्च भृत्याः। वल्गन्ति दन्तिनिवहास्तरलास्तुरङ्गाः।

मनोहारिणी मेरी स्त्रियां हैं, अनुकूल मित्र हैं, मृदु बोलने वाले सेवक हैं, हाथी शब्द करते हैं और घोड़े चञ्चल हैं।

इति चरणत्रयं राज्ञोक्तम्। चतुर्थचरणः राज्ञो मुखान्न निःसरति तदा चोरेण श्रुत्वा पूरितम् ॥

यह तीन पाद-राजा ने कहे, चौथा पाद राजा के मुख से नहीं निकला, तब चोर ने सुनकर पूर्ण कर दिया कि-

सम्मीलने नयनयो नहि किञ्चिदस्ति ॥१९८॥

नेत्र मिंचने पर (अर्थात् मरने पर) कुछ भी नहीं है ॥१९८॥

ततो ग्रथितग्रन्थो राजा चोरं वीक्ष्य तस्मै वीरवलयमदात्। ततस्तस्करो वीरवलयमादाय ब्राह्मणगृहं गत्वा शयानं ब्राह्मण-मुत्थाप्य तस्मै दत्त्वा प्राह। विप्र! एतद्राज्ञः पाणिवलयं बहुमूल्य-मल्पमूल्येन न विक्रेयम्। ततो ब्राह्मणः पण्यवीथ्यां तद्विक्रिय दिव्याभषूणानि पट्टदुकूलानि च जग्राह। ततो राजकीयाः केचन एनं चोरं मन्यमाना राज्ञो निवेदयन्ति। ततो राजनिकटे नीतः। राजा

पृच्छति विप्र! धार्यं पटमपि नास्ति अद्य प्रातरेव दिव्यकुण्डला- भरणपट्टदुकूलानि कुतः। विप्रः प्राह-

फिर श्लोक की पूर्ति को जानकर और चोर को देखकर उसे वीरकङ्कण दे दिये। फिर वह चोर वीरकङ्कण लेकर ब्राह्मण के घर गया और सोते हुए ब्राह्मण को जगा र कङ्कण देकर बोला- हे विप्र! यह राजा का कङ्कण बड़े मूल्य का है, इसे थोड़े मूल्य में नहीं बेचना। पश्चात् ब्राह्मण ने उसे बाजार में बजाकर सुन्दर आभूषण, पाट और रेशम के वस्त्र खरीदे। तब राजा के बहुत से सेवकों ने उस ब्राह्मण को चोर जानकर राजा से आकर कहा। फिर उसे राजा के पास लाये। तो राजा ने पूछा- हे भूदेव! पहनने योग्य वस्त्र भी नहीं थे, सो आज प्रातःकाल सुन्दर कुण्डल, आभूषण, पाट और रेशमी वस्त्र कहाँ से आये? ब्राह्मण ने कहा-

भेकैः कोटरशायिभिर्मृतमिव क्ष्मान्तर्गतं कच्छपैः।
पाठीनैः पृथुपङ्कपीठलुठनाद्यस्मिन्मुहूर्मूर्च्छितम्॥
तस्मिञ्शुष्कसरस्यकालजलदेनागत्य तच्चेष्टितम्।
यत्राकुम्भनिमग्नवन्यकरिणां यूथैः पयः पीयते॥१९९॥

जहां मेढ़क मरों की समान कोटर में पड़े थे, कछुए पृथ्वी में दबे पड़े थे और मच्छी कीच गारे में लोटती मूर्छित पड़ी थी, उसी सूखे सरोवर में अकाल मेघ ने बरसने की ऐसी चेष्टा की, जिससे बनैल हाथी भी शिर तक डूबकर स्नान करके जल पीते हैं॥१९९॥

तुष्टो राजा तस्मै वीरवलयं चोरप्रदत्तं निश्चित्य स्वयं च लक्षं ददौ। अन्यदा कोऽपि कवीश्वरः विष्ण्वाख्यो राजद्वारि समागत्य तैः प्रवेशितो राजानं दृष्ट्वा स्वस्तिपूर्वकं प्राह-

यह सुनकर प्रसन्न होते हुए राजा ने उस चोर को वीरकङ्कण दिया था यह जान कर भी एक लाख रुपये और दिये। एक समय कोई विष्णु नामक कवीश्वर राजद्वार पर आये, तब द्वारपालों ने भीतर उन्हें लाये, तो राजा को देखकर 'स्वस्ति' बोले-

धाराधीश धरामहेन्द्रगणनाकौतूहलीयामयं।
वेधास्त्वद्गणनां चकार खटिकाखण्डेन रेखां दिवि॥
सैवेयं त्रिदशापना समभवत्त्वत्तुल्यभूमीधरा-
भावात्तत्त्यजति स्म सोयमवनीपीठे तुषाराचलः॥२००॥

हे धारानगरी के स्वामी राजा भोज! पृथ्वी के महान् राजाओं की गिनती करने में आश्चर्य के साथ ब्रह्माजी ने खड़िया, मिट्टी के टुकड़ें से आकाश में आपके नाम की

जो रेखा खींची, वही यह आकाशगङ्गा हो गई। फिर पृथ्वी पर आपके समान कोई न दीखा, तब ब्रह्माजी ने वह खड़िया का टुकड़ा भूमि पर फेंक दिया, वही टुकड़ा हिमालय पर्वत हो गया है ।।२००।।

राजा लोकोत्तरं श्लोकमाकर्ण्य किं देयमिति व्यचिन्तयत्। तस्मिन्क्षणे तदीयकवित्वमप्रतिद्वन्द्वमाकर्ण्य सोमनाथाख्यकवेर्मुखं विच्छायमभवत्। ततः स दौष्ट्याद्राजानं प्राह। देवासौ सुकविर्भवति परमनेन न कदापि वीक्षितास्ति राजसभा। यतो दारिद्र्यवारिधिरयम्। अस्य च जीर्णमपि कौपीनं नास्ति। ततो राजा सोमनाथं प्राह–

राजा ने इस लोकोत्तर श्लोक को सुनकर क्या देना चाहिये यह विचारा, उसी समय उसकी सुन्दर कविता सुनकर सोमनाथ कवि का मुख लज्जित हो गया, पश्चात् दुःखभाव से सोमनाथ ने राजा से कहा– हे देव! कवि तो श्रेष्ठ है, परन्तु इन्होंने राजसभा नहीं देखी है। अतएव दरिद्र का सागर है। तन पर जीर्ण कौपीन तक नहीं है। तब राजा ने सोमनाथ से कहा–

निरवद्यानि पद्यानि यद्यनाथस्य का क्षतिः।
भिक्षुणा कक्षनिक्षिप्तः किमिक्षुर्नीरसो भवेत् ।।२०१।।

जो कविता सुन्दर है, तो इस अनाथ से क्या हानि है? क्योंकि ईख का (गन्ने का) टुकड़ा भिक्षुक के कांख में दाबने से वह रसहीन नहीं होता है ।।२०१।।

ततः सर्वेभ्यः ताम्बूलं दत्त्वा राजा सभाया उदतिष्ठत्। सर्वैर–प्यन्यान्यमित्यभ्यधायि। अद्य विष्णुकवे! कवित्वमार्कण्य सोमनाथेन सम्यग्दौष्ट्यमकारि। ततः समुत्थिता विद्वत्परिषत्। ततो विष्णुकविरेकं पद्यं पत्रे लिखित्वा सोमनाथकविहस्ते दत्त्वा प्रणम्य गन्तुमारभत। अत्र सभायां त्वमेव चिरं नन्द। ततो वाचयति सोमनाथकविः।।

तत्पश्चात् सब को ताम्बूल देकर राजा उठा। तब परस्पर औरों ने कहा कि– आज विष्णु कवि की कविता सुनकर सोमनाथ ने बड़ी दुष्टता की। फिर विद्वानों की सभा उठ गई। अनन्तर विष्णु कवि ने एक पत्र पर श्लोक लिखकर सोमनाथ कवि के हाथ में देकर प्रणाम करके गाने की इच्छा प्रकट की और कहा– इस सभा में तुम भी चिरकाल तक प्रसन्नता से रहो। फिर सोमनाथ कवि ने श्लोक पढ़ा–

एतेषु हा तरुणमारुतधूयमान–।
दावानलैः कवलितेषु महीरुहेषु।।

अम्भो न चेज्जलद मुञ्चसि मा विमुञ्च।
वज्रं पुनः क्षिपसि निर्दय कस्य हेतोः ।।२०२।।

हे मेघ! यही खेद है कि प्रचण्ड पवन द्वारा धूयमान दावानल से ग्रसित वृक्षों पर जल नहीं वर्षाता तो मत वर्षा, परन्तु हे निर्दयी मेघ! तू वज्र क्यों छोड़ता है ।।२०२।।

ततः सोमनाथकविः निखिलामपि पट्टदुकूलवित्तहिरण्यमयीं तुरङ्गमादिसम्पत्तिं कलत्रवस्त्रावशेषं दत्तवान्। ततो राजा मृगयारस-प्रवृत्तो गच्छन् तं विष्णुकविमालोक्य व्यचिन्तयत्। मया अस्मै भोजनमपि न प्रदत्तम्। मामनादृत्य अयं सम्पत्तिपूर्णः स्वदेशं प्रति यास्यति। पृच्छामि विष्णुकवे! कुतः सम्पत्तिः प्राप्ता?

तब सोमनाथ कवि ने अपने समस्त पाट, रेशमी वस्त्र, द्रव्य, सुवर्ण आदि, घोड़े और सम्पूर्ण सम्पत्ति उस कवि को दे दी, केवल एक पहने हुए वस्त्र और स्त्री शेष रखी। फिर राजा ने शिकार को जाते समय मार्ग में विष्णु कवि को देखकर पूछा कि उसने भोजन नहीं दिया। (और) यह मेरा अनादर करके पूर्ण सम्पत्ति को लेकर अपने देश को जाता है। राजा ने पूछा;– हे विष्णु कवि! यह सम्पत्ति कहाँ से मिली?

कविराह।

कवि ने कहा–

सोमनाथेन राजेन्द्र देव त्वद्गुणभिक्षुणा।
अद्य शोच्यतमे पूर्णं मयि कल्पद्रुमायितम् ।।२०३।।

हे देव! हे राजेन्द्र! आपके गुणों के भिक्षुक सोमनाथ कवि ने मेरी दरिद्र की दशा में कल्पवृक्ष के समान वाच्छित फल दिया ।।२०३।।

राजा पूर्वं सभायां श्रुतस्य श्लोकस्य अक्षर लक्षं ददौ। सोम-नाथेन च यावद्दत्तं तावदपि सोमनाथाय दत्तवान्। सोमनाथः प्राह–

राजा ने पूर्व सभा में जो श्लोक सुना था, उस श्लोक के प्रत्येक अक्षर पर एक–एक लाख रुपये दिये और सोमनाथ कवि ने जितना दिया था, उतना सोमनाथ कवि को भी दे दिया। तब सोमनाथ ने कहा–

किसलयानि कुतः कुसुमानि वा।
क्व च फलानि तथा वनवीरुधाम् ।।
अयमकारणकारुणिको यदा।
न तरतीह पयांसि पयोधरः ।।२०४।।

जब अकारण दयालु मेघ जल नहीं वर्षायेगा, तो वन के वृक्षों पर पत्ते, फूल और फल कैसे लगेंगे ?

ततो विष्णुकविः सोमनाथदत्तेन राज्ञा दत्तेन च तुष्टवान्। तदा सीमन्तकविः प्राह—

फिर विष्णु कवि सोमनाथ और राजा से धन मिलने से परम प्रसन्न हुआ। तब सीमन्त कवि ने कहा;—

वहति भुवनश्रेणीं शेषः फटाफलकस्थितां।
कमठपतिना मध्येपृष्ठं सदा स च धार्यते ।।
तमपि कुरुते क्रोडाधीनं पयोनिधिरादरा—
दहह। महतां निस्सीमानश्चरित्रविभूतयः ।।२०५।।

शेषजी अपने फण के एक भाग में समस्त भुवन को धारण किये हैं, कच्छपजी ने सदा उन शेषजी को अपनी पीठ पर धारण किया है और उन कच्छपजी को समुद्र ने आदर से अपने उदर में डाल रखा है; अहा! देखो कैसे आनन्द की बात है कि बड़ों की विभूति भी अपार होती है ।।२०५।।

कदाचित्सौधतले राजानमेत्य भृत्यः प्राह। देव! अखिले—ष्वपि कोशेषु यद्वित्तजातमस्ति, तत्सर्वं देवेन कविभ्यो दत्तम्। परन्तु कोशगृहे धनलेशोऽपि नास्ति। को ऽपि कविः प्रत्यहं द्वारि तिष्ठति। इतः परं कविर्विद्वान् वा कोऽपि राज्ञे न प्राप्य इति मुख्यामात्येन देवसन्निधौ विज्ञापनीयमित्युक्तम्। राजा कोशस्थं सर्वं दत्तमिति जानन्नपि प्राह। अद्य द्वारस्थं कविं प्रवेशय। ततो विद्वानागत्य स्वस्तीति वदन् प्राह—

किसी समय राजभवन के नीचे राजा के सेवक ने कहा कि— हे देव! सभी खजानों का धन आप कवियों को दे चुके, अब वह खाली हो गये हैं। कोई कवि प्रतिदिन द्वार पर खड़ा रहता है. अब किसी कवि या विद्वान् को राजा के पास न जाने देना, यह प्रधान मन्त्री की आज्ञा बताई। तब राजा भोज ने खजानों के रीते होने को जान कर भी कहा— द्वार पर विराजमान कवि को शीघ्र भेजो। फिर किसी विद्वान ने आकर ''स्वस्ति'' कह कर कहा—

नभसि निरवलम्बे सीदता दीर्घकालं।
त्वदभिमुखविसृष्टोत्तानचञ्चूपुटेन ।।

जलधर जलसारो दूरतस्तावदास्तां।
ध्वनिरपि मधुरस्ते न श्रुतश्चातकेन ।।२०६।।

हे मेघ! विना अवलम्ब के चिरकाल से दुःख पाते हुए तेरे सम्मुख चोंच को फैलाकर चातक ने मधुर वचन भी नहीं सुने, जल की बून्द तो दूर रही।।२०६।।

राजा तदाकर्ण्य धिग्जीवितं यद्विद्वांसः कवयश्च द्वारमागत्य सीदन्तीति। तस्मै विप्राय सर्वाण्याभरणान्युत्तार्य ददौ। ततो राजा कोशाधिकारिणमाहूयाह। भाण्डारिक! मुञ्जराजस्य तथा मे पूर्वेषां च ये कोशाः सन्ति तेषां मध्ये रत्नपूर्णान्कलशानानय। ततः काश्मीरदेशान्मुचुकुन्दकविरागत्य स्वस्तीत्युक्त्वा प्राह–

राजा ने यह सुनकर विचारा कि अब जीवन को धिक्कार है; क्योंकि विद्वान् और कवि द्वार पर आकर दुःख पाते हैं। राजा ने उस ब्राह्मण को समस्त आभूषण उतार कर दिये। पश्चात् राजा ने खजांची को बुलाकर कहा– हे भाण्डारिक! राजा मुञ्ज के अथवा मेरे पूर्वजों के खजाने में से रत्नों से पूर्ण कलश को लाओ। फिर काश्मीर देश से मुचुकुन्द कवि ने आकर स्वस्ति कहकर कहा–

त्वद्यशोजलधौ भोज निमज्जनभयादिव।
सूर्येन्दुबिम्बमिषतो धत्ते कुम्भद्वयं नभः ।।२०७।।

हे भोज! आपके यश रूपी सागर में डूबने के भय से यह आकाश चन्द्र और सूर्य के मिस से दो घट धारण किये हैं।।२०७।।

राजा तस्मै प्रत्यक्षरं लक्षं ददौ। पुनः कविराह–

राजा ने उस कवि के एक–एक अक्षर पर एक–एक लाख रुपये दिये। फिर कवि ने कहा–

आसन् क्षणानि यावन्ति चातकाश्रूणि तेऽबुदे।
तावन्तोऽपि त्वयोदार न मुक्ता जलबिंदवः ।।२०८।।

हे मेघ! तुमने जल बरसाने में जितनी देर की है, चातक के उतने ही काल तक आँसू निकले हैं, सो उदार मेघ! तुम ने चातक के आँसुओं की बून्दों के बराबर भी जल की बून्दे नहीं वर्षाईं।।२०८।।

ततः स राजा तस्मै शततुङ्गानपि ददौ ततो भाण्डारिको लिखति।।

पश्चात् राजा ने उसको सौ घोड़े और दिये। तब खजांची ने धर्मपत्र पर लिखा–

मुचुकुन्दाय कवये जात्यानश्वाञ्शतं ददौ ।।
भोजः प्रदत्तलक्षोऽपि तेनासौ याचितः पुनः ।।२०९।।

राजा भोज ने श्लोक के प्रत्येक अक्षर पर कवि को लाख-लाख रुपये भी दे दिये, परन्तु जब कवि ने पुनः परीक्षा की तो सौ घोड़े भी मुचुकुन्द कवि को दिये ।।२०९।।

ततो राजा सर्वानपि वेश्म प्रेषयित्वान्तर्गच्छति । ततो राज्ञ-श्चामरवाहिणी प्राह-

पश्चात् राजा सबको घर भेजकर महल में गये, वहाँ राजा की दासी ने चमर डुलाते हुए कहा-

राजन्मुञ्जकुलप्रदीप सकलक्ष्मापालचूडामणे ।
युक्तं सञ्चरणं तवाद्भुतमणिच्छत्रेण रात्रावपि ।।
मा भूत्त्वद्वदनावलोकनवशाद्व्रीडाविनम्रः शशी ।
मा भूच्चेयमरुन्धती भगवती दुश्शीलताभाजनम् ।।२१०।।

हे राजन्! हे मुञ्जकुलदीपक! हे सकल राजाओं के चूड़ामणि! आपके अद्भुत मणियों के छत्र के प्रकाश से रात्रि में चलना उचित है, किन्तु आपके मुखकमल को देखकर चन्द्र लज्जित न हो और भगवती अरुन्धती दुःशीला न हो ।।२१०।।

राजा तस्यै प्रत्यक्षरं लक्षं ददौ । अन्यदा कुण्डिननगराद्गोपालो नाम कविरागत्य स्वस्तिपूर्वकं प्राह-

राजा ने उस दासी के एक-एक अक्षर पर एक-एक लाख रुपये दिये । किसी समय कुण्डिन नगर से गोपाल नामक कवि ने आकर 'स्वस्ति' कहकर कहा;-

तच्चित्ते भोज निर्यातं द्वयं तृणकणायते ।
क्रोधो विरोधिनां सैन्यं प्रसादे कनकोच्चयः ।।२११।।

हे भोज! आपके चित्त में उदय हुई दो वस्तुयें तृण और कण की समान आचरण करती हैं; अर्थात् आपके क्रोध में शत्रु की सेना तृण के समान और प्रसन्नता में सोने का पर्वत कण के समान आचरण करता है ।।२११।।

राजा श्रुत्वापि तुष्टो न दास्यति । राजपुरुषैः सह चर्चां कुर्वाणस्तिष्ठति । ततः कविर्व्यचिन्तयत् । किमु राज्ञा नाश्रावि । ततः क्षणेन समुन्नतमेघमवलोक्य राजानं कविराह-

राजा ने सुन कर प्रसन्न होने पर भी कुछ नहीं दिया । अपने मन्त्रियों के साथ वार्तालाप करता बैठा रहा । तब कवि ने विचारा कि क्या राजा ने नहीं सुना? फिर

उसी समय राजा को मेघ समुन्नत देखकर कहा–

हे पाथोद! यथोन्नतं हि भवता दिग्व्यावृता सर्वतो।
मन्ये धीर तथा करिष्यसि खलु क्षीराब्धितुल्यं सरः।।
किं त्वेष क्षमते न हि क्षणमपि ग्रीष्मोष्मणा व्याकुलः।
पाठीनादिगणत्वदेकशरणस्तद्वर्ष तावत्कियत्।।२१२।।

हे मेघ! हे धीर! यह मैं जानता हूँ कि, तुम फैलकर समस्त दिशाओं में व्याप्त होकर पृथ्वी सम्पूर्ण सरोवरों को क्षीरसागर के समान अवश्य कर दोगे, किन्तु ग्रीष्म ऋतु की उष्णता से व्याकुल तुम्हारे आश्रित मीनादि जीव इस दुःख को नहीं सह सकते हैं। अतएव आरम्भ में कुछ तो वर्षा करो।।२१२।।

राजा कविहृदयं विज्ञाय गोपालकवे! दारिद्र्याग्निना निशान्ते दग्धोऽसीति वदन षोडश मणीनर्घ्यान् षोडश दन्तीन्द्रांश्च ददौ। एकदा राजा धारानगरे विचरन् क्वचिच्छिवालये प्रसुप्तं पुरुषद्वयमपश्यत्। तयोरेको विगतनिद्रो वक्ति। अहो त्वं ममास्तरासन्न एव कस्त्वं प्रसुप्तोऽसि जागर्षि नो वा। ततस्त्वपर आह। विप्र प्रणतोऽस्मि अहमपि ब्राह्मणपुत्रः त्वामत्र प्रथमरात्रे शयानं वीक्ष्य प्रदीप्ते च प्रदीपे कमण्डलूपवीतादिभिर्ब्राह्मणं ज्ञात्वा भवदास्तरासन्न एवाहं प्रसुप्तः। इदानीं त्वद्गिरमाकर्ण्य प्रबुद्धोऽस्मि। प्रथमः प्राह। वत्स! यदि त्वं प्रणतोऽसि ततो दीर्घायुस्तव। वद कुत आगम्यते किं ते नाम अत्र च किं कार्यम्। द्वितीयः प्राह। विप्र भास्कर इति नाम। पश्चिम-समुद्रतीरे प्रभासतीर्थसमीपे वसतिर्मम। तत्र भोजस्य वितरणं बहुभिर्व्यावर्णितं ततो याचितुमहमागतः। त्वं मम वृद्धत्वात्पितृ-कल्पोऽसि। त्वमपि वद। स आह। वत्सशाकल्य इति मे नाम। मया एकशिलानगर्या आगम्यते भोजं प्रति द्रविणाशया। वत्स! त्वयानुक्तमपि दुःखं त्वयि ज्ञायते। कीदृशं तद्वद ततो भास्करः प्राह। तात! किं ब्रवीमि दुःखम्।।

राजा ने कवि के हृदय के भाव को जानकर कहा– हे गोपाल कवे! तुम दरिद्रता की अग्नि से निरन्तर दग्ध हो रहे हो, यह कहकर राजा ने उस कवि को बहुमूल्य सोलह मणियां दीं और उत्तम सोलह हाथी दिये। एक दिन धारानगरी में विचरते हुए राजा ने किसी शिवालय में सोते हुए दो मनुष्यों को देखा। उनमें से एक ने जाग कर

कहा– अहा! कौन है, जो मेरे बिस्तर के समीप सोया है? जागता है या नहीं? तब दूसरा बोला– हे भूदेव! मैं आपको प्रणाम करता हूँ, मैं भी ब्राह्मण कुमार हूँ। आपको यहाँ सोया देखकर दीपक के प्रकाश में यज्ञोपवीत और कमण्डलु को देखकर ब्राह्मण मान कर बिस्तर के समीप सो रहा था। अब आपके वचन सुनकर जागा हूँ। प्रथम ब्राह्मण ने कहा– हे वत्स! जो तुमने प्रणाम किया, उससे तुम्हारी आयु बढ़े। कहो, कहां से आये हो, क्या नाम है और क्या काम है? दूसरे ब्राह्मण ने कहा– हे विप्र! मेरा नाम भास्कर है, पश्चिम सागर के किनारे प्रभास तीर्थ के निकट रहता हूँ। अनेक पुरुषों के मुख से राजा भोज का दान सुनकर याचना के लिये यहाँ आया हूँ। आप आयु में बड़े होने से मेरे पिता के समान हो, आप भी अपना परिचय दें। तब वह ब्राह्मण बोला– हे वत्स! मुझे शाकल्य कहते हैं, एकशिला नगरी से धन की आशा लगाकर भोज के समीप आया हूँ। हे वत्स! तुम्हारे न कहने पर भी मैं तुम्हें दुःखी जानता हूँ, सो क्या दुःख है? कहो तो सही। तब भास्कर ने कहा– हे तात! दुःख को कहता हूँ।

क्षुत्क्षामाः शिशवः शवा इव भृशं मन्दाशयो बान्धवा।
लिप्ता जर्जरघर्घरी जतुलवैर्नो मां तथा बाधते॥
गेहिन्या त्रुटितांशुकं घटयितुं कृत्वा सकाकु स्मितं।
कुप्यन्ती प्रतिवेश्मलोकगृहिणी सूचिं यया याचिता॥२१३॥

क्षुधा से क्षीणकाय होकर बालक शव के समान हो गये हैं, कुटुम्बजन मेरी ओर से मन को हटाये हैं, घर में फूटे कलश को लाख के टुकड़ों से जोड़कर रखा है, दरिद्रता से यह दशा भी मुझे दुःखद नहीं है, परन्तु फटे वस्त्रों के लिये मेरी स्त्री जब सुई मांगने के लिये गांव की स्त्रियों के पास जाती है, तब वे स्त्रियां तो मुख से मन्द हँसती हुई जो कुपित होती हैं, यही दुःख मुझे मारे डालता है॥२१३॥

राजा श्रुत्वा सर्वाभरणान्युत्तार्य तस्मै दत्त्वा प्राह। भास्कर सीदन्त्यतीव ते बालाः झटिति देशं याहि। ततः शाकल्यः प्राह–

राजा ने सुनकर सब आभूषणों को उतार कर ब्राह्मण को दे दिया और कहा– हे भास्कर! तुम्हारे बालक बड़े दुःखी होंगे, अतः तुम शीघ्र ही अपने देश को जाओ। फिर शाकल्य ने कहा–

अत्युद्धृता वसुमती दलितोऽरिवर्गः।
क्रोडीकृता बलवता बलिराजलक्ष्मीः॥
एकत्र जन्मनि कृतं यदनेन यूना।
जन्मत्रये तदकरोत्पुरुषः पुराणः॥२१४॥

राजा भोज ने पृथ्वी का उद्धार किया, शत्रुओं को दलित किया और राजा बलि की राजलक्ष्मी छीन ली, यह विष्णु के तीन जन्मों में करने योग्य कर्मों को राजा भोज ने एक ही जन्म में कर लिया ।।२१४।।

ततो राजा शाकल्याय लक्षत्रयं दत्तवान्। अन्यदा राजा मृगयारसेन विचरन् तत्र पुरः समागतहरिण्यां बाणेन तव विद्धायामपि वित्ताशया कोऽपि कविराह–

तब राजा ने शाकल्य को तीन लाख रुपये दिये। एक समय राजा ने शिकार खेलते हुए हिरणी को बाण से वेधा, तब द्रव्य की आशा से किसी कवि ने कहा–

श्रीभोजे मृगयां गतेऽपि सहसा चापे समारोपितेऽ–
प्याकर्णान्तगतेऽपि मुष्टिगलिते बाणेंऽगलग्नेऽपि च ।।
स्थानान्नैव पलायितं न चलितं नोत्कम्पितं नोत्प्लुतं ।।
मृग्या मद्वशगं करोति दयितं कामोऽयमित्याशया ।।२१५।।

राजा भोज! आपके शिकार के लिये आने पर भी, बाण धनुष पर चढ़ाने पर भी, कान तक खैंचने पर भी, मुट्ठी से छोड़ने पर भी और अंग में लगने पर भी यह हरिणी कामदेव मेरे पति को मेरे वश में करता है, यों मोहित होकर न भागी, न चली, न कांपी और न कूदी, केवल अचल खड़ी रही ।।२१५।।

राजा तस्मै लक्षत्रयं प्रयच्छति। अन्यदा सिंहासनमलङ्कुर्वाणे श्रीभोजनृपतौ द्वारपाल आगत्य प्राह। देव! जाह्नवीतीरवासिनी काचन वृद्धब्राह्मणी विदुषी द्वारि तिष्ठति। राजा प्राह प्रवेशय। तत् आगच्छन्तीं राजा प्रणमति। सा तं चिरञ्जीवेत्युक्त्वाह–

राजा ने उस कवि को तीन लाख रुपये दिये। एक दिन राजा भोज सिंहासन पर बैठे थे, तब द्वारपाल ने आकर कहा– हे देव! गङ्गातटवासिनी कोई विदुषी ब्राह्मणी द्वार पर खड़ी है। राजा ने कहा– ले आओ। फिर ब्राह्मणी के आने पर राजा ने प्रणाम किया, उस ब्राह्मणी ने 'चिरञ्जीव रहो' कहकर कहा–

भोजप्रतापाग्निरपूर्व एष जागर्ति भूभृत्कटकस्थलीषु।
यस्मिन् प्रविष्टे रिपुपार्थिवानां तृणानि रोहन्ति गृहाङ्गणेषु ।।२१६।।

यह भोज की अपूर्व प्रताप रूपी अग्नि पर्वतों के कण्टक स्थल में जाग रही है, जिस प्रताप रूपी अग्नि के प्रवेश होने पर शत्रु राजाओं के घर के आंगन में तृण जम आते हैं अर्थात् आपके प्रताप से समस्त शत्रु नष्ट हो गये और उनके घरों में घास उपजने लगी ।।२१६।।

राजा तस्यै रत्नपूर्णं कलशं प्रयच्छति। ततो लिखति भाण्डारिकः।।

राजा ने उस ब्राह्मणी को रत्नों से पूर्ण कलश दिया। तब खजानची ने धर्मपत्र पर लिखा–

भोजेन कलशो दत्तः सुवर्णमणिसम्भृतः।
प्रतापस्तुतितुष्टेन वृद्धायै राजसंसदि।।२१७।।

प्रताप के स्तुति से प्रसन्न होकर राजा भोज ने राजसभा में वृद्धा को सुवर्णमणियों से पूर्ण कलश दिया।।२१७।।

अन्यदा दूरदेशादागतः कश्चिच्चोरो राजानं प्राह। देव! सिंहलदेशे मया काचन चामुण्डालये राजकन्या दृष्टा। सा च मां दृष्ट्वा मालवदेशदेवस्य महिमानं बहुधा श्रुतं त्वमपि वदेति पप्रच्छ। मया च तस्यै देवगुणा व्यावर्णिताः सा चात्यन्ततोषाच्चन्दनतरोर्निरुपमं गर्भखण्डं दत्त्वा यथास्थानं प्रपेदे। देव! गुणाभिवर्णनप्राप्तं तदेद्गृहाण। एतत्प्रसृतपरिमलभरणे भृङ्गा भुजङ्गाश्च समायान्ति। राजा तद्गृहीत्वा तुष्टस्तस्मै लक्षं दत्तवान्। ततो दामोदरकविस्तन्मिषेण राजानं स्तौति।

एक समय दूर देश से आकर किसी चोर ने राजा से कहा– हे देव! सिंहल देश में देवी के मन्दिर में किसी राजकुमारी को मैंने देखा है। वह मुझे देखकर पूछने लगी कि मालवे के राजा की महिमा बहुतों के मुख से सुनी है। सो आप भी कहें। हे देव! तब मैंने उसके आगे गुणों का वर्णन किया। तब उसने बड़े आनन्द से चन्दन के वृक्ष का सुन्दर बीच का टुकड़ा दिया और अपने स्थान को चली गई। हे देव! आपके गुणों के बखान से जो यह चन्दन का टुकड़ा प्राप्त हुआ है, उसे आप ग्रहण कीजिये। देखिये इसकी सुगन्धि से भ्रमर और सर्प आते हैं। राजा ने उसे लेकर प्रसन्न होकर एक लाख रुपये दिये। फिर दामोदर कवि ने उसके माध्यम से राजा की स्तुति की।

श्रीमच्चन्दवृक्ष सन्ति बहवस्ते शाखिनः कानने।
येषां सौरभमात्रकं निवसति प्रायेण पुष्पश्रिया।।
प्रत्यगं सुकृतेन शुचिना ख्यातः प्रसिद्धात्मना।
योऽसौ गन्धगुणस्त्वया प्रकटितः क्वासाविह प्रेक्ष्यते।।२१८।।

हे श्रीमान्! हे चन्दनवृक्ष! वन में ऐसे अनेक वृक्ष हैं, जिनके फूलों में सुगन्धि

रहती है और जो यह गन्ध तुम से प्रकट है, सो वह पुण्य के प्रताप से प्रसिद्ध आत्मा से तुम्हारे सभी अङ्गों में विख्यात है, सो तुम यहां किसको देखते हो? ।।२१८।।

राजा स्वस्तुतिं बुद्ध्वा लक्षं ददौ। ततो द्वारपाल आगत्य प्राह। देव! काचित्सूत्रधारी स्त्री द्वारि वर्तते। राजाह प्रवेशय। ततः सागत्य राजानं प्रणिपत्याह–

राजा ने अपनी स्तुति जानकर उसे लाख रुपये दिये। पश्चात् द्वारपाल ने आकर कहा– हे देव! कोई सूत्रधारिणी स्त्री द्वार पर खड़ी है। राजा ने कहा– भेज दो। उसने आकर राजा को प्रणाम करके कहा–

बलिः पातालनिलयोऽधःकृतश्चित्रमत्र किम्।
अधःकृतो दिवस्थोऽपि चित्रं कल्पद्रुमस्त्वया ।।२१९।।

पाताल वासी बलि को आपने नीचे कर दिया, इसमें विचित्रता क्या है? अब स्वर्ग में स्थित कल्पवृक्ष को भी आपने नीचे कर दिया ।।२१९।।

राजा तस्यै प्रत्यक्षरं लक्षं ददौ। ततः कदाचिन्मृगयापरिश्रान्तः राजा क्वचित्सहकारतरोरधस्तात्तिष्ठतिस्म। तत्र मल्लिनाथाख्य–कविरागत्य प्राह–

राजा ने उसे प्रत्येक अक्षर के एक–एक लाख रुपये दिये। फिर किसी समय राजा ने शिकार खेलने से थककर आम के वृक्ष की छाया में विराम किया। तब मल्लिनाथ कवि ने आकर कहा–

शाखाशतशतवितताः सन्ति कियन्तो न कानने तरवः।
परिमलभरमिलदलिकुलदलितदलाः शाखिनो विदलाः ।।२२०।।

सौ–सौ शाखाओं वाले वृक्ष वन में बहुत हैं, किन्तु सुगन्धि के भार से युक्त भ्रमरों के दल से वेष्टित पत्र वाले वृक्ष बहुत कम हैं ।।२२०।।

ततो राजा तस्मै हस्तवलयं ददौ। तत्रैव आसीने राज्ञि कोऽपि विद्वानागत्य स्वस्तीत्युक्त्वा प्राह। राजन्! काशीदेशमारभ्य तीर्थयात्रया परिभ्राम्यते दक्षिणदेशवासिना मया। राजा– त्वादृशां तीर्थवासिनां दर्शनात्कृतार्थोऽस्मि। स आह। वयं मान्त्रिकाश्च। राजा– विप्रेषु सर्वं सम्भाव्यते। राजा पुनः प्राह। मन्त्रविद्यया यथा परलोकफलप्राप्तिः तथा किमिह लोकेऽप्यस्ति। विप्रः– राजन्! सरस्वतीचरणाराधनाद्विद्यावाप्तिर्विश्वविदिता परं धनावाप्तिर्भाग्याधीना।।

पश्चात् राजा ने उसे अपने हाथ का कङ्कण दे दिया। राजा वहीं रहा इतने में किसी विद्वन् ने आकर 'स्वस्ति' कहकर आशीर्वाद देकर कहा- हे राजन्! मैं दक्षिण देशवासी काशी से तीर्थयात्रा करता हुआ आया हूँ। राजा ने कहा- आपके समान तीर्थसेवियों के दर्शनों से मैं कृतार्थ हुआ। ब्राह्मण ने कहा- मैं मन्त्रविद्या जानता हूँ। तब राजा बोला- हे महाराज! ब्राह्मणों से सब हो सकता है। राजा ने फिर कहा- हे विप्र! मन्त्रविद्या से जैसे परलोक में फल मिलता है, वैसे इस लोक में भी फल मिल सकता है? ब्राह्मण ने कहा- हे राजन्! सरस्वती की चरण सेवा से इस लोक में विद्या की प्राप्ति होती है, परन्तु धन की प्राप्ति भाग्य के अधीन है।

गुणा खल्लु गुणा एव न गुणा भूतिहेतवः।
धनसञ्चयकर्तृणि भाग्यानि पृथगेव हि।।२२१।।

गुण तो गुण ही हैं, कुछ सम्पत्ति के कारण गुण नहीं हैं। धन का सञ्चय करने वाला भाग्य दूसरा है।।२२१।।

देव! विद्यागुणा एव लोकानां प्रतिष्ठायै भवन्ति न तु केवलं सम्पदः। देव!

हे देव! लोकों की प्रतिष्ठा के लिये विद्यागुण ही कहा है, केवल सम्पत्ति नहीं कही है। हे देव! सुने-

आत्मायने गुणग्रामे नैर्गुण्यं वचनीयता।
दैवायत्तेषु वित्तेषु पुसां का नाम वाच्यता।।२२२।।

गुणराशि इस जीवात्मा के अधीन हैं, अतएव जो मनुष्य गुणों को ग्रहण नहीं करते, उनकी मूर्खता की निन्दा होती है और धन को प्रारब्ध के अधीन होने के कारण निर्धन की निन्दा नहीं होती है।।२२२।।

देव! मन्त्राराधनेनाप्रतिहता शक्तिः स्यात्। देव! एवं कुतूहलं यस्य। मया यस्य शिरसि करो निधीयते स सरस्वतीप्रसादेन अस्खलितविद्याप्रसारः स्यात्। राजा प्राह। सुमते! महती देवता-शक्तिः। ततो राजा कामपि दासीमाकार्य विप्रं प्राह। द्विजवर! अस्या वेश्यायाः शिरसि करं निधेहि। विप्रस्तस्याः शिरसि करं विधाय तां प्राह देवि! यद्राजाज्ञापयति तद्वद। ततो दासी प्राह देवाहमद्य समस्तवाङ्मयजातं हस्तामलकवत्पश्यामि देवादिश किं वर्णयामि। ततो राजा पुरः खड्गं वीक्ष्य प्राह। खड्गं मे व्यावर्णयेति। दासी प्राह-

हे देव! मन्त्रों की आराधना से अवरोधशक्ति हो जाती है। हे देव! उसका

यह आश्चर्य है कि मैं जिसके शिर पर हाथ रख दूं, वही सरस्वती की कृपा से धाराप्रवाह विद्यासम्पन्न हो जाता है। राजा ने कहा– हे सुमते! दैवशक्ति विशाल है। फिर राजा ने दासी को बुलाकर कहा– हे विप्रवर! इस दासी के शिर पर हाथ धरो। ब्राह्मण ने उसके शिर पर हाथ धर कर कहा– हे देवि! जो राजा आज्ञा दे उसे कहो। तब दासी बोली– हे देव! मैं सम्पूर्ण वाणीमय शास्त्र को हाथ में स्थित आंवले की समान देखती हूँ। हे देव! आज्ञा दीजिये, क्या वर्णन करूं? फिर राजा ने सामने खड्ग को देखकर कहा– मेरे खड्ग का वर्णन कर। दासी बोली–

धाराधर त्वदसिरेष नरेन्द्र चित्रं वर्षंति वैरिवनिताजन-लोचनानि। कोशेन सङ्गतमसङ्गतिराहवेऽस्य दारिद्र्यमभ्युदयति प्रतिपार्थिवानाम्।।२२३।।

हे धाराधर! हे नरेन्द्र! यह आपका खड्ग बड़ा विचित्र है। शत्रुओं की स्त्रियों के नेत्रों से आंसुओं की धारा वर्षाता है, युद्धक्षेत्र में म्यान से बाहर रहता है और समस्त राजाओं को दीन करता है।।२२३।।

राजा तस्यै रत्नकलशाननर्घ्यान् पञ्च ददौ। ततस्तस्मिन् क्षणे कुतश्चित् पञ्च कवयः समाजग्मुः। तानवलोक्य ईषद्विच्छायमुखं राजानं दृष्ट्वा महेश्वरकविः वृक्षमिषेणाह–

राजा ने सुनकर उसे पांच अमूल्य कलश दिये। फिर उसी समय कहीं से पांच कवि आये। उन्हें देखकर कुछ मुख मलीन होते राजा को निहार कर महेश्वर कवि ने वृक्ष के माध्यम से कहा–

किं जातोऽसि चतुष्पथे घनतरच्छायोऽसि किं छायया।
छन्नश्चेत् फलितोऽसि किं फलभरैः पूर्णोऽसि किं संवृतः।।
हे सद्वृक्ष! सहस्व सम्प्रति चिरं शाखाशिखाकर्षणं।
क्षोभामोटनभञ्जनानि जनतः स्वैरेव दुश्चेष्टितैः।।२२४।।

हे सद्वृक्ष! तुम चौराहे में क्यों उपजे? घनी छाया क्यों धारी? छाया से आच्छादित होकर क्यों फले हो? और फलों के भार से क्यों पूर्ण हुए हो? यदि ऐसा हो गया है, तो अब अपनी ही बुरी चेष्टाओं से मनुष्यों के शाखाशिखाओं के सींचने, क्रोध से मोड़ने और तोड़ने आदि दुःख को चिरकाल तक सहो।।२२४।।

ततो राजा तस्मै लक्षं ददौ। ततस्ते द्विजवराः पृथक्पृथगाशी-र्वचनमुदीर्य यथाक्रमं राजाज्ञया कम्बल उपविश्य मङ्गलं चक्रुः। तत एकः पठति।।

फिर राजा ने उसे एक लाख रुपये दिये। तत्पश्चात् वह विप्रवर पृथक्-पृथक् आशीर्वाद देकर राजा की आज्ञा से क्रमानुसार कम्बल पर बैठकर मङ्गल करने लगे। फिर उनमें से एक ने पढ़ा-

कूर्मः पातालगङ्गापयसि विहरतां तत्तटीरूढमुस्ता-।
मादत्तामादिपोत्री शिथिलयतु फणामण्डलं कुण्डलीन्द्रः।।
दिङ्मातङ्गा मृणालीकवलनकलनां कुर्वतां पर्वतेन्द्राः।
सर्वे स्वैरं चरन्तु त्वयि वहति विभो भोज देवीं धरित्रीम्।।२२५।।

हे भोज! हे समर्थ! आपके पृथ्वी धारण करने से कूर्म तो पातालगङ्गा में क्रीड़ा करता है, वराहावतार उस गङ्गा के किनारे जमे हुए मोतियों को खाता है, शेषजी अपने फणमण्डल को हटाकर आराम करते हैं और दिशाओं के हाथी कमल को ग्रसते हैं, पर्वत भी इच्छानुसार विचरते हैं।।२२५।।

राजा चमत्कृतः तस्मै शताश्वान् ददौ। ततो भाण्डारिको लिखति-

राजा ने चमत्कृत होकर उसे सौ घोड़े दिये। तब खजांची ने यह लिखा-

क्रीडोद्याने नरेन्द्रेण शतमश्वा मनोजवाः।
प्रदत्ताः कामदेवाय सहकारतरोरधः।।२२६।।

राजा ने बगीचे के आम के वृक्ष के नीचे मन की समान वेग वाले सौ घोड़े कामदेव कवि को दिये।।२२६।।

ततः कदाचिद्भोजो विचारयति स्म। मत्सदृशो वदान्यः कोऽपि नास्तीति। तद्गर्वं विदित्वा मुख्यामात्यो विक्रमार्कस्य पुण्यपत्रं भोजाय प्रदर्शयामास। भोजस्तत्र पत्रे किञ्चित् प्रस्तावमपश्यत्। तथाहि विक्रमार्कः पिपासया प्राह।।

फिर किसी समय राजा भोज ने विचारा कि मेरी समान दूसरा दाता नहीं है। प्रधान मन्त्री ने राजा भोज का ऐसा गर्व जानकर राजा विक्रमादित्य का पुण्यपत्र भोज को दिखाया। भोज ने उस पत्र में कुछ प्रस्ताव देखा। वह यह है कि विक्रमार्क ने प्यास युक्त होकर कहा;-

स्वच्छं सज्जनचित्तवल्लघुतरं दीनार्तिवच्छीतलं।
पुत्रालिङ्गनवत्तथैव मधुरं तद्बाल्यसञ्जल्पवत्।।
एलोशीरलवङ्गचन्दनलसत्कर्पूरकस्तूरिका-।
जातीपाटलिकेतकैः सुरभितं पानीयमानीयताम्।।२२७।।

सज्जन के चित्त के समान स्वच्छ, दीन के व्यथा की समानलघु, पुत्र के आलिङ्गन के समान शीतल, बालकुमार के वचन के समान मधुर, इलायची, खस, लौङ्ग, चन्दन से शोभित, कपूर, कस्तूरी, मालती, पाटलिका और केतकी से सुगन्धित पानी लाओ ।।२२७।।

ततो मागधः प्राह ।।

तब मागध ने कहा–

वक्त्राम्भोजं सरस्वत्यभिवसति सदा शोण एवाधरस्ते ।
बाहुः काकुत्स्थवीर्यस्मृतिकरणपटुर्दक्षिणस्ते समुद्रः ।।
वाहिन्यः पार्श्वमेताः कथमपि भवतो नैव मुञ्चन्त्यभीक्ष्णं ।
स्वच्छे चित्ते कुतोऽभूत् कथ नरपते तेंऽबुपानाभिलाषः ।।२२८।।

हे नरपते! आपके मुख रूपी कमल में सदा सरस्वती बसती हैं, शोण नद रूपी आपके होंठ हैं, आपकी दहनी भुजा श्रीरामचन्द्रजी के पराक्रम को स्मरण कराने में चतुर सागर रूप है, पसवाड़े में वाहिनी सेना अथवा नदी निरन्तर रहती है, सो हे राजन! स्वच्छ चित्त के होने पर जल पीने की अभिलाषा आपको क्यों हुई ? ।।२२८।।

ततो विक्रमार्कः प्राह तथाहि ।

तब विक्रमार्क ने कहा– यह ठीक है ।

अष्टौ हाटककोटयस्त्रिनवतिर्मुक्ताफलानां तुलाः ।
पञ्चाशन्मधुगन्धमत्तमधुपाः क्रोधोद्धताः सिन्धुराः ।।
अश्वानामयुतं प्रपञ्चचतुरं वाराङ्गनानां शतम् ।
दत्तं पाण्ड्यनृपेण यौतकमिदं वैतालिकायार्प्यताम् ।।२२९।।

आठ करोड़ सुवर्ण, तिरानवे तोले मोती, मदमाते क्रोधपूर्ण पचास हाथी, दश हजार घोड़े और विलासिनी सौ वेश्यायें दहेज में विक्रमादित्य ने दिया है, सो वैतालिक के लिये अर्पण करो ।।२२९।।

ततो भोजः प्रथमत एव अद्भुतं विक्रमार्कचरित्रं दृष्ट्वा निजगर्वं तत्याज । ततः कदाचिद्धारानगरे रात्रौ विचरन् राजा कञ्चन देवालये शीतालुं ब्राह्मणमित्थं पठन्तमवलोक्य स्थितः ।।

तब भोज ने पूर्व होने वाले विक्रमादित्य का अद्भुत चरित्र देखकर अपने गर्व को त्याग दिया । फिर किसी दिन धारानगरी में रात में विचरते हुए राजा भोज देवस्थान में शीत से व्याकुल ब्राह्मण को पढ़ते हुए देखकर स्थित हो गये ।

शीतेनाध्युशितस्य माघजलवच्चिंतार्णवे मज्जतः।
शान्ताग्नेः स्फुटिताधरस्य धमतः क्षुत्क्षामकुक्षेर्मम।।
निद्रा क्वाप्यवमानितेव दयिता सन्त्यज्य दूरं गता।
सत्पात्रप्रतिपादितेव कमला नो हीयते शर्वरी।।२३०।।

माघ मास के जल के समान जाड़े से व्याप्त चिन्ता रूपी सागर में डूबते, शान्त अग्नि वाले, कम्पायमान होठवाले, अग्नि को थामने वाले, क्षुधा से सूखे पेट वाले, मेरी निद्रा त्यागी हुई स्त्री के समान छोड़कर दूर चली गई। जैसे सत्पात्र की सञ्चित की हुई लक्ष्मी क्षीण नहीं होती है, वैसे ही रात्रि क्षीण नहीं होती।।२३०।।

इति श्रुत्वा राजा प्रातस्तमाहूय पप्रच्छ। विप्र! पूर्वेद्यू रात्रौ त्वया दारुणः शीतभारः कथं सोढः? विप्र आह-

यह सुनकर राजा ने प्रातः उसे बुलाकर पूछा कि- हे विप्र! कल रात्रि को तुमने दारुण शीत कैसे सहा? तब ब्राह्मण ने कहा-

रात्रौ जानुर्दिवा भानुः कृशानुः सन्ध्ययोर्द्वयोः।
एवं शीतं मया नीतं जानुजानुकृशानुभिः।।२३१।।

रात्रि में घुटने के बीच शिर रखकर, दिन में सूर्य की धूप में बैठकर और सन्ध्या समय अग्नि को ताप कर मैंने जाड़ा बिताया।।२३१।।

राजा तस्मै सुवर्णकलशत्रयं प्रादात्। तत् कवी राजानं स्तौति।।

राजा ने उस ब्राह्मण को तीन सुवर्ण के कलश दिये। फिर कवि ने राजा की स्तुति की-

धारयित्वा त्वयात्मानं महात्यागधनायुषा।
मोचिता बलिकर्णाद्याः स्वयशोगुप्तवर्ष्मिणः।।२३२।।

हे राजन्! आपने शरीर धरण करके अपने यश के द्वारा बलि, कर्ण आदि के महादानीपने को छिपा दिया।।२३२।।

राजा तस्मै लक्षं ददौ। एकदा क्रीडोद्यानपाल आगत्य एक-मिक्षुदण्डं राज्ञः पुरो मुमोच। तं राजाकरे गृहीतवान्। ततो मयूरकविः नितान्तं परिचयवशात् आत्मनि राज्ञा कृतामवज्ञां मनसि निधाय इक्षुमिषेणाह।।

राजा ने उसे एक लाख रुपये दिये। एक समय बागवान ने आकर ईख (गन्ना)

राजा के सामने रखा, उसे राजा ने हाथ में उठा लिया। तब मयूर कवि ने प्रतिदिन आने-जाने से राजा के तिरस्कार को मन में रखकर गन्ने के बहाने कहा;-

कान्तोऽसि नित्यमधुरोऽसि रसाकुलोऽसि किं चासि पञ्चशर-कार्मुकमद्वितीयम्। इक्षो तवास्ति सकलं परमेकन्यूनं यत्सेवितो भजसि नीरसतां क्रमेण ।।२३३।।

हे ईख (गन्ने)! तू सुन्दर है, सदा मधुर है, रस से पूर्ण है, कामदेव का धनुष है और तू सर्वगुण युक्त है, परन्तु एक ही बात की कमी है कि जिससे निरन्तर क्रम से सेवन करने पर नीरसता को प्राप्त होता है अर्थात् ज्यों-ज्यों चूसै त्यों-त्यों रस कम होता जाता है ।।२३३।।

राजा कविहृदयं ज्ञात्वा मयूरं सम्मानितवान्।

राजा ने कवि के हृदय को जानकर मयूर का सम्मान किया।

ततः कदाचिद्रात्रौ सौधोपरि क्रीडापरो राजा शशाङ्कमालोक्य प्राह-

फिर किसी दिन राजा क्रीड़ा में लीन होकर महल में सो रहा था, सो चन्द्रमा को देखकर कहने लगा-

यदेतच्चन्द्रान्तर्जलदलवलीलां वितनुते।
तदाचष्टे लोकः शशक इति नो मां प्रति तथा ।।

यह जो चन्द्रमा के बीच में मेघ के लेश की लीला दृष्टि आती है, इसको मनुष्य शशक कहते हैं, सो मुझे प्रतीत नहीं होता ।।

ततश्चाधोभूमौ सौधान्त प्रविष्टः कश्चिच्चोर आह-

फिर महलों में नीचे पृथ्वी पर से किसी चोर ने कहा;-

अहं त्विन्दुं मन्ये त्वदरिविरहाक्रान्ततरुणी-
कटाक्षोल्कापातव्रणकणकलङ्काकिततनुम् ।।२३४।।

मैं तो यह मानता हूँ कि, आपके शत्रुओं के विरह से उनकी दुःखी स्त्रियों के कटाक्ष से वज्रपात रूप व्रण के लेश द्वारा चन्द्रमा का शरीर कलङ्क से युक्त है ।।२३४।।

राजा तत् श्रुत्वा प्राह। अहो महाभाग! कस्त्वमर्धरात्रे कोश-गृहमध्ये तिष्ठसीति। स आह। देव! अभयं नो देहीति। राजा तथेति। ततो राजानं स चोरः प्रणम्य स्ववृत्तान्तमकथयत्। तुष्टो राजा चोराय दश कोटीः सुवर्णस्याष्टोन्मत्तान् गजेन्द्रांश्च ददौ।

राजा सुनकर बोला– बड़ा आश्चर्य है। हे महाभाग! तुम कौन हो ? जो आधी रात के समय खजाने में घुस आये। उसने कहा– हे देव! मेरा अपराध क्षमा करो। राजा ने कहा– क्षमा किया। तब चोर ने प्रणाम करके अपना समस्त वृत्तान्त राजा से कहा– तो प्रसन्न होकर राजा ने चोर को दश करोड़ सुवर्ण की मोहरें और आठ मदमाते हाथी दिये।

ततः कोशाधिकारी धर्मपत्रे लिखति ।।

फिर खजांची ने धर्मपत्र में लिखा–

तदस्मै चोराय प्रतिनिहतमृत्युप्रतिभिये।
प्रभुः प्रीतः प्रादादुपरितनपादद्वयकृते ।।
सुवर्णानां कोटीर्दश दशनकोटिक्षतगिरीन्।
गजेन्द्रानप्यष्टौ मदमुदितकूजन्मधुलिहः ।।२३५।।

मृत्यु के समान भय दूर करके चोर के लिये श्लोक के पिछले दो चरण बनाने पर महाराज (भोज) ने प्रसन्न होकर दश करोड़ सुवर्ण की मोहरें और अपने दांतों से पर्वतों के अग्रभाग को चूर्ण करने वाले मदमाती, भ्रमरों से गुञ्जारित मद से घूमते हुए आठ हाथी दिये ।।२३५।।

ततः कदाचित् द्वारपाल आगत्य प्राह। देव! कौपीनावशेषो विद्वान् द्वारि वर्तत इति। राजा प्रवेशयेति। ततः प्रविष्टस्स कविर्भोज–मालोक्य मे दारिद्रनाशो भविष्यतीति मत्वा तुष्टो हर्षाश्रूणि मुमोच। राजा तमालोक्य प्राह। कवे! किं रोदिषि इति। ततः कविराह। राजन्! आकर्णय मद्गृहस्थितिम् ।।

फिर किसी दिन द्वारपाल ने आकर कहा– हे देव! एक कौपीनधारी विद्वान् द्वार पर खड़ा है! राजा ने कहा– ले आओ। तब भीतर जाकर कवि ने भोज को देख दरिद्रता जाती रहेगी, यह जान आनन्द के आँसू छोड़े। राजा ने उसे देखकर कहा कि हे कवे! क्यों रोते हो ? तब कवि ने कहा– हे राजन्! मेरे घर की दशा सुनिये–

अये लाजा उच्चैः पथि वचनमाकर्ण्य गृहिणी।
शिशोः कर्णौ यत्नात्सुपिहितवती दीनवदना ।।
मयि क्षीणोपाये यदकृत दृशावश्रुबहुले।
तदन्तः शल्यं मे त्वमसि पुनरुद्धर्तुमुचितः ।।२३६।।

खीलें लो! खीलें लो! मार्ग में ऐसे ऊँचे शब्दों को सुनकर मेरी स्त्री दीनभाव

से यत्न के साथ बालकों के कानों को ढक देती है और मेरे घर में क्षीण उपाय जान कर नेत्रों से आँसू बहाती रहती है। इस दृश्य से मेरे हृदय में शल्य-सा चुभा रहता है। सो उसे आप निकाल सकते हैं।।२३६।।

राजा शिव शिव कृष्ण कृष्णेत्युदीरयन् प्रत्यक्षरलक्षं दत्त्वा प्राह। सुकवे! त्वरितं गच्छ गेहं त्वद्गृहिणी खिन्नाभूदिति। ततः कदाचिन्मृगयापरिश्रान्तो राजा कस्यचिन्महावृक्षस्य छायामाश्रित्य तिष्ठति स्म। तत्र शाम्भवदेवो नाम कविः कश्चिदागत्य राजानं वृक्षमिषेणाह।।

राजा ने शिव-शिव, कृष्ण-कृष्ण कहकर एक-एक अक्षर पर एक-एक लाख रुपये देकर कहा- हे सुकवे! शीघ्र ही घर को पधारिये, स्त्री बड़ी दुःखी होगी। एक दिन राजा शिकार करता हुआ थककर किसी विशाल वृक्ष की छाया में बैठ गया। वहाँ शाम्भवदेव नामक किसी कवि ने आकर वृक्ष के माध्यम से राजा को कहा;-

आमोदैर्मरुतो मृगाः किसलयोल्लासैस्त्वचा तापसाः।
पुष्पैः षटचरणाः फलैः शकुनयो धर्मार्दिताश्छायया।।
स्कन्धैर्गन्धगजास्त्वयैव विहिताः सर्वे कृतार्थास्ततः।
त्वं विश्वोपकृतिक्षमोऽसि भवता भग्नापदोऽन्ये द्रुमाः।।२३७।।

सुगन्धि से पवन, सुरीली लय से मृग, छालों से तपसी, फूलों से भ्रमर, छाया से मार्ग द्वारा थकित, पीड़ित और स्कन्धों से गन्धगज कृतार्थ होते हैं, अतएव सबके उपकार के लिये तुम समर्थ हो और वृक्ष तुम से रक्षित रह सकते हैं।।२३७।।

किञ्च-अविदितगुणापि सत्कविभणितिः कर्णे स्रुवमति मधुधाराम्।
अनधिगतपरिमलापि च हरति दृशं मालतीमाला।।२३८।।

और कहा है। उत्तम कवि की कविता अज्ञात गुणों के भी कानों को मधुर रसमयी धारा से तृप्त करती है. जैसे सुगन्ध रहित मालती की माला नेत्रों को वशीभूत करती है।।२३८।।

ताभ्यां श्लोकाभ्यां चमत्कृतो राजा प्रत्यक्षरं लक्षं ददौ। अन्यदा श्रीभोजः श्रीमहेश्वरं नन्तुं शिवालयमभ्यगात्। तदा कोऽपि ब्राह्मणो राजानं शिवसन्निधौ प्राह।

उन श्लोकों से चमत्कृत होकर राजा ने प्रत्येक अक्षर पर एक-एक लाख रुपये दिये। एक समय राजा भोज महादेवजी को प्रणाम करने के लिये शिवालय में गये। तब किसी ब्राह्मण ने महादेवजी के पास कहा-

अर्धं दानववैरिणा गिरिजयाप्यर्धं शिवस्याहृतं ।
देवेत्थं जगतीतले पुरहराभावे समुन्मीलति ।।
गङ्गासागरमम्बरं शशिकला नागाधिपः क्ष्मातलं ।
सर्वज्ञत्वमधीश्वरत्वमगमत्त्वां मां तु भिक्षाटनम् ।।२३९।।

हे देव! शिवजी का आधा शरीर विष्णु भगवान् ने ले लिया और आधा पार्वतीजी ने, जब पृथ्वी पर शिवजी अङ्गहीन हुए, तो गङ्गाजी सागर को चली गईं, चन्द्रमा की कला आकाश को, शेषजी रसातल को, सर्वज्ञता आपको और भिक्षाटन मुझे प्राप्त हुआ ।।२३९।।

राजा अक्षरलक्षं ददौ । ततः कदाचिद् द्वारपाल आगत्य प्राह । देव! कोऽपि द्वारि तिष्ठतीति । राजो प्रवेशयेति प्राह । ततः प्रविष्टो विद्वान् पठति ।।

राजा ने प्रत्येक अक्षर पर एक-एक लाख रुपये दिये । फिर किसी दिन द्वारपाल ने आकर कहा- हे देव! कोई विद्वान् द्वार पर खड़ा है । राजा ने कहा- भेज दो । तब सभा में जाकर विद्वान् ने कहा-

क्षणमप्यनुगृह्णाति यं दृष्टिस्तेऽनुरागिणी ।
ईर्ष्ययेव त्यजत्याशु तं नरेन्द्र दरिद्रता ।।२४०।।

हे नरेन्द्र! आपकी स्नेहमयी दृष्टि जिस पर क्षणमात्र भी अनुग्रह करती है, उसे दरिद्रता ईर्ष्या की समान शीघ्र ही त्याग देती है ।।२४०।।

राजा लक्षं ददौ । पुनरपि पठति कविः ।।

राजा ने उसे लाख रुपये दिये । फिर भी कवि ने पढ़ा-

केचिन्मूलाकुलाशाः कतिचिदपि पुनः स्कन्धसम्बन्धभाजः ।
छायां केचित्प्रपन्नाः प्रपदमपि परे पल्लवानुन्नयन्ति ।।
अन्ये पुष्पाणि पाणौ दधति तदपरे गन्धमात्रस्य पात्रं ।
वागवल्ल्याः किन्तु मूढाः फलमहह नहि द्रष्टुमप्युत्सहन्ते ।।२४१।।

हे देव! कोई मनुष्य वृक्ष के मूल की आशा करते हैं, कोई स्कन्धों की, कोई छाया की, कोई जड़ की, कोई कोमल पत्तियों की आशा लगाते हैं, कोई फूलों को हाथ में लेते हैं और कोई वृक्ष की गन्ध को ग्रहण करते हैं, परन्तु आश्चर्य यह है कि, मूढ़ मनुष्य वाणी रूपी वेल के फल देखने की भी लालसा नहीं करते हैं ।।२४१।।

एतदाकर्ण्य बाणः प्राह ।

यह सुनकर बाण कवि ने कहा-

परिच्छिन्नः स्वादोऽमृतगुडमधुक्षौद्रपयसां।
कदाचिच्चाभ्यासाद्व्रजति ननु वैरास्यमधिकम्।।
प्रियाबिम्बोष्ठे वा रुचिरकविवाक्येऽप्यनवधि-
र्नवानन्दः कोऽपि स्फुरति तु रसोऽसौ निरुपमः।।२४२।।

अमृत, गुड़, शहद, मधु और दूध का स्वाद अल्प ही है, कारण कि कभी घट जाता है और कभी अधिक सेवन करने से विरस हो जाता है, लेकिन प्यारी के अधरामृत और श्रेष्ठ कवि के पद में अतुल आनन्द और अनुपम रस उदय होता है, जिसका स्वाद निराला है।।२४२।।

ततो राजा लक्षं दत्तवान्। ततः कदाचित् सिंहासनमलङ्कुर्वाणे श्रीभोजे द्वारपाल आगत्य प्राह। देव! वाराणसीदेशादागतः कोऽपि भवभूतिर्नाम कविर्द्वारि तिष्ठतीति। राजा प्राह प्रवेशयेति। ततः प्रविष्टः सोऽपि सभामगात्। ततः सभ्याः सर्वे तदागमनेन तुष्टा अभवन्। राजा च भवभूतिं प्रेक्ष्य प्रणमति स्म। स च स्वस्तीत्युक्त्वा तदाज्ञयोपविष्टो भवभूतिः प्राह। देव!

तब राजा ने लाख रुपये दिये। फिर किसी दिन राजसिंहासन पर बैठे हुए भोज से द्वारपाल ने आकर कहा- हे देव! कोई भवभूति नामक विद्वान् काशीधाम से आकर द्वार पर खड़ा है। राजा ने कहा- अच्छा, भेज दो। तब भवभूति सभा में पधारे, तो समस्त पण्डित मण्डली उन्हें देखकर प्रसन्न हुई। राजा ने भवभूति को देख कर प्रणाम किया। भवभूति ने 'स्वस्ति' कहकर राजा की आज्ञा पाकर बैठकर कहा- हे देव!

नानीयन्ते मधुनि मधुपाः पारिजातप्रसूनै-
र्नाभ्यर्थ्यन्ते तुहिनरुचिनश्चन्द्रिकायां चकोराः।।
अस्मद्वाङ्माधुरिमधुरमापद्य पूर्वावतारा:।
सोल्लासाः स्युःस्वयमिह बुधाः किं मुधाभ्यर्थनाभिः।।२४३।।

शहद पर मक्खियों को कौन बुलाने जाता है? चन्द्र की चाँदनी में चकोरों को, कल्पवृक्ष के फूलों से कौन आवाहन करता है? बरन् यह सब स्वयं ही आते हैं, इसी भाँति मेरी वाणी की मधुरता से इस सभा में पूर्व के परिचित पण्डित जन स्वयं प्रसन्न हो जायेंगे, अतएव वृथा प्रार्थना करने से क्या है?।।२४३।।

नास्माकं शिबिका न कापि कटकाद्यालङ्क्रिया सत्क्रिया।

नोत्तुङ्गस्तुरगो न कश्चिदनुगो नैवाम्बरं सुन्दरम् ।।
किन्तु क्ष्मातलवर्त्यशेषविदुषां साहित्यविद्याजुषां ।
चेतस्तोषकरी शिरोगतिकरी विद्यानवद्यास्ति नः ।।२४४।।

हे देव! न हमारे पास पालकी है, न गाड़ी है, न आभूषण हैं, न सत्कार है, न ऊँचा घोड़ा है, न सेवक है और न सुन्दर वस्त्र ही है; किन्तु साहित्य विद्या को सेवन करने वाले पृथ्वी के निवासी समस्त विद्वानों के चित्त को प्रसन्न करने वाली मुकुट स्वरूपिणी निर्दोष श्रेष्ठ विद्या है ।।२४४।।

इत्याकर्ण्य बाणपण्डितपुत्रः प्राह ।
आः पाप! धाराधीशसभायामहङ्कारं मा कृथा ।।

यह सुनकर बाण पण्डित के पुत्र ने कहा- बड़े खेद की बात है, हे पापी! राजा भोज की सभा में अहङ्कार मत करो।

निःश्वासोऽपि न निर्याति बाणे हृदयवर्त्मनि ।
किं पुनः प्रकटाटोपपदबद्धा सरस्वती ।।२४५।।

जब बाण हृदय में प्रवेश कर जाता है, तो ऊर्ध्व श्वास नहीं निकलता है, फिर सामने पाखण्डी की भाँति आडम्बर युक्त कविता क्या हो सकती है? ।।२४५।।

ततो भवभूतिः पराभवमसहमानः प्राह ।

तब भवभूति तिरस्कार को न सह कर बोला-

हठादाकृष्टानां कतिपयपदानां रचयिता ।
जवः स्पर्धालुश्चेदहह कविना वश्यवचसा ।।
भवेदद्य श्वो वा किमिह बहुना पापिनि कलौ ।
घटानां निर्मातुस्त्रिभुवनविधातुश्च कलहः ।।२४६।।

बड़े खेद की बात है कि कुछ पद कहीं से खींच कर बोलने वाला वाणी को वशीभूत रखने वाले कवि के साथ ईर्ष्या करता है। इस कलियुग में घट को बनाने वाला कुम्हार त्रिलोकी रचने वाले ब्रह्माजी के साथ अवश्य कलह करेगा ।।२४६।।

पुनराह-

फिर कहा-

कालिदासकवेर्वाणी कदाचिन्मद्गिरा सह ।
कलयत्यद्य साम्यं चेद्व्रीता भीता पदेपदे ।।२४७।।

कालिदास कवि की वाणी किसी समय मेरी वाणी में मिल जाती है, सो वह

भी अब पद-पद में भयभीत के समान मिलती है ।।२४७।।

ततः कालिदासः प्राह। सखे भवभूते! महाकविरसि अत्र किमु वक्तव्यम् ।

तब कालिदास ने कहा- हे मित्र भवभूति! तुम निःसन्देह महाकवि हो।

एषा धारेन्द्रपरिषन्महापण्डितमण्डिता ।
आवयोरन्तरं वेत्ति राजा वा शिवसन्निभः ।।२४८।।

महापण्डितों से भूषित यह राजा भोज की सभा वा शिवजी के समान राजा हमारे-तुम्हारे अन्तर को जानते हैं ।।२४८।।

तच्छ्रुत्वा राजा प्राह। युवाभ्यां रत्यन्तो वर्णनीय इति। भवभूतिः -

उसे सुनकर राजा ने कहा- आप मैथुन के अन्त का वर्णन करें। भवभूति ने कहा-

मुक्तभूषणमिन्दुबिम्बमजनि व्याकीर्णतारं नभः ।
स्मारं चापमपेतचापलमभूदिन्दीवरे मुद्रिते ।।
व्यालीनं कलकण्ठमन्दरणितं मन्दानिलैर्मन्दितं ।
निष्पन्दस्तबका च चम्पकलता साभून्न जाने ततः ।।२४९।।

चन्द्रबिम्ब (मुख) अलङ्कारों से हीन हो गया, इधर-उधर नक्षत्रों के विखरने से (करधनी के घुंघरू छिटकने से) आकाश (कमर) की दशा मन्द हुई, कामदेव का धनुष (भृकुटी) अचल हो गई, नील कमल (नेत्र) मुंद गये, सुन्दर कण्ठ का शब्द बन्द हो गया, मन्द पवन धीमी पड़ गई (अर्थात् श्वास चलने लगी), सुवर्ण चम्पे की वेल (युवती) अचल गुच्छों (स्तनों) से युक्त हो गई, फिर न जाने क्या हुआ? ।।२४९।।

ततः कालिदासः प्राह ।

फिर कालिदास ने कहा-

स्विन्नं मण्डलमैन्दवं विलुलितं स्रग्भारनद्धं तमः ।
प्रागेव प्रथमानकैतकशिखालीलायितं सुस्मितम् ।।
शान्तं कुण्डलताण्डवं कुवलयद्वन्द्वं तिरोमीलितं ।
वीतं विद्रुमसीत्कृतं नहि ततो जाने किमासीदिति ।।२५०।।

चन्द्रमण्डल (मुख) पर पसीना आ गया, इससे पहले फूलों से बंधे हुए अन्धकार (केशपाश) खुल गये, स्मित ने पहले ही केतकाग्र की लीला की, कुण्डलों का हिलना रुक गया, दोनों नीलकमल (नेत्र) मुंद गये और मूङ्गों का (होठों का) सी-

सी शब्द जाता रहा, फिर न जाने क्या हुआ ? ।।२५०।।

राजा कालिदासं प्राह– सुकवे! भवभूतिना सह साम्यं तव न वक्तव्यम्। भवभूतिराह। देव! किमितिवारयसि। राजा सर्व–प्रकारेण कविरसि। ततो बाणः प्राह। राजन् भवभूतिःकविश्चे–त्कालिदासो व्यक्तव्यो वा। राजा– बाणकवे! कालिदासः कविर्न किन्तु पार्वत्याः कश्चिदवनौ पुरुषावतार एव। ततो भवभूतिराह। देव! किमत्र प्राशस्त्यं भवति। राजा प्राह भवभूते! किमु वक्तव्यं प्राशस्त्यं कालिदासश्लोके यतः कैतकशिखालीलायितं सुस्मितमिति पठितम्। ततो भवभूतिराह। देव! पक्षपातेन वदसीति। ततः कालिदासः प्राह। देव! अपख्यातिर्मा भूत् भुवनेश्वरीदेवतालयं गत्वा तत्सन्निधौ तां पुरुस्कृत्य धटे संशोधनीयं त्वया। ततो भोजः सर्वकविवृन्दवेदितः सन् भुवनेश्वरीदेवालयं प्राप्य तत्र तत्सन्निधौ भवभूतिहस्ते धटं दत्त्वा श्लोकद्वयं च तुल्यपत्रद्वये लिखित्वा तुलायां मुमोच। ततो भवभूति–भागे लघुत्वोद्धूताम् ईषदुन्नतिं ज्ञात्वा देवी भक्तपराधीना सदसि तत्परिभवो मा भूदिति स्वावतंसकह्लारमकरन्दं वामकरनखाग्रेण गृहीत्वा भवभूतिपत्रे चिक्षेप। ततः कालिदासः प्राह।

राजा ने कालिदास से कहा– हे सुकवे! भवभूति के साथ तुम्हारी बराबरी नहीं हो सकती। भवभूति ने कहा– हे देव! ऐसा क्यों कहते हो? राजा बोला– तुम सब प्रकार से कवि हो। फिर बाण कवि ने कहा– हे राजन्। जो भवभूति कवि है, तो कालिदास को भी कहिये। राजा ने कहा– हे बाण कवि! कालिदास कवि नहीं है, किन्तु पृथ्वी पर पार्वती का कोई पुरुष रूपी अवतार है। तब भवभूति ने कहा– हे देव! यहाँ क्या उत्तमता है? राजा ने कहा– हे भवभूति! उत्तमता क्या कहूँ? कालिदास के श्लोक में जो **''कैतकशिखालीलायितं सुस्मितम्''** यह पद है, सो श्रेष्ठ कविता है। तब भवभूति ने कहा हे देव! पक्षपात से कहते हो। तब कालिदास ने कहा– हे देव! किसी का तिरस्कार न हो अतएव भुवनेश्वरी देवी के भवन में जाकर देवी के समीप कविता को रखकर तराजू से परीक्षा कीजिये। तब भोज ने सब कवियों के कहने से भुवनेश्वरी देवी के मन्दिर में जाकर देवी के समीप भवभूति के हाथ में तराजू देकर दोनों श्लोक चाक से पत्र में लिखकर तराजू के दो पल्लों में रखे। भवभूति ने तराजू उठाई, तो भवभूति का पत्र हलके पन से ऊपर उठने लगा, यह देखकर भक्तधीन देवी ने विचारा कि सभा में मेरे भक्त का अपमान न हो जाय, इसलिये निज कर्णभूषण

कमल की रेणु को बायें हाथ द्वारा भवभूति के पत्र पर गिराने लगी, तब कालिदास ने कहा-

अहो मे सौभाग्यं मम च भवभूतेश्च भणितं।
धटायामारोप्य प्रतिफलति तस्यां लघिमनि ।।
गिरां देवी सद्यः श्रुतिकलितकह्लारकलिका- ।
मधूलीमाधुर्यं क्षिपतिपरिपूर्त्यै भगवती ।।२५१।।

धन्य है मेरे सौभाग्य को जो मेरी और भवभूति की कविता तराजू में रखी जाने पर जब भवभूति की कविता हलकी होने से ऊपर उठने लगी तभी वाणियों की अधिष्ठातृ देवी अपने कर्ण में रखी कह्लार कली की धूली को पूर्ण करने के लिये भवभूति के पत्र पर गिराने लगीं ।।२५१।।

ततः कालिदासपादयोः पतति भवभूतिः। राजानं च विशेषज्ञं मनुते स्म। ततो राजा भवभूतिकवये शतमत्तगजान् ददौ। अन्यदा राजा धारानगरे रात्रावेकाकी विचरन् काञ्चन स्वैरिणीं सङ्केतं गच्छन्तीं दृष्ट्वा पप्रच्छ। देवि! का त्वमेकाकिनी मध्यरात्रे क्व गच्छसीति। ततश्चतुरा स्वैरिणी सा तं रात्रौ विचरन्तं श्रीभोजं निश्चित्य प्राह ।।

तब भवभूति कालिदास के चरणों में गिर पड़ा और राजा को भी विशेष जानने वाला जाना। फिर राजा ने भवभूति को सौ मदमाते हाथी दिये। एक दिन राजा ने धारानगरी में अकेले विचरते हुए किसी स्वैरिणी स्त्री को सङ्केत स्थान पर जाती हुई देखकर पूछा कि- हे देवि! तुम कौन हो? और आधी रात में अकेली कहाँ जाती हो? तब उस स्वैरिणी चतुरा स्त्री ने रात्रि में विचरते हुए राजा भोज को निश्चित कर कहा-

त्वत्तोऽपि विषमो राजन् विषमेषुः क्षमापते।
शासनं यस्य रुद्राद्या दासवन्मूर्ध्नि कुर्वते ।।२५२।।

हे राजन! आपसे प्रबल कामदेव का शासन है, जिसकी आज्ञा को रुद्रादि देवगण दास की समान अपने मस्तक पर धारण करते हैं ।।२५२।।

ततस्तुष्टो राजा दोर्दण्डादादाय अङ्गदं वलयं च तस्यै दत्तवान्। सा च यथास्थानं प्राप। ततो वर्त्मनि गच्छन् क्वचिद्गृहे एकाकिनी रुदतीं नारीं दृष्ट्वा किमर्थमर्धरात्रे रोदिति किं दुःखमेतस्या इति विचारयितुमेकमङ्गरक्षकं प्राहिणोत्। ततोऽगरक्षकः पुनरागत्य प्राह। देव! मया पृष्टा यदाह तच्छृणु ।।

तब प्रसन्न होकर राजा ने अपनी भुजाओं में से निकाल कर बाजूबन्द और कङ्कण उसे दिये। वह अपने स्थान को चली गई। पश्चात् मार्ग में विचरते हुए राजा ने किसी घर में अकेली राती हुई स्त्री को देखकर कहा- यह क्यों रात्रि में रो रही है, इसे क्या दुःख है ? यह विचार कर अपने सेवक को भेजा, सेवक ने आकर कहा- हे देव ! मेरे पूछने पर उसने जो कहा, उसे सुनिये-

वृद्धो मत्पतिरेष मञ्चकगतः स्थूणावशेषं गृहं।
कालोऽयं जलदागमः कुशलिनी वत्सस्य वार्तापि नो।।
यत्नात्सञ्चिततैलबिन्दुघटिका भग्नेति पर्याकुला।
दृष्ट्वा गर्भभरालसां निजवधूं श्वश्रूश्चिरं रोदिति।।२५३।।

यह मेरा बूड़ा पति पलंग पर पड़ा है, घर में और कोई पुरुष नहीं है, इस वर्षा ऋतु में मेरे पुत्र का कुशल समाचार भी नहीं मिला, बड़ी सावधानी से रखने पर भी तेल की कलसियां फूट गईं, इसलिये व्याकुल होकर सास गर्भ के भार से दुःखी अपनी पुत्रवधु को देखकर बहुत रो रही है।।२५३।।

ततः कृपावारिधिः क्षोणीपालस्तस्यै लक्षं ददौ। अन्यदा कोङ्कणदेशवासी विप्रो राज्ञे स्वस्तीत्युक्त्वा प्राह।।

तब कृपासागर राजा ने उस स्त्री को लाख रुपये दिया। एक समय कोंकण देश वासी ब्राह्मण राजा को 'स्वस्ति' कह कर बोला-

शुक्तिद्वयपुटे भोज यशौब्धौ तव रोदसी।
मन्ये तदुद्भवं मुक्ताफलं शीतांशुमण्डलम्।।२५४।।

हे राजा भोज! आपके यश रूपी सागर में आकाश और भूमि रूपी जो दो सीपियों का पुट है, उसमें उत्पन्न चन्द्र मण्डल को मोती मानता हूँ।।२५४।।

राजा तस्मै लक्षं ददौ। अन्यदा काश्मीरदेशात्कोऽपि कौपीनावशेषो राजनिकटस्थकवीन् कनकमाणिक्यपट्टदुकूलालङ्कृतान् आलोक्य राजानं प्राह।।

राजा ने उसे लाख रुपये दिये। एक समय कौपीन धारी किसी विद्वान् ने काश्मीर देश से आकर सुवर्ण, माणिक, पाट, रेशम से भूषित राजा के पास कवियों को देख कर कहा-

नो पाणी वरकङ्कणक्वणयुतौ नो कर्णयोः कुण्डले।
क्षुभ्यत्क्षीरधिदुग्धमुग्धमहसी नो वाससी भूषणम्।।

दन्तस्तम्भविकासिका न शिबिका नाश्वोऽपि विश्वोन्नतो।
राजन्राजसभासु भाषितकलाकौशल्यमेवास्ति नः ।।२५५।।

हे राजन्! हमारे हाथों में श्रेष्ठ शब्द वाले कङ्कण नहीं हैं, कानों में कुण्डल नहीं है, क्षीरसागर के समान श्वेत वस्त्र नहीं हैं, हाथी दांत के समान प्रकाश वाली पालकी नहीं है और ऊँचा घोड़ा नहीं है; परन्तु राजसभा में कहने योग्य केवल कविता का कला-कौशल हमारे पास है।।२५५।।

ततस्तस्मै राजा लक्षं ददौ। अन्यदा राजा रात्रौ चन्द्रमण्डलं दृष्ट्वा तदन्तःस्थकलङ्कं वर्णयति स्म।।

राजा ने उसे लाख रुपये दिये। एक समय राजा ने रात्रि में चन्द्र मण्डल को देखकर उसमें स्थित कलङ्क का वर्णन किया।

अङ्कं केऽपि शशङ्किरे जलनिधेः पङ्कं मरे मेनिरे।
सारङ्गं कतिचिच्च सञ्जगदिरे भूच्छायमैच्छन्परे।।

चन्द्र मण्डल में कोई कलङ्क की शङ्का करते हैं, कोई समुद्र को कीच मानते हैं, कोई सारङ्ग कहते हैं और कोई पृथ्वी की छाया मानते हैं।

इति राजा पूर्वार्द्धं लिखित्वा कालिदासहस्ते ददौ। ततः स तस्मिन्नेव क्षणे उत्तरार्द्धं लिखति कविः।।

इस भाँति पूर्वार्द्ध लिखकर कालिदास के हाथ में दिया। तब कालिदास ने उसी समय उत्तरार्द्ध लिख दिया।-

इन्दौ यद्दलितेन्द्रनीलशकलश्यामं दरीदृश्यते।
तत्सान्द्रं निशिपीतमन्धतमसं कुक्षिस्थमाचक्ष्महे।।२५६।।

चन्द्रमा में जो दलित इन्द्रनील

मणि के समान श्यामता दृष्टि आती है, उसके विषय में मैं यह कहता हूँ कि चन्द्रमा ने रात्रि का जो घोर अन्धकार पान किया, उसी का कोख में भान होता है।।२५६।।

राजा प्रत्यक्षरं लक्षमुत्तरार्द्धस्य दत्तवान्। ततो राजा कालि-दासकवितापद्धतिं वीक्ष्य चमत्कृतः पुनराह। सखे! अकलङ्कं चन्द्रमसं व्यावर्णयेति। ततः कविः पठति।।

राजा ने उत्तरार्द्ध के प्रत्येक अक्षर पर एक-एक लाख रुपये दिये। फिर राजा ने कालिदास की कविता को देखकर चमत्कृत होकर कहा- हे सखे! निष्कलङ्क चन्द्रमा का वर्णन करो। तब कवि ने पढ़ा-

लक्ष्मीक्रीडातडागो रतिधवलगृहं दर्पणो दिग्वधूनां।
पुष्पं श्यामालतायास्त्रिभुवनजयिनो मन्मथस्यातपत्रम्।।
पिण्डीभूतं हरस्य स्मितममरधुनीपुण्डरीकं [1]मृगाङ्कः-।
ज्योत्स्नापीयूषवापी जयति सितवृषस्तारकागोलकस्य।।२५७।।

यह चन्द्र लक्ष्मी की क्रीड़ा का सरोवर है, रति का श्वेत भवन है, दिग्रूपी बहुओं का दर्पण है, श्यामावेल का फूल है, त्रिलोकी को जीतने वाले कामदेव का छत्र है, शिवजी का पिण्डीभूत मन्दहास है, आकाशगङ्गा का कमल है, अपनी किरण जाल के सुधा की बावड़ी है और तारा गोल का श्वेत बैल है, इस भाँति विचित्र रूप से चन्द्रमा की श्रेष्ठता कही है।।२५७।।

राजा पुनः प्रत्यक्षरं लक्षं ददौ। एकदा कश्चिद्दूरदेशादागतो वीणाकविराह।।

राजा ने फिर प्रत्येक अक्षर पर एक-एक लाख रुपये दिये। एक समय किसी दूर देश से आकर वीणा कवि ने कहा-

तर्कव्याकरणाध्वनीनधिषणो नाहं न साहित्यवि-
न्नो जानामि विचित्रकाव्यरचनाचातुर्य्यमत्यद्भुतम्।।
देवी क्वापि विरिञ्चिवल्लभसुता पाणिस्थवीणाकल-
क्वाणाभिन्नरवं तथापि किमपि ब्रूते मुखस्था मम।।२५८।।

न्याय और व्याकरण से मञ्जी हुई मेरी बुद्धि नहीं है, न मैं साहित्य को जानता हूँ और न विचित्र काव्य को कह सकता हूँ, परन्तु कोई ब्रह्मा की प्यारी पुत्री देवी (सरस्वती) मेरे मुख में विराजमान् है, तो भी यह हाथ में होने से वीणा के कल (मनोहर) शब्द के समान शब्द कहती है।।२५८।।

राजा तस्मै लक्षं ददौ। बाणस्तस्य सुललितप्रबन्धं श्रुत्वा प्राह। देव!

राजा ने उसे लाख रुपये दिये। बाण कवि ने उसके सुललित प्रबन्ध को सुनकर कहा- हे देव!

मातङ्गीमिव माधुरीं ध्वनिविदो नैव स्पृशन्त्युत्तमां।
व्युत्पत्तिं कुलकन्यकामिव रसोन्मत्ता न पश्यन्त्यमी।।

१- मृगाङ्को ज्योत्स्नापीयूषवापि जनयति निकरस्तारकागोलकस्य। इति तैलङ्गपुस्तकपाठो युक्त इति भाति।

कस्तूरीघनसारसौरभसुहृद्व्युत्पत्तिमाधुर्ययो-
र्योगः कर्णरसायनं सुकृतिनः कस्यापि सम्पद्यते ।।२५९।।

ध्वनि के ज्ञाता इस कविता में मदोन्मत्त हथिनी के समान माधुरी ध्वनि को नहीं स्पर्श करते हैं, यह रसीले कवि भी कुलीन कन्या की भाँति उत्तम व्युत्पत्ति को नहीं देखते हैं। कस्तूरी और कपूर के समान गन्ध युक्त एवं कानों में रसायन रूपी व्युत्पत्ति और माधुरी का जो संयोग है, उसे कानों को रसायन रूपी कहा है तो वह यहां किसी सुकृति को प्राप्त होता है ।।२५९।।

अन्यदा राजा सीतां प्रातः प्राह। देवि! प्रभातं व्यावर्णयेति। सीता प्राह ।।

एक दिन राजा ने सीता से प्रातःकाल कहा कि- हे देवि! प्रभात का वर्णन करो। सीता ने कहा-

विरलविरलाः स्थूलास्तारा: कलाविव सज्जना।
मन इव मुनेः सर्वत्रैव प्रसन्नमभून्नभः ।।
अपसरति च ध्वान्तं चित्तात्सतामिव दुर्जनो।
व्रजति च निशा क्षिप्रं लक्ष्मीर्निरुद्यमना इव ।।२६०।।

कलियुग में सज्जन के समान एकाध स्थूल तारा दृष्टि में आया, मुनि मन के समान आकाश प्रसन्न हो गया, सत्पुरुषों के चित्त से दुर्जन के समान अन्धकार दूर हो गया। वैसे ही निरुद्यमों की लक्ष्मी के समान रात्रि बीत गई ।।२६०।।

राजा लक्षं दत्त्वा कालिदासं प्राह। सखे सुकवे! त्वमपि प्रभातं व्यायर्णयेति। कालिदासः ।।

राजा ने उसे लाख रुपये देकर कालिदास से कहा- हे सखे, सुकवे! आप भी प्रभात का वर्णन करिये। तो कालिदास ने कहा-

अभूत्पिङ्गा प्राची रसपतिरिव प्राश्य कनकं।
गतच्छायश्चन्द्रो बुधजन इव ग्राम्यसदसि ।।
क्षणात्क्षीणास्तारा नृपतय इवानुद्यमपरा।
न दीपा राजन्ते विनयरहितानामिव गुणाः ।।२६१।।

सुवर्ण से मिलने पर पारा जैसे पीला पड़ जाता है, वैसे ही पूर्व दिशा पीली हो गई, गँवारों की सभा में जैसे पण्डित शोभाहीन हो जाता है, वैसे ही चन्द्रमा शोभा रहित हो गया। निरुद्यमी राजा के क्षीण होने के समान समस्त तारे क्षण काल में क्षीण

हो गये। बिना विनय के जैसे गुण प्रकाशित नहीं होते, वैसे ही दीपक प्रकाश हीन हो गये ।।२६१।।

राजा तस्मै प्रत्यक्षरलक्षं ददौ। अन्यदा द्वारपाल आगत्य प्राह। देव! क्वापि मालाकारपत्नी द्वारि तिष्ठतीति। राजा प्रवेशयेति। ततः प्रवेशिता सा च नमस्कृत्य पठति।।

राजा ने उन्हें एक-एक अक्षर पर एक-एक लाख रुपये दिये। एक दिन द्वारपाल ने आकर कहा- हे देव! कोई मालिन द्वार पर खड़ी है। राजाने कहा- ले आओ। तब उस मालिन ने सभा में आकर प्रणाम करके पढ़ा-

समुन्नतघनस्तनस्तबकचुम्बितुम्बीफल-
क्वणन्मधुरवीणया विबुधलोकलोलद्भुवा।।
त्वदीयमुपगीयते हरकिरीटकोटिस्फुरन्-
तुषारकरकन्दलीकिरणपूरगौरं यशः।।२६२।।

हे राजन्। उठे कठोर और गुच्छे वाले स्तनों को जिसकी तूँबी चूमती है, ऐसी मधुर शब्द वाली वीणा को छाती से लगाकर स्वर्गवासिनी स्त्रियां आपके यश को गाया करती हैं, सो वह आपका यश शङ्कर के मुकुट में अग्रभाग पर विराजमान चन्द्रमा की किरणों के समान पूर्ण स्वच्छ और श्वेत है।।२६२।।

राजा अहो महती पदपद्धतिरिति तस्यै प्रत्यक्षरलक्षं ददौ। अन्यदा रात्रौ राजा धारानगरे विचरन् कस्यचिद्गृहे कामपि कामिनीमुलूखलपरायणां ददर्श। राजा तां तरुणीं पूर्ण चन्द्राननां सुकुमाराङ्गीं विलोक्य तत्करस्थं मुसलं प्राह। हे मुसल! एतस्याः करपल्लवस्पर्शेनापि त्वयि किसलयं नासीत् तर्हि सर्वथा काष्ठमेव त्वमिति। ततो एकं चरणं पठति स्म।।

राजा ने कहा- अहा! पद रचना बड़ी उत्तम है, यह विचार कर उसके प्रत्येक अक्षर पर एक-एक लाख रुपये दिये। एक दिन धारानगरी में विचरते हुए अन्न कूटती किसी स्त्री को देखा। राजा ने उस युवती चन्द्रवदनी और सुकुमारी कोमलाङ्गी को देखकर उसके हाथ में स्थित मूसल से कहा- हे मूसल! इस युवती के करकमलों को छूने पर भी जो तू नहीं पसीजा, तो पूर्णतया काष्ठ ही का है। फिर राजा ने एक चरण पढ़ा-

मुसल किसलयं ते तत्क्षणाद्यन्न जातम्।

हे मूसल! जा तू उसी समय नहीं पसीजा।

ततो राजा प्रातस्सभायां समागतं कालिदासं वीक्ष्य 'मुसल किसलयं ते तत्क्षणाद्यन्न जातम्' इति पठित्वा सुकवे त्वं चरणत्रयं पठेत्युवाच। ततः कालिदासः प्राह।।

फिर राजा ने प्रातःकाल सभा में कालिदास के आने पर पूर्वोक्त चरण पढ़कर कहा- हे सुकवे! तीन चरण तुम पढ़ो। तब कालिदास ने कहा-

जगति विदितमेतत्काष्ठमेवासि नूनं।
तदपि च किल सत्यं कानने वर्धितोऽसि।।
नवकुवलयनेत्रापाणिसङ्गोत्सवेऽस्मिन्।
मुसल किसलयं ते तत्क्षणाद्यन्न जातम्।।२६३।।

हे मूसल! यह बात जगत् प्रसिद्ध है कि तू काष्ठ का है और वन में बढ़ा है, फिर कमलनयनी स्त्री के हाथ में इस उत्सव पर आते ही तू नहीं पसीजा।।२६३।।

ततो राजा चरणत्रयस्य प्रत्यक्षरं लक्षं ददौ। अन्यदा राजा दीर्घकालं जलकेलिं विधाय पश्रिान्तस्तत्तीरस्थवटविटपिच्छायायां निषण्णस्तत्र कश्चित्कविरागत्य प्राह।।

फिर राजा ने तीन चरणों के प्रत्येक अक्षर पर एक-एक लाख रुपये दिये। एक समय राजा चिरकाल तक जलक्रीड़ा करने से थककर सरोवर के किनारे वटवृक्ष की छाया में बैठ गया। वहाँ किसी कवि ने आकर कहा;-

छन्नं सैन्यरजोभरेण भवतः श्रीभोजदेव क्षमा-
रक्षादक्षिण दक्षिणक्षितिपतिः प्रेक्ष्यान्तरिक्षं क्षणात्।।
निःशङ्को निरपत्रपो निरनुगो निर्बान्धवो निःसुह-
न्निःस्त्रीको निरपत्यको निरनुजो निर्हाटको निर्गतः।।२६४।।

हे भोजदेव! हे क्षमा और रक्षा में दक्ष! आपकी सेना की रज के उड़ने से धूल से आच्छादित आकाश को देखकर दक्षिण देश का राजा क्षणकाल में निःशङ्क, लज्जाहीन, सेवकहीन, बान्धवहीन, मित्रहीन, स्त्री, सन्तान, अनुज और धनहीन होकर बाहर निकल गया।।२६४।।

किञ्च-

और भी-

अकाण्डधृतमानसव्यवसितोत्सवैः सारसै-
रकाण्डपटुताण्डवैरपि शिखण्डिनां मण्डलैः।।

दिशः समवलोकिताः सरसनिर्भरप्रोल्लस-
द्भवत्पृथवरूथिनीरजनिभूरजः श्यामलाः ।।२६५।।

बिना अवसर मानस में निश्चय कर उत्सव युक्त सारसों से और बिना अवसर सुन्दर नाचने वाले मोरों के मण्डल से वीर रस से उत्तेजित आपकी विशाल सेना से उड़ी हुई धूल से रात्रि के समान श्याम वर्ण वाली दिशायें जान पड़ती हैं ।।२६५।।

ततो राजा लक्षद्वयं ददौ । तदानीमेव तस्य शाखायामेकं काकं रटन्तं प्रेक्ष्य कोकिलं चान्यशाखायां कूजन्तं वीक्ष्य देवजयनामा कविराह ।।

फिर राजा ने दो लाख रुपये दिये । उसी काल वट वृक्ष की शाखा पर बोलते हुए काक को और दूसरी शाखा पर पैठी बोलती हुई मैना को देखकर देवजय नामक कवि ने कहा–

नो चारू चरणौ न चापि चतुरा चञ्चुर्न वाच्यं वचो ।
नो लीला चतुरा गतिर्न च शुचिः पक्षग्रहोऽयं तव ।।
क्रूरक्रेङ्कृतिनिर्भरां गिरमिह स्थाने वृथैवोद्गिरन् ।
मूर्ख ध्वांक्ष न लज्जसेऽप्यसदृशं पाण्डित्यमुन्नाटयन् ।।२६६।।

हे काक! न तो तेरे सुघर चरण है, न सुन्दर चोंच है, न चतुर वचन बोलने आते हैं, न मनोहारिणी लीला ही करता है और न तेरे दोनों पङ्ख ही सुन्दर हैं, फिर भी क्रूर तुझे क्वाँ–क्वाँ शब्द से वाणी निकालते हुए मूर्ख के समान चतुराई दिखाते हुए लाज नहीं आती ।।२६६।।

तत एनां देवजयकविना काकमिषेण विरचितां स्वगर्हणां मन्यमानस्तत्स्पर्धालुर्हरिशर्मा नाम कविः कोपेनेर्ष्यापूर्वं प्राह ।।

देवयज नामक कवि के काक के माध्यम से ऐसा कहने पर हरि शर्मा ने अपनी निन्दा मान कर डाह के साथ क्रोध करते हुए कहा–

तुल्यवर्णच्छदैः कृष्णः कोकिलैः सह सङ्गतः ।
केन व्याख्यायते काकः स्वयं यदि न भाषते ।।२६७।।

रङ्ग, रूप और पङ्खों से कोयल के समान काले और कोयल के साथ समता रखने वाले काक रूपी यदि आप न बोलते तो कैसे जाना जाता ? ।।२६७।।

ततो राजा तयोर्हरिशर्मदेवजययोः अन्योन्यवैरं ज्ञात्वा मिथ आलिङ्गनादिवस्त्रालङ्कारादिदानेन च मित्रत्वं व्यधात् । अन्यदा राजा

यानमारुह्य गच्छन् वर्त्मनि कश्चित्तपोनिधिं दृष्ट्वा तं प्राह। भवादृशानां दर्शनं भाग्यायत्तम्। भवतां क्व स्थिति। भोजनार्थं के वा प्रार्थ्यन्त इति। ततः स राजवचनमाकर्ण्य तपोनिधिराह॥

फिर राजा ने हरि शर्मा और देवजय में बैर जान कर आपस में भेंट कराकर वसन आदि आभूषण देकर मित्रता करा दी। एक समय सवारी में बैठकर मार्ग में जाते हुए किसी तपस्वी को देखकर राजा ने कहा- आपके समान दर्शन भाग्य से होते हैं। आप कहाँ रहते हो और भोजन की प्रार्थना किस से करते हो? तब तपोनिधि ने राजा की बात सुनकर कहा-

फलं स्वेच्छालभ्यं प्रतिवनमखेदं क्षितिरुहां।
पयः स्थानेस्थाने शिशिरमधुरं पुण्यसरिताम्॥
मृदुस्पर्शा शय्या सुललितलतापल्लवमयी।
सहन्ते सन्तापं तदपि धनिनां द्वारि कृपणाः॥२६८॥

हे राजन्! वनों में वृक्षों के फल विना ही श्रम के मिल जाते हैं, पवित्र नदियों का जल ठण्डा व मधुर स्थान-स्थान पर मिलता है, सुन्दर वेलें और फूल पत्तों वाली कोमल शय्या है, तो भी धनियों के द्वारे जो कृपण रहते हैं, वे दुःख ही सहते हैं॥२६८॥

राजन्! वयं कमपि नाभ्यर्थयामः न गृह्णीमश्चेति राजा तुष्टो नमति। तत उत्तरदेशादागत्य कश्चिद्राजानं स्वस्तीत्याह। तं च राजा पृच्छति। विद्वन्! कुत्र ते स्थितिरिति। विद्वानाह-

हे राजन! हम किसी से कुछ नहीं मांगते और न लेते हैं, यह सुनकर राजा ने प्रसन्न होकर प्रणाम किया। फिर किसी ने उत्तर देश से आकर राजा से 'स्वस्ति' कहा। तब राजा ने पूछा- हे विद्वान्! तुम्हारा कहाँ स्थान है? विद्वान् ने कहा-

यत्राम्बु निन्दत्यमृतमन्त्यजाश्च सुरेश्वराः॥
चिन्तामणिश्च पाषाणास्तत्र नो वसतिः प्रभो॥२६९॥

जहाँ का जल अमृत को लजाता है, जहाँ के चाण्डाल इन्द्र की बराबरी करते हैं और जहाँ के पत्थर चिन्तामणि को लजाते हैं। हे प्रभो! मैं वहाँ रहता हूँ॥२६९॥

तदा राजा लक्षं दत्त्वा प्राह काशीदेशे का विशेषवार्त्तेति। स आह देव! इदानीं काचिदद्भुतवार्ता तत्र लोकमुखेन श्रुता, देवा दुःखेन दीना इति। राजा देवानां कुतो दुःखं विद्वन्। स चाह-

तब राजा ने उसे लाख रुपये देकर कहा- काशीजी में क्या विशेषता है? वह

बोला- देव! वहाँ पर जो मनुष्यों के मुख से बात सुनी, वह यह है कि वहाँ देवता दुःख से दीन हो रहे हैं। राजा ने कहा हे विद्वान्! देवताओं को क्या दुःख है ? उसने कहा -

निवासः क्वाद्य नो दत्तो भोजेन कनकाचलः।
इति व्यग्रधियो देवा भोग वार्तेति नूतना ।।२७०।।

हे महाराज भोज! यह नई बात है कि आपने जो सुमेरु पर्वत को दान कर दिया, इससे देवगण व्याकुल होकर विचारते हैं कि हम कहाँ जा कर रहें ? ।।२७०।।

ततो राजा कुतूहलोक्त्या तुष्टः सन् तस्मै पुनर्लक्षं ददौ। ततो द्वारपालः प्राह। देव! श्रीशैलादागतः कश्चिद्विद्वान् ब्रह्मचर्यनिष्ठो द्वारि वर्तत इति। राजा प्रवेशयेत्याह। तत आगत्य ब्रह्मचारी चिरञ्जीवेति वदति। राजा तं पृच्छति। ब्रह्मन्! बाल्य एव कलिकालानुरूपं किं नाम व्रतं ते अन्वहमुपवासेन कृशोऽसि। कस्यचित् ब्राह्मणस्य कन्यां तुभ्यं दापयिष्यामि। त्वं चेद्गृहस्थधर्ममङ्गीकरिष्यसीति। ब्रह्मचारी प्राह। देव! त्वमीश्वरस्त्वया किमसाध्यम्।।

तब राजा ने कुतूहल की उक्ति से प्रसन्न होकर उसे फिर लाख रुपये दिये। पश्चात् द्वारपाल ने आकर कहा- हे देव! श्रीशैल से आकर कोई ब्रह्मचारी ब्राह्मण द्वार पर खड़ा है। राजा ने कहा- ले आओ। तब ब्रह्मचारी ने आकर 'चिरञ्जीव' कहा। राजा ने उससे पूछा कि- हे ब्रह्मन्! कलिकाल में आपको बाल्यावस्था में कौन-सा व्रत साध्य है; क्योंकि प्रतिदिन आप उपवास करके कृश हो रहे हैं। यदि तुम गृहस्थ धर्म को स्वीकार करना चाहो, तो मैं किसी ब्राह्मण की कन्या को दिला दूं। ब्रह्मचारी ने कहा- कि हे देव! आप ईश्वर हैं, आप में सभी सामर्थ्य है।

सारङ्गा सुहृदो गृहं गिरिगुहा शान्तिः प्रिया गेहिनी।
वृत्तिर्वह्लिलताफलैर्निवसनं श्रेष्ठं तरूणां त्वचः।।
त्वद्ध्यानामृतपूरमग्नमनसां येषामियं निर्वृति- ।
स्तेषामिन्दुकलावतंसयमिनां मोक्षेऽपि नो न स्पृहा ।।२७१।।

हे देव! पशु-पक्षी मेरे मित्र हैं, पर्वतों की गुफा घर है, शान्ति मेरी स्त्री है, अग्नि, फल और वेल से आजीविका है, वृक्षों की छालें वस्त्र हैं, आपके ध्यानामृत से जिनका मन पूर्ण प्रसन्न हुआ है, वही आनन्द में हैं, किन्तु चन्द्रकला को मुकुट में धारण करने वाले शिव के नेम व्रतों में, हमारी मोक्ष में भी अभिलाषा नहीं है।।२७१।।

राजा उत्थाय पादयोः पतति आह च। ब्रह्मन्! मया किं

कर्त्तव्यमिति। स आह। देव! वयं काशीं जिगमिषवस्तत एकं विधेहि। ये त्वत्सदने पण्डितवराः तान् सर्वानपि सपत्नीकान् काशीं प्रति प्रेषय। ततोऽहं गोष्ठीतृप्तः काशीं गमिष्यामीति। राजा तथा चक्रे। ततः सर्वे पण्डितवरास्तदाज्ञया प्रस्थिताः। कालिदास एको न गच्छति स्म तदा राजा कालिदासं प्राह। सुकवे! त्वं कुतो न गतोऽसीति। ततः कालिदासो राजानं प्राह। देव! सर्वज्ञोऽसि।।

राजा उठकर चरणों में गिर गया और बोला;- हे ब्रह्मन्! मैं क्या करूँ? उसने कहा- हे देव! मेरी काशी जाने की अभिलाषा है, अतएव एक काम करो, तुम्हारे यहाँ जो विद्वद्वर हैं, उन्हें पत्नियों के साथ काशीजी भेजो, तो मैं उनके साथ प्रेम से काशी जाऊँगा। राजा ने वही किया। समस्त पण्डित राजा की आज्ञा से काशीजी को चल दिये। केवल कालिदास नहीं गये, तब राजा ने कालिदास से कहा- हे सुकवे! तुम क्यों नहीं गये? तो कालिदास ने राजा से कहा- हे देव! आप तो सर्वज्ञ हैं।

ते यान्ति तीर्थेषु बुधा ये शम्भोर्दूरवर्त्तिनः।
यस्य गौरीश्वरश्चित्ते तीर्थं भोज परं हि सः।।२७२।।

हे भोज जो पण्डित शिवजी से दूर रहते हैं, वे ही तीर्थों में जाते हैं और जिसके मन में गौरीश्वर विराजमान हैं, वे स्वयं ही परम तीर्थ है।।२७२।।

ततो विद्वत्सु काशीं गतेषु राजा कदाचित्सभायां कालिदासं पृच्छति स्म। कालिदास! अद्य किमपि श्रुतं किं त्वयेति। स आह।।

पश्चात् विद्वान् काशी को चले गये, तब एक दिन राजा ने राजसभा में कालिदास से पूछा- हे कालिदास! आज आपने कुछ सुना है क्या? कालिदास ने कहा-

मेरौ मन्दरकन्दरासु हिमवत्सानौ महेन्द्राचले।
कैलासस्य शिलातलेषु मलयप्राग्भारभागेष्वपि।।
सह्याद्रावपि तेषु बहुशो भोज श्रुतं ते मया।
लोकालोकविचारचारणगणैरुद्गीयमानं यशः।।२७३।।

हे भोज! सुनने में, मन्दराचल की गुफाओं में, हिमालय में, महेन्द्राचल में, कैलास की शिखाओं में, मलयाचल के प्राग्भार में और सह्याद्रि में भी आने-जाने वाले चारणों के मुख से आपके यश का गान सुना है।।२७३।।

ततश्चमत्कृऽतो राजा प्रत्यक्षरलक्षं ददौ। ततः कदाचिद्राजा विद्वद्वृन्दं निर्गतं कालिदासं च अनवरतवेश्यालम्पटं ज्ञात्वाप्य-

चिन्तयत्। अहह! बाणमयूरप्रभृतयो मदीयामाज्ञां व्यदधुः। अयं च वेश्यालम्पटतया ममाज्ञां नाद्रियते किं कुर्म इति। ततो राजा सावज्ञं कालिदासमपश्यत्। तत आत्मनि राज्ञोऽवज्ञा ज्ञात्वा कालिदासो बल्लालदेशं गत्वा तद्देशाधिनाथं प्राप्य प्राह। देव! मालवेन्द्रस्य भोजस्यावज्ञया त्वद्देशं प्राप्तोऽहं कालिदासनामकविरिति। ततो राजा तमासने उपवेश्य प्राह। सुकवे! भोजसभाया इहागतैः पण्डितैः समुदितः शतशस्ते महिमा। सुकवे! त्वां सरस्वतीं वदन्ति ततः किमपि पठेति। ततः कालिदास आह।।

तब चमत्कृत होकर राजा ने एक-एक अक्षर पर एक-एक लाख रुपये दिये। फिर किसी दिन राजा ने विद्वानों के चले जाने पर कालिदास को वेश्या लम्पट जानकर विचारा कि बड़े खेद की बात है कि बाण, मयूर आदि विद्वानों ने मेरी आज्ञा मानी पर इस वेश्या लम्पट कालिदास ने नहीं मानी। अब क्या करूँ? तब कालिदास को अपराधी ठहराया। कालिदास ने राजा की अवज्ञा से बल्लाल देश में जाकर वहाँ के राजा से कहा- हे देव! मालवेन्द्र राजा भोज की अवज्ञा करने से मैं कालिदास नामक कवि आपके यहाँ आया हूँ। तब राजा ने आसन पर बैठा कर कहा- हे सुकवे! भोज की सभा से आकर सैकड़ों पण्डितों ने आपकी प्रशंसा की है, हे सुकवे! आपको साक्षात् सरस्वती कहते हैं, अतएव कुछ पढ़िये। तब कालिदास ने कहा-

बल्लालक्षोणिपाल त्वदहितनगरे सञ्चरन्ती किराती।
कीर्णान्यादाय रत्नान्युरुतरखदिराङ्गारशङ्काकुलाङ्गी।।
क्षिप्त्वा श्रीखण्डखण्ड तदुपरि मुकुलीभूतनेत्रा धमन्ती।
श्वासामोदानुपातैर्मधुकरनिकरैर्धूमशङ्कां बिभर्ति।।२७४।।

हे बल्लालक्षोणिपाल! आपके शत्रुओं के नगर में विचरती हुई भीलनी बिखरे रत्नों को ले उन्हें चमकते हुए खैर के बड़े अंगारे जान व्याकुल होकर उन पर चन्दन छिड़क कर नेत्रों को मींच कर मधुर श्वास के बहने से सुगन्धित मत्त हो कर भ्रमरगणों के आने से धूम की शङ्का करती है।।२७४।।

ततस्तस्मै प्रत्यक्षरलक्षं ददौ। ततः कदाचिद्बल्लालराजा कालिदासं पप्रच्छ। सुकवे! एकशिलानगरीं व्यावर्णयेति। ततः कविराह।।

फिर राजा ने उनके एक-एक अक्षर पर एक-एक लाख रुपये दिये। फिर

किसी दिन राजा बल्लाल ने कालिदास से पूछा- हे सुकवे! एकशिला नगरी का वर्णन कीजिये। तब कालिदास ने कहा;-

अपाङ्गपातैरपदेशपूर्वैरेणीदृशामेकशिलानगर्याम्।
वीथीषु वीथीषु विनापराधं पदे पदे शृङ्खलिता युवानः ।।२७५।।

एकशिला नगरी में मृगनयनी स्त्रियों के तिरस्कारित कटाक्षों से गली-गली और पद-पद पर युवक जन सांकलों में बँध गये ।।२७५।।

पुनश्च प्रत्यक्षरंलक्षं ददौ। कविः पुनश्च पठति ।।

फिर भी राजा बल्लाल ने एक-एक अक्षर पर लाख-लाख रुपये दिये, तो कवि ने फिर पढ़ा-

अम्भोजपत्रायतलोचनानामम्भोधिदीर्घास्विह दीर्घिकासु।
समागतानां कुटिलैरपाङ्गैरनङ्गबाणैः प्रहता युवानः ।।२७६।।

यहाँ सागर के समान विशाल बावड़ियों में आई हुई कमलदल के समान नेत्र वाली स्त्रियों के तिरछे कटाक्ष रूपी कामदेव के बाणों से युवक जन मारे गये ।।२७६।।

पुनश्च बल्लालनृपः प्रत्यक्षरंलक्षं ददौ। एवं तत्रैव स्थितः कालिदासः। अत्रान्तरे धारानगर्यां भोजं प्राप्य द्वारपालः प्राह- देव! गुर्जरदेशात् माघनामा पण्डितवर आगत्य नगराद्बहिरास्ते। तेन च स्वपत्नी राजद्वारि प्रेषिता। राजा तां प्रवेशयेत्याह। ततो माघपत्नी प्रवेशिता सा राजहस्ते पत्रं प्रायच्छत्। राजा तदादाय वाचयति ।।

फिर भी बल्लाल देश के राजा ने एक-एक अक्षर पर लाख-लाख रुपये दिये। इसी भाँति वहीं कालिदास रहने लगे। इसी अवसर पर धारा नगरी में राजा भोज से आकर द्वारपाल ने कहा- हे देव! गुजरात से माघ नामक पण्डितराज आकर नगर से बाहर विराज रहे हैं। उन्होंने अपनी स्त्री को राजद्वार पर भेजा है, राजा ने कहा- बुला लाओ। तब माघ की स्त्री ने राजा के हाथ में पत्र दिया। राजा ने उसे लेकर पढ़ा।

कुमुदवनमपश्रि श्रीमदम्भोजषण्डं।
त्यजति मुदमुलूकः प्रीतिमाश्चक्रवाकः ।।
उदयमहिमरश्मिर्याति शीतांशुरस्तं।
हतविधिलसितानां ही विचित्रो विपाकः ।।२७७।।

सूर्य के उदय और चन्द्रमा के अस्त होने पर कुमुद की शोभा जाती रही और कमलों पर शोभा आ गई। उल्लू पक्षियों का आनन्द जाता रहा और चकवा प्रसन्न

हुए, इससे जान पड़ता है कि कर्मफल की विचित्र गति है ।।२७७।।

इति राजा तद्गतं प्रभातवर्णनमाकर्ण्य लक्षत्रयं दत्त्वा माघपत्नीमाह। मातरिदं भोजनाय दीयते प्रातरहं माघपण्डितमागत्य नमस्कृत्य पूर्णमनोरथं करिष्यामीति। ततः सा तदादाय गच्छन्ती याचकानां मुखात्स्वभर्तुः शारदचन्द्रकिरणगौरान् गुणान् श्रुत्वा तेभ्यो धनमखिलं भोजदत्तं दत्तवती। माघपण्डितं स्वभर्तारमासाद्य प्राह। नाथ! राज्ञा भोजेनाहं बहु मानिता धनं सर्वं याचकेभ्यस्त्वद्गुणानाकर्ण्य दत्तवती। माघः प्राह। देवि! साधु कृतं परमेते याचकाः समायान्ति किल तेभ्यः किं देयमिति। ततो माघपण्डितं वस्त्रावशेषं ज्ञात्वा कोऽप्यर्थी प्राह ।।

राजा ने उस पत्र में लिखे प्रातःकाल के वर्णन को सुनकर माघ की स्त्री को तीन लाख रुपये देकर कहा कि- हे मातः! यह आपके भोजन के लिये दिया है, कल प्रातःकाल माघ महाराज के दर्शन कर मनोरथ को पूर्ण करूँगा। जब माघ की स्त्री लेकर चली, तो मार्ग में अपने स्वामी के शरद ऋतु के चन्द्रमा की चाँदनी के समान निर्मल गुण याचकों के मुख से सुने, तो समस्त धन उन्हीं याचकों को दे दिया और स्वामी के पास जाकर बोली- हे नाथ! राजा भोज ने बड़े मान से तीन लाख रुपये दिये थे, सो आपके गुण बखानने से याचकों को दे दिये। माघ ने कहा- हे देवि! अच्छा किया। परन्तु याचक आ रहे हैं, सो इनको क्या देना चाहिये? फिर माघ पण्डित के पास केवल वस्त्र जान कर एक याचक ने कहा-

आश्वास्य पर्वतकुलं तपनोष्णतप्त-।
मुद्दामदावविधुराणि च काननानि ।।
नानानदीनदशतानि च पूरयित्वा।
रिक्तोऽसि यज्जलद सैव तवोत्तमश्रीः ।।२७८।।

हे मेघ! सूर्य के प्रचण्ड ताप से तपते हुए पर्वतों को धीरज देकर वनों के तीव्र दावानल को शान्त करके सैकड़ों नदी और नालों को पूर्ण करके जो तू खाली हुआ है, उसी से तेरी उत्तम शोभा है ।।२७८।।

इत्येतदाकर्ण्य माघः स्वपत्नीमाह। देवि!

यह सुन कर माघ ने अपनी स्त्री से कहा;- हे देवि!

अर्था न सन्ति न च मुञ्चति मां दुराशा।

त्यागे रतिं वहति दुर्ललितं मनो मे ।।
याच्ञा च लाघवकरी स्ववधे च पापं ।
प्राणाः स्वयं व्रजत किं परिदेवनेन ।।२७९।।

मुझ पर धन न होने पर भी दुराशा नहीं छूटती और दुर्ललित मन को छोड़ने में हर्ष होता है, याचना गौरव को नष्ट करती है और स्वयं मरने से पाप होता है, इस कारण विलाप करने से क्या होगा ? मेरे प्राण स्वयं ही निकल जाय तो अच्छा है ।।२७९।।

दारिद्र्यानलसन्तापः शान्तः सन्तोषवारिणा ।
याचकाशाविघातान्तर्दाहः केनोपशाम्यतीति ।।२८०।।

दरिद्रता की अग्नि से उत्पन्न हुआ ताप सन्तोष रूपी जल से शान्त हो जाता है। परन्तु याचकों की आशा भङ्ग होने से आन्तरिक दाह किसी भाँति से शान्त नहीं होता है ।।२८०।।

ततस्तदा माघपण्डितस्य तामवस्थां विलोक्य सर्वे याचकाः यथास्थानं जग्मुः । एवं तेषु याचकेषु यथायथं गच्छत्सु माघः प्राह ।।

फिर माघ पण्डित की यह दशा देखकर सब याचक अपने घर चले गये। उन सब याचकों के चले जाने पर माघ पण्डित ने कहा-

व्रजत व्रजत प्राणा अर्थिभिर्व्यर्थतां गतैः ।
पश्चादपि च गन्तव्यं क्व सोऽर्थः पुनरीदृशः ।।२८१।।

प्राण जाते हैं तो जायें, कारण याचक व्यर्थ चले गये। एक दिन तो प्राण जायेंगे ही, फिर इन्हें किस प्रयोजन से विलमाये रखूं ।।२८१।।

इति विलपन् माघपण्डितः परलोकमगात् । ततो माघपत्नी स्वामिनि परलोकं गत; सति प्राह ।।

ऐसा विलाप करते हुए माघ परलोक को सिधारे। जब स्वामी परलोकवासी हुए, तब उनकी स्त्री ने कहा-

सेवन्ते स्म गृहे यस्य दासवद्भूभुजः सदा ।
स स्वभार्यासहायोऽयं म्रियते माघपण्डितः ।।२८२।।

जिसके घर की राजा दास के समान सदा सेवन करता है, वही माघ पण्डित केवल भार्या का सहायक होने पर मृत्यु को प्राप्त होता है ।।२८२।।

ततो राजा माघं विपन्नं ज्ञात्वा निजनगराद्विप्रशतावृतो मौनी रात्रावेव तत्रागात् । ततो माघपत्नी राजानं वीक्ष्य प्राह । राजन्! यतः

पण्डितवरस्त्वद्देशं प्राप्तः परलोकमगात् ततोऽस्य कृत्यशेषं सम्य-गाराधनीयं भवतेति। ततो राजा माघं विपन्नं नर्मदातीरं नीत्वा यथोक्तेन विधिना संस्कारमकरोत् तत्र च माघपत्नी वह्नौ प्रविष्टा। तयोश्च पुत्रवत् सर्वं चक्रे भोजः। ततो माघे दिवं गते राजा शोकाकुलो विशेषेण कालिदासवियोगेन च पण्डितानां प्रवासेन कृशोऽभूद्दिनेदिने बहुलपक्षशशीव। ततोऽमात्यैर्मिलित्वा चिन्तितम्। बल्लालदेशे कालिदासो वसति। तस्मिन्नागते राजा सुखी भविष्यतीति। एवं विचार्यामात्यैः पत्रे किमपि लिखित्वा ततः पत्रं चैकस्यामात्यस्य हस्ते दत्त्वा प्रेषितम्। स कालक्रमेण कालिदासमासाद्य राज्ञोऽमात्यैः प्रेषितोऽस्मीति नत्वा तत्पत्रं दत्तवान्। ततस्तत्कालिदासो वाचयति॥

फिर राजा माघ की मृत्यु को सुनकर सैकड़ों ब्राह्मणों को साथ ले कर मौन धारण करके रात्रि में ही वहाँ आया। तब माघ की स्त्री ने राजा को देखकर कहा- हे राजन! पण्डितजी आपके देश में आकर मृत्यु को प्राप्त हुए हैं, अतएव इनके मृतक संस्कार को भलीभाँति पूर्ण कीजिये। तब राजा ने माघ का मृतक शरीर ले जाकर नर्मदा नदी किनारे संस्कार किया और वहीं माघ की स्त्री ने चिता में प्रवेश करके सतीलोक को पधारी। उनकी समस्त क्रिया राजा भोज ने पुत्र के समान की। जब माघ पण्डित स्वर्ग को सिधारे, तब शोक से व्याकुल होकर दूसरे कालिदास की वियोगाग्नि से सन्तप्त होकर तीसरे पण्डितों के प्रवासी होने से राजा दिन-पर-दिन दुर्बल होने लगे, जैसे कृष्ण पक्ष का चन्द्रमा कला हीन होता है। तब मन्त्रियों ने परस्पर मिलकर निश्चय किया कि बल्लाल देश में कालिदास रहते हैं। उनके आने पर राजा सुखी होंगे। यह विचार मन्त्रियों ने पत्र में लिखकर एक मन्त्री के हाथ वह पत्र वहाँ भेज दिया। वह मन्त्री चलकर कालिदास के पास पहुँचा और प्रणाम करके बोला- महाराज! आपको पत्र देने के लिये मुझे मन्त्रियों ने भेजा है। यह कहकर पत्र दे दिया। तब कालिदास ने उसे पढ़ा।

न भवति भवति न चिरं भवति चिरं चेत् फले विसंवादी।
कोपः सत्पुरुषाणां तुल्यः स्नेहेन नीचानाम्॥२८३॥

सत्पुरुषों को कोप नहीं होता, यदि हो भी तो वह चिरकाल तक नहीं रहता, यदि चिरकाल रहे तो उससे उत्तम फल होता है। अतः उत्तम पुरुषों का कोप नीच पुरुषों के स्नेह के समान होता है॥२८३॥

सहकारे चिरं स्थित्वा सलीलं बालकोकिल।
तं हित्वाद्यान्यवृक्षेषु विचरन्न विलज्जसे॥२८४॥

हे बालकोकिल! लीला के साथ आम के वृक्ष पर चिरकाल रहकर अब आम को त्याग कर अन्य वृक्षों पर विचरते हुए लज्जा क्यों नहीं आती? ।।२८४।।

कलकण्ठ यथा शोभा सहकारे भवद्गिरः।
खदिरे वा पलाशे वा किं तथा स्याद्विचारयेति ।।२८५।।

हे सुन्दर कण्ठ वाली कोकिल! विचार कर तो देख। जैसी शोभा तू आम के वृक्ष पर पाती है, वैसी शोभा खैर और ढाक के वृक्ष पर नहीं पा सकती ।।२८५।।

तत कालिदासः प्रभाते तं भूपालमापृच्छ्य मालवदेशमागत्य राज्ञः क्रीडोद्याने तस्थौ। ततो राजा च तत्रागतं ज्ञात्वा स्वयं गत्वा महता परिवारेण तमानीय सम्मानितवान्। ततः क्रमेण विद्वन्मण्डले च समायाते सा भोजपरिषत् प्रागिव रेजे। ततः सिंहासनमलङ्कुर्वाणं भोजं द्वारपाल आगत्य प्रणम्याह। देव! कोऽपि विद्वान् जालन्धर-देशादागत्य द्वार्यास्त इति। राजा प्रवेशयात्याह। स च विद्वानागत्य सभायां तथाविधं राजानं जगन्मान्यान् कालिदासादीन् कविपुङ्गवा-न्वीक्ष्य बद्धजिह्व इवाजायत। सभायां किमपि तस्य मुखान्न निस्स-रति। तदा राज्ञोक्तं विद्वन्! किमपि पठेति। स आह।।

फिर कालिदास प्रातःकाल राजा से पूछ कर मालवे में आकर राजा के बगीचे में विराजे। तब राजा कालिदास को आया जान कर परिवार सहित वहाँ आया और सम्मान के साथ उनको ले गया। फिर कुछ काल में विद्वानों का मण्डल आ गया, तो राजा भोज की सभा पूर्व के समान शोभा को प्राप्त हो गई। सभा के बीच सिंहासन पर बैठे राजा भोज से आकर द्वारपाल ने प्रणाम करके कहा- हे देव! कोई विद्वान् जालन्धर देश से आकर दरवाजे पर खड़ा है। राजा ने कहा- ले आओ। उस विद्वान ने सभा में आकर राजा भोज को जगमान्य कालिदासादि कवियों के साथ बैठे हुए देखा तो उसकी जिह्वा की गति रुक गई। सभा के बीच उसके मुख से कुछ नहीं निकला। तब राजा ने कहा- हे विद्वान्! कुछ कहिये। उसने कहा-

आरनालगलदाहशङ्कया।
मन्मुखादपगता सरस्वती।।
तेन वैरिकमलाकचग्रह-।
व्यग्रहस्त न कवित्वमस्ति मे ।।२८६।।

हे शत्रुओं की राजलक्ष्मी के केशों को पकड़ने में व्यग्रहस्त राजा भोज! काञ्जी

की शङ्का से मेरे मुख से वाणीरूपिणी सरस्वती चली गई, अतएव मेरे मुख में अब कविता शक्ति नहीं है ।।२८६।।

राजा तस्मै महिषीशतं ददौ। अन्यदा राजा कौतुकाकुलः सीतां प्राह। देवि सुरतं पठेति। सीता प्राह–

राजा ने उसे सौ भैंसे दीं। एक दिन राजा ने आश्चर्य के साथ सीता से कहा– हे देवि! सूरत को पढ़ो। सीता ने कहा–

सुरताय नमस्तस्मै जगदानन्दहेतवे।
आनुषंगि फलं यस्य भोजराज भवादृशः ।।२८७।।

हे राजा भोज! जगत् के आनन्द के कारण सूरत को प्रणाम है, जिसका फल आपके समान पुरुषों का मिलना है ।।२८७।।

ततस्तुष्टो राजा तस्मै हारं ददौ। राजा ततो चामरग्राहिणीं वेश्यामवलोक्य कालिदासं प्राह। सुकवे! वेश्यामेनां वर्णयेति तामवलोक्य कालिदास प्राह ।।

तब राजा ने प्रसन्न होकर रानी को हार दिया। फिर राजा चँवर डुलाने वाली वेश्या को देखकर कालिदास से बोले– हे सुकवे! इस वेश्या का वर्णन करो। उसे देखकर कालिदास ने कहा–

कचभारात्कुचभारः कुचभाराद्भीतिमेति कचभारः।
कचकुचभाराज्जघनं कोऽयं चन्द्रानने चमत्कारः ।।२८८।।

हे चन्द्रमुखी! यह क्या आश्चर्य है, जो कचभार (केश के भार) से कुचभार और कुचभार से कचभार और कच व कुच के भार से जाँघें भयभीत हो रही हैं अर्थात् यह सब हिलकर सूचित करते हैं कि आपस के भय से काँप रहे हैं ।।२८८।।

भोजस्तुष्टः सन् स्वयमपि पठति।

फिर प्रसन्न होकर राजा ने स्वयं भी पढ़ा–

वदनात्पदयुगलीयं वचनादधरश्च दन्तपङ्क्तिश्च।
कचतः कुचयुगलीयं लोचनयुगलं च मध्यतस्त्रसति ।।२८९।।

इसके मुख से दोनों चरण, वचन से होंठ व समस्त दांत, केशों से दोनों कुच और कटिभाग से दोनों नेत्र डरते हैं ।।२८९।।

अन्यदा भोजो राजा धारानगरे एकाकी विचरन् कस्यचि–द्विप्रवरस्य गृहं गत्वा तत्र काञ्चन पतिव्रतां स्वाङ्के शयानं भर्तारमुद्व–

हन्तीं पश्यन् ततः तस्याः शिशुः सुप्तोत्थितः ज्वालायाः समीपम-गच्छत्। इयं च पतिधर्मपरायणा स्वपतिं नोत्थापयामास। ततः शिशुं च वह्नौ पतन्तं नागृह्णात्। राजा साश्चर्यमालोक्यातिष्ठत्। ततः सा पतिधर्मपरायणा वैश्वानरमप्रार्थयत्। यज्ञेश्वर! त्वं सर्वकर्मसाक्षी सर्वधर्मान् जानासि मां पतिधर्मपराधीनां शिशुमगृह्णन्तीं च जानासि ततो मदीयशिशुमनुगृह्य त्वं मा दहेति। ततः शिशुर्यज्ञेश्वरं प्रविश्य तं च हस्तेन गृहीत्वार्धघटिकापर्यन्तं तत्रैवातिष्ठत् ततश्चारोदीत् प्रसन्न-मुखश्च शिशुः सा च ध्यानारूढातिष्ठत्। ततो यदृच्छया समुत्थिते भर्तरि सा झटिति शिशुं जग्राह। तं च परमधर्ममालोक्य विस्मयाविष्टो नृपतिराह। अहो मम भाग्यं कस्यास्ति। यदीदृश्यः पुण्यस्त्रियोऽपि मन्नगरे वसन्तीति। ततः प्रातः सभायामागत्य सिंहासन उपविष्टो राजा कालिदासं प्राह सुकवे! महदाश्चर्यं मया पूर्वेद्यु रात्रौ दृष्टमस्ती-त्युक्त्वा राजा पठति।।

एक समय राजा भोज ने धारानगरी में अकेले विचरते हुए किसी ब्राह्मण के घर जाकर देखा कि पतिव्रता स्त्री की गोद में शिर धरे उसका पति सो रहा है और उसका बालक सोते से उठकर अग्नि के समीप जा रहे है, तो भी पतिधर्म को जानने वाली स्त्री अपने पति को नहीं जगाती है, देखते-देखते बालक अग्निकुण्ड में जाकर गिर गया, तब भी स्त्री ने जाकर बालको नहीं पकड़ा। राजा इस आश्चर्य को देखकर स्थिर हो गया। तब उस पतिव्रता स्त्री ने अग्निदेव की प्रार्थना की। हे यज्ञेश्वर! तुम सभी कर्मों के साक्षी और ज्ञाता हो, मैं पतिव्रत धर्म के वशीभूत होने से बालक को नहीं पकड़ सकी, यह भी जानते हो, अतएव मेरे बालक को दया करके मत जलाना। फिर अग्निदेव को प्राप्त होकर बालक उसके हाथ आधी घड़ी तक स्थित रहा, पश्चात् बालक प्रसन्नता से रोने लगा। इधर पतिव्रता अपने ध्यान में लीन रही। जब उसके स्वामी की नीन्द छूटी, तब उसने शीघ्रता से बालक को उठा लिया। उसके परमधर्म को देखकर राजा अचम्भित होकर बोला- अहा! मैं बड़ा भाग्यशाली हूँ। जिससे ऐसी पतिव्रता स्त्री मेरे नगर में वास करती है। फिर प्रातःकाल आकर जब राजा सिंहासन पर बैठा, तब कालिदास से कहा- हे सुकवे! मैंने कल रात्रि में बड़ा आश्चर्य देखा, यह कह कर राजा ने पढ़ा;-

हुताशनश्चन्दनपङ्कशीतल इति।

अग्नि चन्दन की कीच के समान शीतल हो गई।

कालिदासस्ततश्चरणत्रयं झटिति पठति।

फिर कालिदास ने शीघ्र ही तीन चरण पढ दिये-

सुतं पतन्तं प्रसमीक्ष्य पावके।
न बोधयामास पतिं पतिव्रता।।
तदाभवत्तत्पतिभक्तिगौरवाद्।
हुताशनश्चन्दनपङ्कशीतलः।।२९०।।

पुत्र को अग्निकुण्ड में गिरते देखकर भी पतिव्रता स्त्री ने अपने पति को नहीं जगाया। तब उसकी पतिभक्ति की गुरुता से अग्नि चन्दन की कीच की समान शीतल हो गई।।२९०।।

राजा च स्वाभिप्रायमालोक्य विस्मितस्तमालिङ्ग्य पादयोः पतति स्म। एकदा ग्रीष्मकाले राजा अन्तःपुरे विचरन् घर्मतापतप्त आलिङ्गनादिकमकुर्वन् ताभिः सह सरससँल्लापाद्युपचारमनुभूय तत्रैव सुप्तः। ततः प्रातरुत्थाय राजा सभां प्रविष्टः कुतूहलात् पठति।

राजा ने अपने अभिप्राय को कहते हुए देखकर आश्चर्य किया। फिर कालिदास से मिलकर उनके चरणों में गिर पड़ा। एक समय ग्रीष्म ऋतु के प्रचण्ड सूर्य की धूप से तपकर तप्त होकर राजा ने रनवास में जाकर आलिङ्गन आदि नहीं किया और रानियों के साथ रसीली बातों के सुख का अनुभव करके वहीं सो रहा, फिर प्रातःकाल सभा में आकर आनन्द से पढ़ा-

मरुदागमवार्तयापि शून्ये समये जाग्रति सम्प्रवृद्ध एव।।

पवन आने की बात भी नहीं ऐसे समय के प्रबल होने पर।

भवभूतिराह-

भवभूति ने कहा-

उरगी शिशवे बुभुक्षवे स्वामदिशत्फूत्कृतिमाननानिलेन।।२९१।।

सर्पिणी ने अपने क्षुधित बालक को मुख की वायु से फुङ्कार दी।।२९१।।

राजा प्राह। भवभूते लोकोक्तिः सम्यगुक्तेति। ततोऽपाङ्गेन राजा कालिदासं पश्यति। ततः स आह।।

यह सुनकर राजा ने कहा- हे भवभूति! लोकाक्ति अच्छी कही। फिर सङ्केत से कालिदास से कहा, तब कालिदास ने कहा-

अबलासु विलासिनोऽन्वभूवन्नयनैरेव नवोपगहनानि।।२९२।।

(उस समय) विलासी पुरुषों ने आलिङ्गन करने में गरमी समझ कर नेत्रों के देखने से ही प्रसन्नता प्राप्त की ।।२९२।।

तदा राजा स्वाभिप्रायं ज्ञात्वा तुष्टः। कालिदासं विशेषेण सम्मानितवान्। अन्यदा मृगयापरवशो राजा अत्यन्तमार्तः कस्य-चित्सरोवरस्य तीरे निबिडच्छायस्य जम्बूवृक्षस्य मूलमुपाविशत्। तत्र शयाने राज्ञि जम्बोरुपरि बहुभिः कपिभिः जम्बूफलानि सर्वाण्यपि चालितानि। तानि सशब्दं पतितानि पश्यन् घटिकामात्रं स्थित्वा श्रमं परिहृत्य उत्थाय तुरङ्गमवरमारुह्य गतः। ततः सभायां राजा पूर्वा-नुभूतकपिचलितफलपतनरवमनुकुर्वन् समस्यामाह। 'गुलुगुग्गुलु-गुग्गुलु' तत आह कालिदासः।।

तब राजा अपने अभिप्राय को जानकर प्रसन्न हुआ और कालिदास को विशेष माना। एक समय शिकार खेलते हुए थककर राजा सरोवर के किनारे घनी छाया वाले जामुन के वृक्ष के नीचे बैठ गया और जब लेटा तो जामुन के वृक्ष पर चढ़ कर अनेक वानरों ने जामुन की शाखाओं को हिलाकर जामुन के फल नीचे जिरा दिये। तब उन फलों के गिरने के शब्दों को सुनकर घड़ी भर को वहाँ विराम लेकर श्रम को दूर करके उठा और घोड़े पर सवार होकर चल दिया। फिर सभा में आकर पूर्व के देखे जामुन के फल गिरते शब्द का अनुकरण करके समस्या कहीं–(गुलु गुग्गुलु गुग्गुलु) तब कालिदास ने कहा–

जम्बूफलानि पक्वानि पतन्ति विमले जले।
कपिकम्पितशाखातो गुलुगुग्गुलुगुग्गुलु ।।२९३।।

वानरों द्वारा जामुन की शाखाओं के हिलने से पके हुए जामुन के फल जब जल में गिरे तब शब्द हुआ, गुलु गुग्गुलु गुग्गुलु ।।२९३।।

राजा तुष्ट आह। सुकवे! अदृष्टमपि परहृदयं कथं जानासि साक्षाच्छारदासीति मुहुर्मुहुः पादयोः पतति स्म। एकदा धारानगरे प्रच्छन्नवेषो विचरन् कस्यचिद्वृद्धब्राह्मणस्य गृहं राजा मध्याह्नसमये गच्छन् तत्र तिष्ठति स्म। तदा वृद्धविप्रो वैश्वदेवं कृत्वा काकबलिं गृह्णन् गृहान्निर्गत्य भूमौ जलशुद्धायां निक्षिप्य काकमाह्वयति स्म। तत्र हस्तविस्फालनेन हाहेतिशब्देन च काकाः समायाताः। तत्र कश्चित्काकस्तारं राराटीति स्म। तच्छ्रुत्वा तत्पत्नी तरुणी भीतेव हस्तं

निजोरसि निधाय अये मातरिति चक्रन्द। ततो ब्राह्मणः प्राह। प्रिये साधुशीले! किमर्थं बिभेषीति। सा प्राह नाथ! मादृशीनां पतिव्रता-स्त्रीणां क्रूरध्वनिश्रवणं सह्यं वा। साधुशीले! तथा भवेदेवेति विप्र आह। ततो राजा तच्चरितं सर्वं दृष्ट्वा व्यचिन्तयत्। अहो इयं तरुणी दुश्शीला नूनम्। यतो निर्व्याज्यं बिभेति स्वपातिव्रत्यं स्वयमेव कीर्तयति च नूनमियं निर्भीता सती अत्यन्तं दारुणं कर्म रात्रौ करोत्येव। एवं निश्चित्य राजा तत्रैव रात्रावन्तर्हित एवातिष्ठत्। अथ निशीथे भर्तरि सुप्ते सा मांसपेटिकां वेश्याकरेण वाहयित्वा नर्मदातीरमनुगच्छत्। राजाप्यात्मानं गोपयित्वानुगच्छति स्म। ततः सा नर्मदां प्राप्य तत्र समागतानां ग्राहाणां मासं दत्त्वा नदीं तीर्त्वा अपरतीरस्थेन शूलाग्रारोपितेन स्वमनोरमेण सह रमते स्म। तच्चरित्रं दृष्ट्वा राजा गृहं समागत्य प्रातस्सभायां कालिदासमालोक्य प्राह। सुकवे! शृणु।।

राजा ने प्रसन्न होकर कहा- हे सुकवे! विना देखे हृदय के भाव को कैसे जान लेते हो? इससे निश्चय होता है कि तुम साक्षात् सरस्वती के अवतार हो, यह कहकर बारम्बार उनके चरणों में गिरने लगा। एक समय राजा ने भेष बदल कर धारानगरी में विचरते हुए किसी ब्राह्मण के घर पर जाकर मध्याह्न के समय वहाँ विराम किया। जब वृद्ध ब्राह्मण वैश्वदेव करके काकबलि को लेकर घर के द्वारे जाकर भूमि पर जल छिड़क कर काकों को बुलाने लगा। तब पञ्जों को फैलाकर हा हा शब्द करके काक आ गये। उनमें कोई काक ऊँचे शब्द से रटने लगा। उसकी वाणी सुनकर ब्राह्मण की युवती स्त्री भय से व्याकुल होने के समान हृदय पर हाथ धर के अरी मैय्या! पुकारने लगी। तब ब्राह्मण ने कहा- हे प्रिये! हे साधुशीले! क्यों भय मानती हो? वह बोली- नाथ! मेरे समान पतिव्रता स्त्रियों को ऐसा क्रूर शब्द नहीं सहन होता है। ब्राह्मण ने कहा- हे साधुशीले! ऐसा ही होगा। तब राजा ने उसका समस्त चरित्र देखकर विचारा कि, यह युवती स्त्री निःसन्देह दुराचारिणी है। इसी से डरने के कारण को बताकर अपने पतिव्रत धर्म का आप ही कीर्तन करती है। यह अवश्य भयभीता के समान रात्रि में अति दारुण काम करती होगी। इसे निश्चित कर राजा रात्रि में वहीं छिपा रहा। जब आधी रात बीती और स्वामी सो गया, तब वह वेश्या हाड़-मांस की पिटारी लेकर नर्मदा नदी के किनारे गई। इधर राजा भी अपने भेष को छिपाये उसके पीछे चला गया। फिर उसने नर्मदा नही पर जाकर वहाँ ग्राहों को मांस देकर नदी के पार उतर कर शूलों पर आरोपित अपने प्रियतम के साथ रमण किया। राजा ने उस चरित्र को देखकर घर पर आकर प्रातःकाल सभा में कालिदास को देखकर कहा- श्रेष्ठ कविजी! सुनिये-

दिवा काकरुताद्भीता।

दिन में काकों के शब्द से डरी।

ततः कालिदास आह–रात्रौ तरति नर्मदाम्।।

तब कालिदास ने कहा– रात्रि में नर्मदा के पार गई।

ततस्तुष्टो राजा पुनः प्राह–तत्र सन्ति जले ग्राहाः।

प्रसन्न होकर राजा ने कहा– वहाँ जल में ग्राह थे।

ततः कविराह– मर्मज्ञा सैव सुन्दरी।।२९४।।

फिर कालिदास ने कहा– वह सुन्दरी मर्म को जानती है।।२९४।।

ततो राजा कालिदासस्य पादयोः पतति। एकदा धारानगरे विचरन् वेश्यावीथ्यां राजा कन्दुकलीलातत्परां तद्भ्रमणवेगेन पादयोः पतितावतंसां काञ्चन सुन्दरीं दृष्ट्वा सभायामाह। कन्दुकं वर्णयन्तु कवय इति। तदा भवभूतिराह।।

फिर राजा कालिदास के चरणों में गिर पड़ा। एक समय धारानगरी में विचरते हुए वेश्या की गली में जाकर कन्दुकलीला करती और उसके भ्रमण के वेग से चरणों में माला पड़ी हुई किसी सुन्दरी को देखकर सभा में आकर कहा– हे कविगण! कन्दुक का वर्णन करो, तब भवभूति ने कहा–

विदितं ननु कन्दुक ते हृदयं प्रमदाधरसङ्गमलुब्ध इव।
वनिताकरतामरसाभिहतः पतितः पतितः पुनरुत्पतसि।।२९५।।

हे कन्दुक! तेरे हृदय के भाव को मैं जानता हूँ, तू स्त्रियों के अधरामृत के लोभी के समान स्त्रियों के करकमलों से ताड़ित हुआ गिर–गिर कर फिर उठता है।।२९५।।

ततो वररुचिः प्राह।

तब वररुचि ने कहा–

एकोऽपि त्रय इव भाति कन्दुकोऽयं कान्तायाः करतलरागरक्तरक्तः।
भूमौ तच्चरणनखांशुगौरगौरः स्वःस्थः सन्नयनमरीचिनीलनीलः।।

एक ही कन्दुक तीन प्रकार से विदित होता है, स्त्रियों के हाथों की लीला से लाल, पृथ्वी पर उनके नखों की किरणों से गौर और स्वस्थ होने पर नेत्रों की छाया से नीला प्रतीत होता है।।२९६।।

ततः कालिदास आह।

फिर कालिदास ने कहा–

पयोधराकारधरो हि कन्दुकः।
करेण रोषादभिहन्यते मुहुः ।।
इतीवनेत्राकृतिभीतमुत्पलं।
स्त्रियाः प्रसादाय पपात पादयोः ।।२९७।।

यह कन्दुक स्त्री के कुचों के समान है, अतएव क्रोध से वारंवार ताड़न करना चाहिये। नेत्रों के आकार से भीत कमल भी स्त्री की प्रसन्नता के लिये चरणों में गिरते हैं।।२९७।।

तदा राजा तुष्टस्त्रयाणामक्षरलक्षं ददौ। विशेषेण च कालिदासमदृष्टावतंसकुसुमपतनबोद्धारं सम्मानितवान्। ततः कदाचिच्चित्रकर्मावलोकनतत्परो राजा चित्रलिखितं महाशेषं दृष्ट्वा सम्यग्लिखितमित्यवदत्। तदा कश्चिच्छिवशर्मा नाम कविः शेषमिषेण राजानं स्तौति ।।

फिर सहर्ष राजा ने तीनों कवियों को प्रत्येक अक्षर पर लाख-लाख रुपये दिये। बिना देखे मस्तक के मुकुट के फूलों के गिरने को जानने वाले कालिदास को विशेष माना। फिर चित्रकारी के देखने में लीन हुए राजा ने महाशेष के लिखे चित्र को देखकर कहा- अच्छा लिखा है। तब शिवशर्मा नामक कवि ने शेष के माध्यम राजा की स्तुति की।

अनेके फणिनः सन्ति भेकभक्षणतत्पराः।
एक एव हि शेषोऽयं धरणीधरणक्षमः ।।२९८।।

मेंढकों के भक्षक तो अनेक सर्प हैं, परन्तु पृथ्वी को धारण करने वाले केवल शेषजी ही हैं।।२९८।।

तदानीं राजा तदभिप्रायं ज्ञात्वा तस्मै लक्षं ददौ। कदाचिद्धेमन्तकाले समागते ज्वलन्तीं हसन्तीं संसेवयन् राजा कालिदासं प्राह। सुकवे! हसन्तीं वर्णयेति। ततः सुकविराह ।।

तब राजा ने उसके अभिप्राय को जानकर लाख रुपये दिये। किसी समय हेमन्त ऋतु में जलती हुई आग की अङ्गीठी का उपयोग करते हुए राजा ने कालिदास से कहा- हे सुकवे! अङ्गीठी का वर्णन करो। फिर सुकवि ने कहा-

कविमतिरिव बहुलोहा सुघटितचक्रा प्रभातवेलेव।
हरमूर्तिरिव हसंती भाति विधूमानलोपेता ।।२९९।।

कवि की बुद्धि के समान बहुत लोह वाली, प्रातःकाल के समय के समान सुघटित चक्र वाली और धूम से रहित अग्नि से पूर्ण अङ्गीठी शोभा पाती है ।।२९९।।

राजा अक्षरलक्षं ददौ। एकदा भोजराजोऽन्तर्गृहे भोगार्हास्तुल्यगुणाश्चतस्रो निजाङ्गना अपश्यत्। तासु च कुन्तलेश्वरपुत्र्यां पद्मावत्यामृतुस्नानम्, अङ्गराजस्य पुत्र्यां चन्द्रमुख्यां क्रमप्राप्तिम्, कमलानाम्न्यां च द्यूतपणजयलब्धप्राप्तिम्, अग्रमहिष्यां च लीलादेव्यां दूतीप्रेषणमुखेनाह्वानं च एवं चतुरो गुणान् दृष्ट्वा तेषु गुणेषु न्यूनाधिभावं राजाप्यचिन्तयत्। तत्र सर्वत्र दाक्षिण्यनिधी राजराजः श्रीभोजस्तुल्यभावेन द्वित्रिघटिकापर्यन्तं विचिन्त्य विशेषानवधारणे निद्रां गतः। प्रातश्चोत्थाय कृताह्निकः सभामगात्। तत्र च सिंहासनमलङ्कुर्वाणः श्रीभोजः सकलविद्वत्कविमण्डलमण्डनकालिदासमालोक्य सुकवे! इमां त्र्यक्षरोनतुरीयचरणां समस्यां शृणु इत्युक्त्वा पठति।।

तब राजा ने अक्षर-अक्षर पर लाख-लाख रुपये दिये। एक समय राजा भोज ने निवास में भोगने योग्य समान गुण वाली चार अङ्गनाओं को देखा। उनके बीच में कुन्तेश्वर की पुत्री पद्मावती ने ऋतु स्नान से, अङ्गराज की कुमारी चन्द्रमुखी ने क्रमप्राप्ति से, कमलारानी ने जुए से जीत कर और पटरानी लीलादेवी ने दूती भेजकर बुलाया है, उन चारों के गुणों में राजा न्यूनाधिक विचारने लगा। उन सब में एक-सी चतुराई जान कर राजा भोज दो-तीन घड़ी तक विचारने परे उनको न्यूनाधिक न जान सका, तब सो गया। प्रातःसमय उठकर नित्य क्रिया करके सभा में आकर सिंहासन पर बैठकर राजा भोज ने कवि मण्डल के शिरोमणि कालिदास को देखकर कहा- हे सुकवे! तीन अक्षर कम चौथे चरण की समस्या को सुनो। यह कहकर राजा ने पढ़ा-

अप्रतिपत्तिमूढमनसा द्वित्राः स्थिता नाडिकाः। इति पठित्वा राजा कालिदासमाह। सुकवे! एतत्समस्यापूरणं कुर्विति। ततः कालिदासस्तस्य हृदयं करतलामलकवत् प्रपश्यन् त्र्यक्षराधिकचरणत्रयविशिष्टां तां समस्यां पठति। देव!

अयुक्ति से मूढ़ मन वाली दो-तीन घड़ी विचार में लगी। इसे पढ़ कर राजा ने कालिदास से कहा- हे सुकवे! इस समस्या को पूर्ण करो। तब कालिदास ने राजा के हृदय के भाव को हाथ में स्थित आमले के समान जानकर तीन अक्षर अधिक तीन चरणों को बना कर उस समस्या को पढ़ा- हे देव!

स्नाता तिष्ठति कुन्तलेश्वरसुता वारोऽगराजस्वसु-
र्द्यूते । रात्रिरियं कृता कमलया देवी प्रसाद्याधुना ।।
इत्यन्तःपुरसुन्दरीजनगुणे न्यूनाधिकं ध्यायता ।
देवेनाप्रतिपत्तिमूढमनसा द्वित्राः स्थिता नाडिकाः ।।३००।।

कुन्तलेश्वर की कुमारी ने ऋतु समय में स्नान किया है, अङ्गराज की बहन के क्रमानुसार बारी आई है, कमलादेवी ने जुए में जीत कर रात्रि अपनी कर ली है और लीलादेवी ने दूती को भेजकर बुलाया है, अतएव उक्त चारों रानियों में न्यूनाधिक भाव के विचारने में राजा भोज ने अयुक्ति से मूढ़ मन वाली दो-तीन घड़ी लगा दी ।।३००।।

तदा राजा स्वहृदयमेव ज्ञातवतः कालिदासस्य पादयोः पतति स्म । कविमण्डलं च चमत्कृतमजायत । एकदा राजा धारानगरे विचरन् क्वचित् पूर्णकुम्भं धृत्वा समायान्तीं पूर्णचन्द्राननां काञ्चि-द्दृष्ट्वा तत्कुम्भजले शब्दं च कञ्चन श्रुत्वा नूनमेव तस्याः कण्ठग्रहेऽयं घटो रतिकूजितमिव कूजतीति मन्यमानः सभायां कालिदासं प्राह ।।

फिर राजा ने अपने अभिप्राय को जाना और कालिदास के चरणों में गिर पड़ा, तो कवि समाज मुग्ध हो गया । एक समय राजा ने धारानगरी में विचरते हुए किसी स्थान पर जल से भरे घड़े को लाती हुई चन्द्रमुखी स्त्री देखी । उसके घड़े में होने वाले शब्द को सुनकर विचार से निश्चय किया कि स्त्री घड़े के मुख को पकड़े है और घड़ा रतिकूजित शब्द के समान शब्द करता है, तो राजा ने सभा में आकर कालिदास से कहा-

कूजति रतिकूजितमिति ।।

यह शब्द रतिकूजित शब्द के समान होता है ।

कविराह-

कालिदास ने कहा-

विदग्धे सुमुखे रक्ते नितम्बोपरि संस्थिते ।
कामिन्याश्लिष्टसुगले कूजितं रतिकूजितम् ।।३०१।।

सुन्दर पके लाल वर्ण के मुख वाले घड़े को जल से भरकर जब स्त्री कमर पर धरकर चली, तो रतिकूजित शब्द के समान शब्द निकला ।।३०१।।

तदा तुष्टो राजा प्रत्यक्षरंलक्षं ददौ ननाम च । एकदा नर्मदायां महाह्रदे जालकैरेकः शिलाखण्ड ईषद्भ्रंशिताक्षरः कश्चिद्दृष्टः तैश्च परिचिन्तितम् । इदमत्र लिखितमिव किञ्चिद्भाति नूनमिदं राजनिकटं

नेयमिति बुद्ध्या भोजसदसि समानीतम्। तदाकर्ण्य भोजः प्राह। पूर्वं भगवता हनूमता श्रीमद्रामायणं कृतं तदत्र ह्रदे नूतनैः प्रक्षेपित-मिति श्रुतमस्ति। ततः किमिदं लिखितमित्यवश्यं विचार्यमिति लिपिज्ञानं कार्यं जतुपरीक्षयाक्षराणि परिज्ञाय पठति। तत्र चरणद्वय-मानुपूर्व्याल्लब्धम्।।

तब राजा ने प्रसन्न होकर प्रत्येक अक्षर पर लाख-लाख रुपये दिये और प्रणाम किया। एक समय नर्मदा नदी के महाकुण्ड में जल को खोदने वालों ने बिगड़े हुए अक्षर लिखे शिलाखण्ड को देखा और विचारा कि इस पर कुछ लिखा-सा जान पडता है, अतएव राजा के पास ले चलना चाहिये, ऐसा विचार कर वह राजा भोज की सभा में उसको ले आये। राजा ने सुनकर कहा- प्रथम भगवान् हनुमानजी ने जो श्रीमद्रामायण बनाई थी वह यहां नूतन पुरुषों ने डाल दी सुना जाता है। फिर इसमें क्या लिखा है? इसे अवश्य समझना चाहिये, इस शिला के लिखित अक्षरों को लाख की परीक्षा से जानकर पढ़ा- तो दो चरण आनुपूर्वी से प्राप्त हुए।

अपि खलु विषमः पुराकृतानां।
भवति हि जन्तुषु कर्मणां विपाकः।।

अयि मित्र! पूर्व कर्मों के फल जीवों को निश्चय विषम रूप होते हैं।

ततो भोजः प्राह। एतस्य पूर्वार्द्धं कथ्यतामिति तदा भवभूतिराह।।

तब भोज ने कहा-इसका पूर्वार्द्ध पढ़ो। तब भवभूति ने कहा-

क्व नु कुलमकलङ्कमायताक्ष्याः।
क्व नु रजनीचरसङ्गमापवादः।।३०२।।

विशाल नयनों सुन्दरी का कहाँ तो निष्कलङ्क कुल और राक्षसों के साथ का कहाँ अपवाद?।।३०२।।

ततो भोजस्तत्र ध्वनिदोषं मन्वानस्तदेव पूर्वार्द्धमन्यथा पठति स्म।।

फिर ध्वनि दोष मान कर राजा भोज ने उसी पूर्वार्द्ध को अन्य प्रकार से पढ़ा-

क्व जनकतनया क्व रामजाया।
क्व च दशकन्धरमन्दिरे निवासः।।

कहां जनक कुमारी, कहां रघुवर की रानी और कहां रावण के मन्दिर में

वास ? ।।३०२।।

अयि खलु०–०विपाकः। ततो भोजः कालिदासं प्राह। सुकवे! त्वमपि कविहृदयं पठेति। स आह–

फिर पूर्व कहे उत्तरार्द्ध (अयि! मित्र! पूर्व कर्मों के फल जीवों को निश्चय विषम होते हैं।) पूर्वार्द्ध बनाने को राजा भोज ने कालिदास से कहा– हे सुकवे! आप भी पढ़िये। तब कालिदास ने कहा–

शिवशिरसि शिरांसि यानि रेजुः।
शिव शिव तानि लुठन्ति गृध्रपादैः ।।३०३।।

शिव! शिव!! जिस रावण के सिर महादेवजी के मस्तक पर शोभित होते थे, वहीं अब गिद्धों के चरणों में लोटते हैं।।३०३।।

अयि खलु०–०विपाकः। ततस्तस्य शिलाखण्डस्य पूर्वपटे जतुशोधनेन कालिदासः पठति तमेव दृष्ट्वा राजा भृशं तुतोष। कदाचिद्भोजेन विलासार्थं नूतनगृहान्तरं निर्मितम्। तत्र गृहान्तरे गृहप्रवेशात् पूर्वमेकः कश्चिद्ब्रह्मराक्षसः प्रविष्टः स च रात्रौ तत्र ये वसन्ति तान् भक्षयति। ततो मान्त्रिकान् समाहूय तदुच्चाटनाय राजा यतते स्म। स च आगच्छन्नेव मान्त्रिकानेव भक्षयति। किं च स्वयं कवित्वादिकं पूर्वाभ्यस्तमेव पठन् तिष्ठति। एवं स्थिते तत्रैव रक्षसि राजा कथमस्य निवृत्तिरिति व्यचिन्तयत्। तदा कालिदासः प्राह। देव नूनमयं राक्षसः सकलशास्त्रप्रवीणः सुकविश्च भाति। अतस्तमेव तोषयित्वा कार्यं साधयामि। मान्त्रिकास्तिष्ठन्तु मम मन्त्रं पश्येत्युक्त्वा स्वयं तत्र रात्रौ गत्वा शेते स्म। ततः प्रथमयामे ब्रह्मराक्षसः समागतः। स च पूर्वं पुरुषं दृष्ट्वा प्रतियाममेकैकां समस्यां पाणिनिसूत्रमेव पठति। येनोत्तरं तद्धृदयं गतं नोक्तमयं न ब्राह्मणोऽतो हन्तव्य इति निश्चित्य हन्ति। तदानीमपि पूर्ववदयमपूर्वः पुरुषः अतो मया समस्या पठनीया न चेद्वक्ति सदृशमुत्तरं तस्या हन्तव्य इति बुद्ध्या पठति।।

फिर वहीं उत्तरार्द्ध कहा, पश्चात् उस शिला के खण्ड को पूर्व पुट में लाख से शोधन करके कालिदास ने पढ़ा। तब कालिदास के बनाये पूर्वार्द्ध को देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। किसी समय राजा भोज ने अपने विलास के लिये महल बनवाया। उस महल में गृहप्रवेश करने से पहले ही कोई ब्रह्मराक्षस प्रविष्ट हो गया। तब रात्रि में

उस महल के बीच जो सोता, वह उसे ही भक्षण कर जाता था। फिर मन्त्रशास्त्र के ज्ञाताओं को बुलाकर राजा ने उसके उच्चाटन लिये यत्न किया, तब ब्रह्मराक्षस ने आते ही उन्हें भक्षण कर लिया और पूर्व के अभ्यास से कविता आदि को पढ़ता हुआ विराजमान रहा। उसके ऐसे विराजमान रहने से राजा ने विचारा कि अब कैसे दूर हो? तब कालिदास ने कहा- हे देव! अवश्यमेव राक्षस शास्त्र में प्रवीण है। अतएव इसे प्रसन्न करके कार्य को सिद्ध करूँगा। हे मन्त्रशास्त्रियो! ठहरो और मेरे मन्त्र को देखो, यह कहकर कालिदास रात्रि में वहाँ जाकर सो रहे। जब पहले पहर में ब्रह्मराक्षस आया, तब वह पुरुष को देखकर पहर-पहर में एक-एक समस्या पाणिनि के सूत्रों को पढ़ता हुआ, जिसने उसके हृदय के भाव को नहीं कहा, उसको ब्राह्मण न जान कर मार देता था। उस दिन भी पूर्व की समान अपूर्व पुरुष जानकर समस्या पढ़ी और कहा- यदि आज भी ठीक उत्तर न देगा तो मार दूंगा, यह निश्चय करके पढ़ा-

सर्वस्य द्वे-इति।

सब की दो वस्तु हैं।

तदा कालिदासः प्राह।।

कालिदास ने कहा-

सुमतिकुमती सम्पदापत्तिहेतू।

सुमति और कुमति सम्पत् और विपद के कारण हैं।

ततः स गतः। पुनरपि द्वितीययामे समागत्य पठति।।

यह सुन कर वह चला गया- फिर दूसरे पहर में आकर बोला-

वृद्धो यूना-इति।

वृद्ध पुरुष युवती के साथ।

तदा कविराह।।

तब कालिदास ने कहा-

सह परिचयात्त्यज्यते कामिनीभिः इति।

परिचय होने पर स्त्रियों द्वारा त्याग दिया जाता है।

तृतीययामे स राक्षसः पुनः समागत्य पठति।।

तीसरे पहर में आकर उस राक्षस ने फिर पढ़ा-

एको गोत्रे- इति।।

गोत्र में एक।

ततः कविराह।

तब कालिदास ने कहा–

स भवति पुमान् यः कुटुम्बं बिभर्ति ।।

यही पुरुष है, जो कुटुम्ब को धारण करता है।

ततश्चतुर्थयामे आगत्य स राक्षसः पठति ।।

फिर चौथे पहर में आकर राक्षस ने पढ़ा।

स्त्री पुंवच्च– इति।।

स्त्री पुरुष की समान।

ततः कविराह।

तब कालिदास ने पढ़ा–

प्रभवति यदा तद्धि गेहं विनष्टम् इति ।।३०४।।

जब प्रभु हो जाती है, तब उस घर का नाश होता है ।।३०४।।

ततः स राक्षसो यामचतुष्टयेऽपि स्वाभिप्रायमेव ज्ञात्वा तुष्टः प्रभातसमये समागत्य तमाश्लिष्य प्राह। सुमते! तुष्टोऽस्मि किं तवाभीष्टमिति। कालिदासः प्राह। भगवन्नेतद्गृहं विहायान्यत्र गन्तव्यमिति। सोऽपि तथेति गतः। अनन्तरं तुष्टो भोजः कविं बहु मानितवान्। एकदा सिंहासनमलङ्कुर्वाणे श्रीभोजे सकलभूपाल–शिरोमणौ द्वारपाल आगत्य प्राह। देव दक्षिणदेशात्कोऽपि मल्लि–नाथनामा कविः कौपीनावशेषो द्वारि वर्तते। राजा प्रवेशयेत्याह। ततः कविरागत्य स्वस्तीत्युक्त्वा तदाज्ञया चोपविष्टः पठति ।।

तब उस राक्षस ने चारों पहर में अपने अभिप्राय को जाना और प्रसन्न होकर प्रातःकाल आकर कालिदास से मिलकर कहा– हे सुमते! मैं प्रसन्न हूँ, तुम क्या चाहते हो? कालिदास बोले– हे भगवन्! इस स्थान को त्याग कर दूसरे स्थान पर चले जाइये। तब वह कालिदास की बात मानकर चला गया। फिर प्रसन्न होकर राजा भोज ने कवि कालिदास का बड़ा सम्मान किया। एक समय समस्त राजाओं में मुकुटमणि राजा भोज सिंहासन पर बैठे थे। तब द्वारपाल ने आकर कहा– हे देव! दक्षिण देश से कोई मल्लिनाथ कवि कौपीन पहने आये हैं और द्वार पर खड़े हैं। राजा ने कहा– भेज दो। तब कवि ने आकर 'स्वस्ति' कहकर आशीर्वाद दिया और राजा की आज्ञा से बैठकर पढ़ा–

नागो भाति मदेन खं जलधरैः पूर्णेन्दुना शर्वरी।

शीलेन प्रमदा जवेन तुरगो नित्योत्सवैर्मन्दिरम् ।।
वाणी व्याकरणेन हंसमिथुनैर्नद्यः सभा पण्डितैः ।
सत्पुत्रेण कुलं त्वया वसुमती लोकत्रयं भानुना ।।३०५।।

हे राजन! जैसे हाथी मद से, आकाश मेघों से, रात्रि पूर्ण चन्द्र से, स्त्री शील से, घोड़ा वेग से, मन्दिर प्रतिदिन के उत्सवों से, वाणी व्याकरण से, नदी हंस के जोड़ों से, सभा पण्डितों से, कुल सपूत से और तीनों लोक सूर्यदेव से शोभा पाते हैं, वैसे ही पृथ्वी आपसे शोभित हो रही है ।।३०५।।

ततो राजा प्राह। विद्वन्! तवोद्देश्यं किमिति । ततः कविराह ।

फिर राजा ने कहा– हे विद्वान्! आपका क्या उद्देश्य है ? तब कवि ने कहा–

अम्बा कुप्यति न मया न स्नुषया सापि नांबया न मया ।
अहमपि न तया न तया वद राजन् कस्य दोषोऽयम् ।।३०६।।

मेरी माता क्रोध करती है, सो मुझ से और पुत्रवधू से नहीं, मेरी पुत्रवधू क्रोध करती है, सो मेरी माता से और मुझसे नहीं एवं मैं भी क्रोध करता हूँ, सो माता और पूत्रवधू से नहीं, तब हे राजन! बताइये किसका दोष है ? ।।३०६।।

इति राजा च दारिद्र्यदोषं ज्ञात्वा कविं पूर्णमनोरथं चक्रे। एकदा द्वारपाल आगत्य राजानं प्राह । देव ! कविशेखरो नाम महाकविर्द्वारि वर्तते। राजा प्रवेशयेत्याह। ततः कविरागत्य स्वस्तीत्युक्त्वा पठति ।।

राजा ने दरिद्रता को कारण जानकर कवि का मनोरथ पूर्ण किया। एक समय द्वारपाल ने आकर राजा से कहा– हे देव! शेखर नामक महाकवि द्वार पर खड़े हैं। राजा ने कहा– भेज दो। तब कवि ने आकर 'स्वस्ति' कहकर आशीर्वाद देकर पढ़ा–

राजन् दौवारिकादेव प्राप्तवानस्मि वारणम् ।
मदवारणमिच्छामि त्वत्तोऽहं जगतीपते ।।३०७।।

हे राजन् । हाथी तो मुझे द्वारपाल ने प्राप्त हो गया, हे पृथ्वीनाथ! अब मदमाते हाथी की अभिलाषा है ।।३०७।।

तदा प्राङ्मुखस्तिष्ठन् राजातिसन्तुष्टः तं प्राग्देशं सर्वं कवये दत्तं मत्वा दक्षिणाभिमुखोऽभूत् । ततः कविश्चिन्तयति किमिदं राजा मुखं परावृत्य मां न पश्यतीति । ततो दक्षिणदेशे समागत्याभिमुखः कविः पठति ।।

फिर पूर्व दिशा को मुख किये राजा बैठा था, सो प्रसन्न होकर राजा ने मन से कवि को समस्त पूर्व देश देकर दक्षिण को मुख कर लिया। तब कवि ने विचारा- यह क्या बात हुई जो राजा ने मेरी ओर से मुख फेर लिया, फिर कवि ने दक्षिण दिशा में जाकर राजा के सम्मुख होकर पढ़ा-

अपूर्वेयं धनुर्विद्या भवता शिक्षिता कथम्।
मार्गणौघः समायाति गुणो याति दिगन्तरम्।।३०८।।

हे राजन्! यह अपूर्व धनुषविद्या आपने कहाँ से सीखी, जो बाणों का समूह आवे ज्या (प्रत्यंचा) आकाश को चला जाय।।३०८।।

ततो राजा दक्षिणदेशमपि मनसा कवये दत्त्वा स्वयं प्रत्यङ्-मुखोऽभूत्। कविस्तत्रागत्य प्राह।।

फिर राजा ने मन में कवि को दक्षिण देश देकर अपना मुख पश्चिम को कर लिया, तो पश्चिम में आकर कवि ने कहा-

सर्वज्ञ इति लोकोऽयं भवन्तं भाषते मृषा।
पदमेकं न जानीषे वक्तुं नास्तीति याचके।।३०९।।

हे राजन्! मनुष्य वृथा ही आपको सर्वज्ञ कहते हैं, कारण याचक के सामने 'नहीं' कहना नहीं जानते।।३०९।।

ततो राजा तमपि देशं कवेर्दत्तं मत्वा उदङ्मुखोऽभूत्। कविस्तत्रापि आगत्य प्राह।।

फिर राजा ने पश्चिम देश भी मन में कवि को देकर अपना उत्तर को मुख कर लिया, तो कवि ने उत्तर की ओर आकर कहा-

सर्वदा सर्वदोऽसीति मिथ्या त्वं कथ्यसे बुधैः।
नारयो लेभिरे पृष्ठं न वक्षः परयोषितः।।३१०।।

हे राजन्! मनुष्य मिथ्या ही आपको सदा समस्त वस्तुओं का दाता कहते हैं, क्योंकि शत्रु आपकी पीठ और और परस्त्री आपकी छाती नहीं देखती है।।३१०।।

ततो राजा स्वां भूमिं कविदत्तां मत्वा उत्तिष्ठति स्म। कविश्च तदभिप्रायमज्ञात्वा पुनराह।।

फिर राजा अपनी भूमि कवि को दी मान कर उठ खड़ा हुआ, तब कवि ने राजा के अभिप्राय को न जान कर फिर कहा-

राजन्कनकधाराभिस्त्वयि सर्वत्र वर्षति।

अभाग्यच्छत्रसञ्छन्ने मयि नायान्ति बिंदवः ।।३११।।

हे राजन! आपसे सुवर्ण की धारा प्रवाह वृष्टि होने पर भी अभाग्य के छत्र से आच्छादित मेरे ऊपर बिन्दु भी नहीं पड़ते ।।३११।।

तदा राजा चान्तःपुरं गत्वा लीलादेवीं प्राह। देवि! सर्वं राज्यं कवये दत्तं ततस्तपोवनं मया सहागच्छेति। अस्मिन्नवसरे विद्वान्द्वारि निर्मतः बुद्धिसागरेण वृद्धामात्येन पृष्टः। विद्वन्! राज्ञा किं दत्तमिति। स आह। न किमपीति। तदामात्यः प्राह तत्रोक्तं श्लोकं पठ। ततः कविः श्लोकचतुष्टयं पठति। अमात्यस्ततः प्राह। सुकवे! तव कोटिद्रव्यं दीयते परं राज्ञा यदत्र तव दत्तं भवति तत्पुनर्विक्रीयतामिति। कविस्तथा करोति। ततः कोटिद्रव्यं दत्त्वा कविं प्रेषयित्वा अमात्यो राजनिकटमागत्य तिष्ठति स्म। तदा राजा च तमाह। बुद्धिसागर! राज्यमिदं सर्वं दत्तं कवये पत्नीभिः सह तपोवनं गच्छामि। तत्र तपोवने तवापेक्षा यदि मया सहागच्छेति। ततोऽमात्यः प्राह। देव तेन कविना कोटिद्रव्यमूल्येन राज्यमिदं विक्रीतम्। कोटिद्रव्यं च विदुषे दत्तमतो राज्यं भवदीयमेव भुंक्ष्वेति। तदा राजा च बुद्धिसागरं विशेषेण सम्मानितवान्। अन्यदा राजा मृगयारसेनाटवीमटन् ललाटंतपे तपने द्यूनदेहः पिपासापर्याकुलस्तुरगमारुह्य उदकार्थी निकटतटभुवमटन् तदलब्ध्वा परिश्रान्तः कस्यचिन्महातरोरधस्तादुपविष्टः। तत्रकाचिद्गोपकन्या सुकुमारमनोज्ञसर्वाङ्गा यदृच्छया धारानगरं प्रति तक्रं विक्रेतुकामा तक्रभाण्डं चोद्वहन्ती समागच्छति। तां आगच्छन्तीं दृष्ट्वा राजा पिपासावशादेतद्भाण्डस्थं पेयं चेत् पिबामीति बुद्ध्यापृच्छत्, तरुणि! विमावहसीति। सा च तन्मुखश्रिया भोजं मत्वा तत्पिपासां च ज्ञात्वा तम्मुखावलोकनवशाच्छन्दोरूपेणाह ।।

फिर राजा ने रनवास में जाकर लीलादेवी से कहा– हे देवि! मैंने समस्त राज्य कवियों को दे दिया, अतएव आप मेरे साथ तपोवन में चलें। इधर वह विद्वान् द्वार पर आया। तब बुद्धिसागर नामक प्रधान मन्त्री ने पूछा– हे विद्वान्! राजा ने क्या दिया? तब वह बोला– कुछ भी नहीं दिया। फिर मन्त्री ने कहा– सभा में सुनाये हुए श्लोक को

पढ़ो, तब विद्वान् ने चारों श्लोक सुनाये। फिर मन्त्री ने कहा- हे सुकवे! राजा ने जो तुम्हें दिया है, उसे यदि तुम बेचाना चाहो, तो एक करोड़ रुपये देता हूँ, बेच दो। कवि ने बेच दिया। तब एक करोड़ रुपये देकर कवि को उसके स्थान पर भेज कर मन्त्री राजा के पास आया। राजा ने बुद्धिसागर से कहा- हे बुद्धिसागर! मैं समस्त राज्य कवि को दे चुका हूँ, अब रानियों के साथ तपोवन को जाता हूँ, उस तपोवन में तुम चलना चाहो, तो मेरे साथ आओ। मन्त्री ने कहा- हे देव! उस कवि ने एक करोड़ रुपये लेकर राज्य बेच दिया और करोड़ रुपये मैंने कवि को दे दिये। अब राज्य आप ही का है। आप इसे भोगिये। तब राजा ने बुद्धिसागर का बड़ा सत्कार किया। एक समय राजा शिकार खेलता हुआ वन में विचरता रहा था। जब सूर्य सिर पर आया तब प्यास से व्याकुल होकर घोड़े पर सवार होकर जल के लिये घूमने लगा और जल न पाया। फिर थक जाने से विशाल वृक्ष के नीचे बैठ गया। वहाँ कोमलाङ्गी सुन्दरी गोपकुमारी स्वतः धारानगरी में छाछ बेचने को छाछपूर्ण घड़े को लिये हुए आई। उसको आते देखकर राजा ने प्यास के वश विचारा कि यदि इस पात्र में कोई पीने योग्य वस्तु हो तो अवश्य पिऊँगा। इस विचार से पूछा कि- हे तरुणि! इसमें क्या है? वह गोपकुमारी मुख की कान्ति से राजा भोज का मान और राजा को प्यासा जान कर उनके मुखारविन्द को देखने के लिये मधुर वाणी से बोली-

हिमकुन्दशशिप्रभशङ्खनिभं।
परिपक्वकपित्थसुगन्धरसम्।।
युवतीकरपल्लवनिर्मथितं।
पिब हे नृपराज रुजापहरम्।।३१२।।

हे राजेन्द्र! बरफ, कुन्द, चन्द्रमा और शङ्ख के समान श्वेत, पके कैथ के समान सुगन्धित और युवती के करकमलों से मथे हुए रोग नाशक इस पदार्थ का पान कीजिये।।३१२।।

इति। राजा तच्च तक्रं पीत्वा तुष्टः तां प्राह सुभ्रूः! किं तवा-भीष्टमिति। सा च किञ्चिदाविष्कृतयौवनामदपरवशा मोहाकुलनयना प्राह। देव कन्यामेवावेहि। सा पुनराह।।

इस प्रकार राजा उसकी छाछ को पी कर प्रसन्न होकर बोला- हे बालिके! तुम क्या चाहती हो? तब वह नवयुवती, चन्द्रनयनी, मोह और मद के वश होकर बोली- हे देव! मुझे कन्या ही जानो। फिर बोली-

इन्दुं कैरविणीव कोकपटलीवाम्भोजिनीवल्लभं।

मेघं चातकमण्डलीव मधुपश्रेणीव पुष्पव्रजम् ।।
माकन्दं पिकसुन्दरीव रमणीवात्मेश्वरं प्रोषितं ।
चेतोवृत्तिरियं सदा नृपवर त्वां द्रष्टुमुत्कण्ठते ।।३१३।।

हे राजेन्द्र! जैसे कुमोदिनी चन्द्र को, चकवे सूर्य को, चातक मेघों को, भ्रमर फूलों को, कोयल फूल के रस को और स्त्री चिरकाल के गये स्वामी को देखने की अभिलाषा करती है, वैसे ही मेरे चित्त की वृत्ति सदा आपको देखने की इच्छा करती है ।।३१३।।

राजा चमत्कृतः प्राह। सुकुमारि। त्वां लीलादेव्या अनुमत्या स्वीकुर्मः। इति धारानगरं नीत्वा तां तथैव स्वीकृतवान्। कदाचिद्राजाभिषेके मदनशरपीडिताया मदिराक्ष्याः करतलगलितो हेम-कलशः सोपानपङ्क्तिषु रटन्नेव पपात। ततो राजा सभायामागत्य कालिदासं प्राह। सुकवे! एनां समस्यां पूरय। 'टटंटटंटंटटटंटंटटंटम्।' तदा कालिदासः प्राह ।।

राजा ने मुग्ध होकर कहा- हे सुकुमारी! तुम्हें लीलादेवी की अनुमति से ग्रहण करूंगा। यह कह धारानगरी में ला कर उसी प्रकार राजा ने अङ्गीकार किया। किसी समय राजा के स्नान करने के समय कामबाण से पीड़ित मदमाते नेत्र वाली युवती के हाथ से सुवर्ण का कलश सीढ़ियों पर शब्द करता हुआ गिर पड़ा। तब राजा ने सभा में आकर कालिदास से कहा- हे सुकवे! इस समस्या को पूर्ण करो, 'टटंटटंटंटटटंटंटटंटम्' फिर कालिदास ने कहा-

राजाभिषेके मदविह्वलाया।
हस्ताच्च्युतो हेमघटो युवत्याः ।।
सोपानमार्गेषु करोति शब्दं।
टटंटटंटंटटटंटंटटंटम् ।।३१४।।

राजा के स्नान करान में मदमाती युवती के हाथ से सीढ़ियों पर जल से भरा सुवर्ण का कलश गिरा, तो उसमें शब्द हुआ 'टटंटटंटंटटटंटंटटंटम्' ।।३१४।।

तदा राजा स्वाभिप्रायं ज्ञात्वाक्षरंलक्षं ददौ।

तब राजा ने अपने अभिप्राय को जानकर प्रत्येक अक्षर पर लाख-लाख रुपये दिये।

अन्यदा सिंहासनमलङ्कुर्वाणे श्रीभोजे कश्चिच्चोरः आरक्षकै

राजनिकटं नीतः। राजा तं दृष्ट्वा कोऽयमित्यपृच्छत्। तदा आरक्षकाः प्राहु। देव! कुभिल्लकेन कस्मिंश्चिद्वेश्यागृहे घातपातमार्गेण द्रव्याणि अपहृतानीति। तदा राजा प्राह। अयं दण्डनीय इति। ततो भुक्कुण्डो नाम चोरः प्राह।।

एक समय राजा भोज सिंहासन पर बैठे थे, तब राजदूत किसी चोर को पकड़ कर राजा के पास लाये। राजा ने उसे देखकर पूछा- यह कौन है? तब दूतों ने कहा- हे देव! इस चोर ने किसी वेश्या के घर में सेंध लगाकर द्रव्य निकाल लिया। तब राजा बोला- यह दण्ड पाने के योग्य है। फिर भुक्कुण्ड नामक चोर ने कहा-

भट्टिर्नष्टो भारविश्चापि नष्टो।
भिक्षुर्नष्टो भीमसेनोऽपि नष्टः।।
भुक्कुण्डोऽहं भूपतिस्त्वं हि राजन्।
भब्भापङ्क्तौ कालधर्मः प्रविष्टः।।३१५।।

हे राजन्! भट्टि, भारवि, भिक्षु और भीमसेनादि तो नष्ट हो गये अब केवल मैं भुक्कुण्ड और आप भूपति हो भब्भा पंक्ति में कालधर्म में प्रविष्ट हुआ है।।३१५।।

तदा राजा प्राह। भो भुक्कुण्ड गच्छ गच्छ यथेच्छ विहर। कदाचिद्भोजो मृगयापर्याकुलः वने विचरन् विश्रमाविष्टहृदयः कश्चित्तटाकमासाद्य स्थितवान् श्रमात्प्रसुप्तः। ततोऽपरपयोनिधि-कुहरं गते भास्करे।।

तब राजा ने कहा- हे भुक्कुण्ड! जाओ-जाओ इच्छानुसार भ्रमण करो। किसी समय राजा भोज शिकार खेलने गये। वन में विचरते हुए जब विश्राम को जी चाहा तब किसी सरोवर के किनारे बैठने से थक जाने के कारण सो गये।

तत्रैवारोचत निशा तस्य राज्ञः सुखप्रदा।
चञ्चच्चन्द्रकरानन्दसन्दोहपरिकन्दला।।३१६।।

फिर जब सूर्य अस्त हो गये (तो) वही चन्द्रमा की किरणों से प्रकाशमान चाँदनी रात्रि राजा को सुख और आनन्ददायिनी हुई।।३१६।।

ततः प्रत्यूषसमये नगरीं प्रति प्रस्थितो राजा चरमगिरिनित-म्बलम्बमानशशाङ्कबिम्बमवलोक्य सकुतूहलः सभामागत्य तदा समीपस्थान् कवीन्द्रान्निरीक्ष्य समस्यामेकामवदत्।।

फिर प्रातःकाल राजा नगरी में आया तो पश्चिम पर्वत रूपी नितम्ब पर लटकते

हुए चन्द्रबिम्ब को देखकर आनन्द के साथ सभा में आकर निकट विराजमान कवीन्द्रों को देखकर एक समस्या कही।

चरमगिरिनितम्बे चन्द्रबिम्बं ललम्बे।

पश्चिम पर्वत रूपी नितम्ब पर चन्द्रमा का बिम्ब लटक रहा है।

तदा प्राह भवभूतिः।

तब भवभूति ने कहा-

अरुणकिरणजालैरन्तरिक्षे गतर्क्षे।

सूर्य की किरणजाल से आकाश से नक्षत्रों के दूर होने पर।

ततो दण्डी प्राह।

फिर दण्डी कवि ने कहा-

चलति शिशिरवाते मन्दमन्द प्रभाते।

प्रातःकाल की मन्द-मन्द शीतल पवन के चलने पर।

ततः कालिदासः प्राह।

फिर कालिदास ने कहा-

युवतिजनकदम्बे नाथमुक्तोष्ठबिम्बे।
चरमगिरिनितम्बे चन्द्रबिम्बं ललम्बे।।३१७।।

हे नाथ! स्त्रियों के पतियों से ओष्टबिम्ब त्यागने पर पश्चिम पर्वत रूपी नितम्ब में चन्द्रबिम्ब लटक रहा है।।३१७।।

ततो राजा सर्वानपि सम्मानितवान्। तत्र कालिदासं विशेषतः पूजितवान्। अथ कदाचिद्भोजो नगराद्बहिर्निर्गतः। नूतनेन तटाकाम्भसा बाल्यसाधितकपालशोधनादि चकार। तन्मूलेन कश्चन शफरशावः कपालं प्रविष्टो विकटकरोटिकानिकटघटितो विनिर्गतः। ततो राजा स्वपुरीमवाप। तदारभ्य राज्ञः कपाले वेदना जाता। ततस्तत्रत्यैर्भिषग्वरैः सम्यक् चिकित्सितापि न शान्ता। एवमहर्निशं नितरामस्वस्थे राज्ञि अमानुषविदितेन महारोगेण।।

फिर राजा ने सब कवियों का सम्मान किया, उसमें कालिदास का विशेष सम्मान किया। फिर किसी समय राजा भोज नगर से बाहर निकले तो, नये सरोवर में बालकपन के स्वभाव के अनुसार सिर धोया। सिर धोते समय मछली सिर पर चढ़ कर (नाक के छिद्रों द्वारा) ऊपर को चढ़ गई। तब राजा अपनी राजधानी में आ गये

और उसी दिन से राजा के कपाल में पीड़ा होनी आरम्भ हुई। भलीभाँति से वैद्यों ने चिकित्सा की, परन्तु पीड़ा न गई। इसी तरह से प्रतिदिन राजा का स्वास्थ्य बिगड़ने लगा। उस महारोग को वैद्यों ने नहीं जाना।

क्षामक्षाममभूद्वपुर्गतसुखं हेमन्तकालेऽब्जव-
द्वक्त्रं निर्गतकान्ति राहुवदनाक्रान्ताब्जबिम्बोपमम्।।
चेत: कार्यपदेषु तस्य विमुखं क्लीबस्य नारीष्विव।
व्याधि: पूर्णतरो बभूव विपिने शुष्के शिखावानिव।।३१८।।

हेमन्त ऋतु में कमल के समान राजा का शरीर क्षीण हो गया। राहु से ग्रसे चन्द्रबिम्ब के समान मुख की कान्ति जाती रही, स्त्रियों का नपुंसक के चित्त की समान सब कार्यों से चित्त हट गया और सूखे वन में अग्नि के प्रबल होने के समान शरीर में पूर्ण व्याधियाँ हो गईं।।३१८।।

एवमतीते सम्वत्सरेऽपि काले न केनापि निवारितस्तद्रद: तत: श्रीभोजो नानाविधसमानौषधग्रसनरोगदु:खितमना: समीपस्थं शोकसागरनिमग्नं बुद्धिसागरं कथमपि सम्मताक्षरामुवाच वाचम्। बुद्धिसागर! इत: परमस्मद्विषये न कोपि भिषग्वरो वसतिमातनोतु। बाह्वटादिभेषजकोशान् निखिलान् स्रोतसि निरस्यागच्छ, मम देवसमागमसमय: समागत इति। तच्छ्रुत्वा सर्वेऽपि पौरजना: कव-यश्च अवरोधसमाजाश्च विगलदस्रासारनयना बभूवु:। तत: कदाचि-द्देवसभायां पुरन्दर: सकलमुनिवृन्दमध्यस्थं वीणामुनिमाह। मुने! इदानीं भूलोके का नाम वार्तेति। तते नारद: प्राह। सुरनाथ! न किमप्याश्चर्यं किन्तु धारानगरवासी श्रीभोजभूपाल: रोगपीडितो नितरामस्वस्थो वर्तते स तस्य रोग: केनापि न निवारित:। तदनेन भोजनृपालेन भिषग्वरा अपि स्वदेशान्निष्कासिता: वैद्यशास्त्रमपि अनृतमिति निरस्तमिति। एतदाकर्ण्य पुरुहूत: समीपस्थौ नासत्याविदमाह। भो: स्ववैंद्यौ! कथमनृतं धन्वन्तरीयं शास्त्रम्। तदा तावाहतुरमरेश देव! न व्यलीकमिदं शास्त्रं किन्त्वमरविदितेन रोगेण बाध्यतेऽसौ भोज इति। इन्द्र: कोसाववार्यरोग: किं भवतोर्विदित: ततस्तावूचतु:। देव! कपालशोधने कृते भोजेन तदा प्रविष्ट: पाठीन: तन्मूलोऽयं रोग इति। तदा इन्द्र: स्मयमानमुख: प्राह। तदिदानीमेव

युवाभ्यां गन्तव्यं न चेदितःपरं भूलोके भिषक्शास्त्रस्यासिद्धिर्भवेत्। न खलु सरस्वतीविलासस्य निकेतनं शास्त्राणामुर्द्धता चेति। ततः सुरेन्द्रादेशेन ता उभावपि धृतद्विजन्मवेषौ धारानगरं प्राप्य द्वारस्थं प्राहतुः। द्वारस्थ! आवां भिषजौ काशीदेशादागतौ श्रीभोजाय विज्ञापय तेनानृतमित्यङ्गीकृतं वैद्यशास्त्रमिति श्रुत्वा तत्प्रतिष्ठापनाय तद्रोगनिवारणाय चेति। ततो द्वारस्थः प्राह। भो विप्रौ! न कोऽपि भिषक्प्रवरः प्रवेष्टव्य इति राज्ञोक्तम्। राजा तु केवलमस्वस्थो नायमवसरो विज्ञापनस्येति। तस्मिन्क्षणे कार्यवशाद्बहिर्निर्गतो बुद्धिसागरस्तौ दृष्ट्वा कौ भवन्तावित्यपृच्छत्। ततस्तौ यथागत-मूचतुः। ततो बुद्धिसागरेण तौ राज्ञः समीपं नीतौ ततो राजा ताववलोक्य मुखश्रिया अमानुषाविति बुद्ध्वा आभ्यां शक्यतेऽयं रोगो निवारितुमिति निश्चित्य तौ बहु मानितवान्। ततस्तावूचतुः। राजन्न भेतव्यं रोगो निर्गतः। किन्तु कुत्रचिदेकान्ते त्वया भवितव्य-मिति। ततो राज्ञापि तथा कृतम्। ततस्तावपि राजानं मोहचूर्णेन मोहयित्वा शिरःकपालमादाय तत्करोटिकापुटे स्थितं शफरकुलं गृहीत्वा कस्मिंश्चिद्भाजने निक्षिप्य सन्धानकरण्या कपालं यथाव-दारचय्य सञ्जीविन्या च तं जीवयित्वा तस्मै तददर्शयताम्। तदा तद्दृष्ट्वा राजा विस्मितः किमेतदिति तौ पृष्टवान्। तदा तावूचतुः। राजन्! त्वया बाल्यादारभ्य परिचितकपालशोधनतः सम्प्राप्तमिति। ततो राजा तावश्विनौ मत्वा तच्छ्रोधनार्थमपृच्छत्। किमस्माकं पथ्यमिति। ततस्तावू चतुः ।।

इस तरह एक वर्ष बीत गया पर वह रोग किसी से नहीं ठीक हुआ। फिर अनेक प्रकार की औषधियों के सेवन करने से दुःखी होकर राजा भोज ने शोकसागर में डूबते हुए बुद्धिसागर नामक प्रधान मन्त्री से बड़ी कठिनाई के साथ कहा कि हे बुद्धिसागर! अब कोई ऐसी औषधि नहीं है, जिससे मेरा रोग शान्त हो। तुम सभी औषधियों को जल में प्रवाहित कर दो। मेरी मृत्यु का समय निकट आ गया है। यह सुनकर समस्त नगरवासी और कवि समाज के कवि रनिवास में रोने लगे। एक समय देवताओं की सभा में विराजमान इन्द्र ने मुनियों के बीच में वीणाधारी नारद से कहा- हे मुने! अब पृथ्वी पर क्या बात हो रही है? तब नारदजी बोले- हे देवराज! और तो कोई नई बात नहीं है,

केवल धारानगरी का राजा भोज रोग से पीड़ित और अस्वस्थ हो रहा है। राजा का वह रोग किसी से दूर नहीं हो रहा है। अतएव राजा भोज ने वैद्यों को भी अपने देश से निकाल दिया और वैद्यक शास्त्र को मिथ्या जानकर जल में डुबो दिया। इसे सुनकर इन्द्र ने अश्विनीकुमारों से पूछा- हे स्वर्गीय वैद्यगण! क्या वैद्यकशास्त्र मिथ्या है? तब वे बोले- हे सुरेश! हे देव! यह शास्त्र मिथ्या नहीं है; परन्तु राजा भोज देवताओं के ज्ञात रोग से पीड़ित है। इन्द्र ने कहा- निवारण के अयोग्य इस रोग को आपने कैसे जाना? तब वे बोले- हे देव! (सरोवर में) जब भोज ने सिर धोया था, उस समय मछली कपाल में चढ़ गई, उसी का यह रोग है। तब इन्द्र ने हंसकर कहा- आप अभी जाओ- नहीं तो वैद्यक शास्त्र मिथ्या सिद्ध होगा। राजा सरस्वती विलास के स्थानों को और शास्त्रों को नष्ट कर देगा। फिर इन्द्र की आज्ञा से उन दोनों ने ब्राह्मण का रूप धारण करके धारानगरी में जाकर द्वारपाल से कहा- हे द्वारपाल! हम दोनों वैद्य काशीधाम से आये हैं, राजा को सूचना दो। जो राजा ने वैद्यक शास्त्र को मिथ्या मान रखा है, सो वैद्यक शास्त्र को सत्य दिखाकर राजा का रोग दूर करने के लिये आये हैं। द्वारपाल ने कहा- हे ब्राह्मणों! राजा की आज्ञा है कि कोई वैद्यवर नहीं आने पावे, अतएव राजा के अधिक रोगपीड़ित होने के कारण सूचना देना नहीं है। उसी समय किसी कार्य से बुद्धिसागर बाहर आये और उनको देखकर उन्होंने पूछा- आप कौन हो? फिर उन्होंने यथार्थ रूप से अपना परिचय दिया। तब बुद्धिसागर उन्हें राजा के पास ले गये। राजा ने उनके मुखमण्डल की कान्ति देखकर विचारा कि यह मनुष्य नहीं हैं और इनके द्वारा रोग अवश्य दूर होगा, ऐसा मानकर उनका बड़ा सत्कार किया। तब अश्विनीकुमार बोले- हे राजन्! भय मत करो। अब रोग दूर हो जायेगा। लेकिन किसी एकान्त स्थान में चलिये। राजा एकान्त स्थान में चले गये। फिर उन्होंने राजा को मोहचूर्ण से मोहित करके सिर के कपाल को लेकर उसकी करोटी के पुट में से मछली को निकाल कर किसी पात्र में डाल कर सन्धानकरणी से कपाल को ठीक स्थापित करके मृतसञ्जीवनी विद्या से जिलाकर राजा को मछली दिखाई, तब राजा ने उसे देखकर आश्चर्य के साथ पूछा यह क्या है? उन्होंने कहा- हे राजन! आपने बाल्यावस्था से जो कपालशोधन किया उसी से यह रोग हो गया। तब राजा ने उन्हें अश्विनीकुमार मानकर उसकी शुद्धि के लिये पूछा कि अब क्या पथ्य होना चाहिये? वे बोले-

अशीतेनांभसा स्नानं पयःपानं वराः स्त्रियः।

गरम जल से स्नान करना, दूध पीना और उत्तम स्त्री सेवन।

एतद्वो मानुषाः पथ्यमिति।

हे मनुष्यो! आपका यह पथ्य है।

तन्त्रान्तरे राजा मध्ये 'मानुषाः' इति सम्बोधनं श्रुत्वा वयं

चेन्मानुषाः कौ युवामिति तयोर्हस्तौ झटिति स्वहस्ताभ्यामग्रहीत्। ततस्तत्क्षण एव तावन्तर्धत्तां ब्रुवन्तावेव कालिदासेन पूरणीयं तुरीयचरणमिति। ततो राजा विस्मितः सर्वानाहूय तद्वृत्तमब्रवीत्। तच्छ्रुत्वा सर्वेऽपि चमत्कृताः विस्मिताश्च बभूवः।।

उसमें राजा ने मनुष्य का सम्बोधन सुनकर हम मनुष्य हैं, तो आप कौन हैं? यह कहकर शीघ्रता से उनके हाथ पकड़ लिये। तब वे उसी समय यह कहते हुए अन्तर्धान हो गये कि चौथा पद कालिदास पूर्ण करेगा। फिर राजा ने विस्मित होकर सबको बुलाकर समाचार कहा। इस बात को सुनकर सभी चमत्कृत हुए और विस्मित हुए।

तत्कालिदासेन तुरीयचरणं पूरितम्।
स्निग्धमुष्णं च भोजनमथ।। इति ।।३१९।।

चौथा पद कालिदास ने इस भाँति से पूर्ण किया, चिकना गरम भोजन पथ्य है।।३१९।।

ततो भोजोऽपि कालिदासं लीलामानुषं मत्वा परं सम्मानितवान्। अथ भोजनृपालः प्रतिदिनं सञ्जातबलकान्तिर्ववृधे धाराधीशः कृष्णेतरपक्षे चन्द्र इव। ततः कदाचित्सिंहासनमलङ्कुर्वाणे श्रीभोजे कालिदासभवभूतिदण्डिबाणमयूरवररुचिप्रभृतिकवितिलककुलालङ्कृतायां सभायां द्वारपाल एत्याह। देव! कश्चित्कविर्द्वारितिष्ठति। तेनेयं प्रेषिता गाथा सनाथा चीठिका देवसभायां निक्षिप्यतामिति तां दर्शयति राजा गृहीत्वा तां वाचयति।।

फिर राजा ने कालिदास को लीलामानुष जानकर बड़ा सत्कार किया। फिर धारार्धीश राजा भोज शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान प्रतिदिन निरोग और स्वस्थ होने लगे। किसी समय राजा भोज सिंहासन पर बैठे थे कालिदास, भवभूति, दण्डी, बाण, मयूर और वररुचि आदि कविराज तिलक रूप से सभा में विराजमान थे। तब द्वारपाल ने आकर कहा- हे देव! कोई कवि दरवाजे पर खड़े हैं। उन्होंने यह गाथा युक्त चिट्ठी देकर कहा है कि इसे राजा की सभा में रखकर दिखाओ। राजा ने उसको लेकर पढ़ा।

काचिद्बाला रमणवसतिं प्रेषयन्ती करण्डं।
दासीहस्तात्सभयमलिखदव्यालमस्योपरिस्थम्।।
गौरीकान्तं पवनतनयं चम्पकं चात्र भावं।
पृच्छत्यार्यो निपुणतिलको मल्लिनाथः कवीन्द्रः।।३२०।।

किसी युवती ने अपने प्रवासी पति के पास दासी के द्वारा पिटारी भेजी। उसमें उसने भय के साथ पहले [१]सर्प लिखा, सर्प के ऊपर महादेवजी, महादेवजी के ऊपर अंशुमान् और हनुमान और हनुमानजी के ऊपर चम्पा का फूल लिखा, सो इसका क्या अभिप्राय है? यह प्रवीणों का तिलक रूपी कवीन्द्र मल्लिनाथ पूछता है।।३२०।।

तच्छ्रुत्वा सर्वापि विव्दत्परिषच्चमत्कृता। ततः कालिदासः प्राह। राजन्मल्लिनाथः शीघ्रमाकारयितव्य इति। ततो राजादेशात् द्वारपालेन स प्रवेशितकवी राजानं स्वस्तीत्युक्त्वा तदाज्ञयोपविष्टः ततो राजा प्राह तं कवीन्द्रम्। विद्वन्मल्लिनाथकवे! साधु रचिता गाथा। कालिदासः प्राह। किमुच्यते साध्विति। देशान्तरगत-कान्तायाश्चारित्र्यवर्णनेन श्लाघनीयोऽसि विशिष्य तत्तद्भावप्रतिभट-वर्णनेन। तदा भवभूतिः प्राह। विशिष्यते इयं गाथा [२]पंक्तिकण्ठो-द्यानवैरिणो वातात्मजस्य वर्णनादिति। ततः प्रीतेन राज्ञा तस्मै दत्तं सुवर्णानां लक्षं पञ्च गजाश्च दश तुरगाश्च दत्ताः। ततः प्रीतो विद्वान् स्तौति राजानम्।।

उसे सुनकर सब विद्वद्मण्डली चमत्कृत हुई। तब कालिदास बोले- हे राजन्! मल्लिनाथ कवि को शीघ्र बुलाइये। फिर राजा की आज्ञा से द्वारपाल कवि को सभा में ले आया। कवि ने राजा से आकर 'स्वस्ति' कहा और राजा की आज्ञा से बैठ गया। तब राजा उस कविराज से बोले- हे विद्वान् मल्लिनाथकवे! अच्छी गाथा बनाई है। कालिदास ने कहा- क्या उत्तम ही बताते हो, प्रवासी पति के चरित्र के वर्णन में सभी भाव श्लाघनीय हैं। भवभूति ने कहा- यह गाथा हनुमानजी के वर्णन से बढ़ गई है। फिर प्रसन्न होकर राजा ने उसको लाख मोहर, पांच हाथी और दश घोड़े दिये। तब प्रसन्न होकर विद्वान् ने राजा की स्तुति की।

देव भोज तव दानजलौघैः।

१- सर्प आदि चार चित्रों के लिखने का तात्पर्य यह है कि, युवती ने पिटारी में फूल रख कर भेजे- तो फूलों की गन्ध को यदि पवन लेने आवे तो [१]सर्प के भय से नहीं ले सकेगा। फूलों को-बाण बनाने के लिये यदि कामदेव लेना चाहे तो [२]शिवजी के भय से न ले सकेंगे। फूलों को- सूर्य अपनी किरणों से सुखाना चाहे तो [३]हनुमानजी के भय से न सुखा सकेंगे। और फूलों के मधु को भ्रमर पीना चाहे तो [४]चम्पा के फूल को देख कर पास नहीं आयेंगे।

(१)- सर्प पवन को खा लेता है। (२) शिवजी ने कामदेव को भस्म किया है। (३) हनुमानजी ने उत्पन्न होते ही सूर्य को निगल लिया। (४) चम्पा के फूल पर भ्रमर नहीं जाता है।

२ - पंक्तिकण्ठस्य रावणस्योद्यानमशोकवनं तस्य वैरिणः।

सोयमद्य रजनीति विशङ्के।।
अन्यथा तदुदितेषु शिलागो- ।
भूरुहेषु कथमीदृशदानम्।।३२१।।

हे राजन! हे भोजदेव! आपके दान में जलों से शङ्का होती है कि आपके घर पर रात्रि है, नहीं तो वहां उत्पन्न हुई शिला गौ और वृक्षों में ऐसा दान कैसे होवे अर्थात् दान के निमित्त सोने की शिला और अनेक गौ हैं। उस दान के जल गिराने से पृथ्वी पर वृक्ष जम आये हैं, इसी से रात्रि दीखती है। ऐसा दान क्या है? यही शङ्का है।।३२१।।

ततो लोकोत्तरं श्लोकं श्रुत्वा राजा पुनरपि तस्मै लक्षत्रयं ददौ। ततो लिखति स्म भाण्डारिको धर्मपत्रे।।

फिर विचित्र श्लोक सुनकर राजा ने उसे तीन लाख रुपये और दिये। तब खजांनची ने धर्मपत्र पर लिखा।

प्रीतः श्रीभोजभूपः सदसि विरहिणीगूढनर्मोक्तिपद्यं।
श्रुत्वा हेम्नां च लक्षं दश स च तुरगान् पञ्च नागानयच्छत्।।
पश्चात्तत्रैव सोऽयं वितरणगुणसद्वर्णनात् प्रीतचेता।
लक्षं लक्षं च लक्षं पुनरपि च ददौ मल्लिनाथाय तस्मै।।३२२।।

प्रसन्न होकर सभा के बीच राजा भोज ने वियोगिनी युवती के गूढ़ युक्तिपूर्ण श्लोक को सुनकर मल्लिनाथ कवि के लिये लाख मोहर, दश घोड़े और पांच हाथी दिये। फिर उसी स्थान पर राजा भोज के दान की महिमा वर्णन करने से प्रसन्न होकर राजा ने फिर तीन लाख रुपये मल्लिनाथ कवि को दिये।।३२२।।

ततः कदाचिद्भोजराजः कालिदासं प्रति प्राह। सुकवे त्वमस्माकं चरमग्रन्थं पठ। ततः क्रुद्धो राजानं विनिन्द्य कालिदासः क्षणेन तं देशं त्यक्त्वा विलासवत्या सह एकशिलानगरं प्राप। ततः कालिदासवियोगेन शोकाकुलस्तं कालिदासं मृगयितुं राजा कापालिकवेषं धृत्वा क्रमेण एकशिलानगरं प्राप। ततः कालिदासो योगिनं दृष्ट्वा तं सामपूर्वं पप्रच्छ। योगिन्! कुत्र तेऽस्ति स्थितिरिति। योगी वदति। सुकवे! अस्माकं धारानगरे वसतिरिति। ततः कविराह। तत्र भोजः कुशली किम्। ततो योगी प्राह। किं मया च वक्तव्यमिति। ततः कविराह। तत्रातिशयवार्त्तास्ति चेत्सत्यं कथयेति। तदा योगी प्राह भोजो दिवं गत इति। ततः कविर्भूमौ निपत्य प्रलपति। देव!

त्वां विनास्माकं क्षणमपि भूमौ न स्थितिः। अतस्त्वत्समीपमह-मागच्छामि इति कालिदासः बहुशो विलप्य चरमश्लोकं कृतवान्।।

फिर किसी समय राजा भोज ने कालिदास से कहा- हे सुकवे! तुम हमारे अन्त समय के ग्रन्थ को पढ़ो। तब क्रोधित होकर कालिदास ने राजा की निन्दा की और उसी समय धारानगरी को त्यागकर विलासवती को साथ लेकर एकशिला नामक नगर में जा बसे। फिर कालिदास के वियोग से शोकित होकर कालिदास को ढूँढ़ने के लिये राजा जोगी का भेष बनाकर एकशिला नगर में गये। कालिदास ने जोगी से पूछा, हे भगवन्! आपका कहाँ निवास है? जोगी ने कहा- हे सुकवे! मैं धारानगरी में रहता हूँ। कालिदास ने कहा- वहां का राजा भोज प्रसन्न तो है? योगी बोला- क्या कहूँ? कालिदास ने कहा- वहाँ की विचित्र बात हो तो कहिये। तब योगी बोला- राजा भोज तो स्वर्ग को सिधार गये। यह सुनते ही कालिदास पृथ्वी पर गिर कर विलाप करने लगे कि, हे देव! आपके बिना मैं क्षणकाल भी पृथ्वी नर नहीं रह सकता हूँ। अतएव मैं भी आपके पास आता हूँ, यह कहकर कालिदास ने वारंवार विलाप करते हुए अन्त समय का श्लोक रचा।

अद्य धारा निराधारा निरालम्बा सरस्वती।
पण्डिताः खण्डिताः सर्वे भोजराजे दिवं गते।।३२३।।

आज राजा भोज के स्वर्ग सिधारने पर धारानगरी निराधार हो गई, विद्या आश्रयहीन हो गई और सम्पूर्ण पण्डित खण्डित हो गये।।३२३।।

एवं यदा कविना चरमश्लोक उक्तस्तदैव स योगी भूतले विसंज्ञः पपात। ततः कालिदासस्तथाविधं तमवलोक्य अयं भोज एवेति निश्चित्य अहह महाराज! तत्र भवताहं वञ्चितोऽस्मीत्यभिधाय झटिति तं श्लोकं प्रकारान्तरेण पपाठ।।

इस प्रकार जब कवि ने अन्त का श्लोक पढ़ा, तब योगी अचेत होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। तब कालिदास ने उसे ध्यान से देखकर कि यह तो भोज ही है ऐसा निश्चय करके कहा- अहा हा! बड़ा खेद है, महाराज! आज आपने मुझे ठग लिया। यह कहकर शीघ्रता से कालिदास ने दूसरे प्रकार से उसी श्लोक को पढ़ा।

अद्य धारा सदाधारा सदालम्बा सरस्वती।
पण्डिताः मण्डिताः सर्वे भोजराजे भुवं गते।।३२४।।

आज राजा भोज के पृथ्वी पर आने से धारानगरी को भलीभाँति से आधार मिला, सरस्वती को अवलम्ब मिला और समस्त पण्डित मण्डित हो गये।।३२४।।

ततो भोजस्तमालिङ्ग्य प्रणम्य धारानगरं प्रति ययौ।

फिर राजा भोज कालिदास से मिल कर प्रणाम करके धारानगरी चले आये।

शैले शैलविनिश्चलं च हृदयं मुञ्जस्य तस्मिन्क्षणे।
भोजे जीवति हर्षसञ्चयसुधाधारांबुधौ मज्जति।।
स्त्रीभिः शीलवतीभिरेव सहसा कर्तुं तपस्सत्वरे।
मुञ्जे मुञ्चति राज्यभारमभजत्त्यागैश्च भोगैर्नृपः।।३२५।।

इति श्रीबल्लालपण्डितविरचितः श्रीमन्महाराजाधिराजस्य धारानगराधीश्वरस्य भोजराजस्य प्रबन्धः समाप्तिमफाणीत्।

राजा मुञ्ज ने (वत्सराज के द्वारा) भोज के सिर को कटवा लिया था और फिर भोज के (योगी द्वारा) जीवित हो जाने पर (मुञ्ज) आनन्दसागर में मग्न हो गया। फिर मुञ्ज ने पत्थर का हृदय बनाकर अपनी शीलवती रानियों को साथ लेकर तप करने के निमित्त वन में प्रवेश किया। मुञ्ज के राज्य छोड़ने पर राजा भोज ने दान और भोग के साथ राज्य का शासन किया।।३२५।।

इति श्रीबल्लाल पण्डित कृत भोजप्रबन्ध की सरल हिन्दी भाषा टीका
बाँस-बरेली निवासी पण्डित श्यामसुन्दरलाल त्रिपाठी कृत समाप्त।

इति भोजप्रबन्धः समाप्तः।

*****

हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५,
फैक्स -०२०-२६८७४९०७.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१
दूरभाष/फैक्स- ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-४२००७८.

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS